वैज्ञानिक शब्दावली

अनुवाद एवं मौलिक लेखन

Digital India
Power To Empower

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, भारत सरकार

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रह एवं शब्दावलियाँ :

क्र.सं.	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1, 2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ.2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (1980, पृ.819)	38.50
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1, 2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ.1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (1982, पृ.700)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषिविज्ञान (1991, पृ.223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, नृविज्ञान (1991)	239.40
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी) (1986, पृ.240)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (1991, पृ.104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिक) (1976, पृ.566)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (1987, पृ.186)	84.00

वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद
एवं
मौलिक लेखन

वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद एवं मौलिक लेखन

संपादक

वीर सिंह आर्य

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
शिक्षा विभाग, भारत सरकार
1996

©कापीराइट, भारत सरकार, 1996

प्रथम संस्करण

प्रथम ई-संस्करण 2019

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली - 110 066

बिक्री स्थल :

1. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
2. प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110 054

अध्यक्ष की कलम से

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 1961 में अपनी स्थापना समय से ही, उसे सौंपे गए कार्य-भार अनुसार भारतीय भाषाओं में शिक्षा माध्यम परिवर्तन हेतु विभिन्न विषयों में भारतीय भाषाओं की मानक शब्दावली तथा विश्वविद्यालय स्तरीय विभिन्न विषयक पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन करता आ रहा है । इस दीर्घ अवधि में आयोग ने विभिन्न आवश्यक विषयों से संबंधित अंग्रेजी-हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा शब्दावलियों का निर्माण एवं प्रकाशन किया है । इक्कीसवीं सदी के सूचना प्रौद्योगिकी के इस दौर में शिक्षा एवं ज्ञानार्जन के साधन को सद्यः उपलब्धता में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है । ई-गवर्नेंस, ई-व्यवसाय एवं डिजिटल इंडिया जैसे क्रिया-कलाप दैनंदिन जीवन के अंग हो गए हैं । ऐसे में आयोग ने भी इन अधुनातन साधनों का उपयोग करने का निश्चय किया । इस क्रम में आयोग द्वारा निर्मित सभी शब्दावलियों, परिभाषा-कोशों का ई-संस्करण आपको सहज रूप से उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ई-बुक निर्माण योजना पर कार्य प्रारंभ किया गया है । इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु **'वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद एवं मौलिक लेखन'** का ई-बुक का संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है ।

मुझे इस शब्दावली का ई-संस्करण आप सबको सुलभ कराते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है । इसी भांति आयोग द्वारा अन्य विषयों के भी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली, परिभाषा-कोशों का ई-संस्करण प्रकाशित करने के कार्य भी प्रगति पर है । आयोग को सौंपे गए महत्वपूर्ण दायित्व में से एक दायित्व, निर्मित शब्दवलियाँ प्रयोक्ताओं तक पहुँचाने का रहा है । इलेक्ट्रोनिक माध्यम से आयोग अपने प्रकाशनों के प्रचार-प्रसार में अधिक प्रभावशाली होगा । मुझे आशा है आयोग द्वारा किए जा रहे इस प्रयास से निर्मित शब्दावलियाँ जन-जन तक पहुंचेगी साथ ही सभी जिज्ञासु इस ई-संस्करण का अधिक से अधिक लाभ उठा सकेंगे ।

प्रो. अवनीश कुमार
अध्यक्ष

वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद एवं मौलिक लेखन कोश ई-शब्द संग्रह निर्माण से संबद्ध आयोग के अधिकारी

प्रधान संपादक

प्रो. अवनीश कुमार

अध्यक्ष

संपादक

डॉ. अशोक एन. सेलवटकर

(सहायक निदेशक)

श्री शिव कुमार चौधरी

(सहायक निदेशक)

श्री जय सिंह रावत

(सहायक वैज्ञानिक अधिकारी)

श्रीमती चक्प्रम बिनोदिनी देवी

(सहायक वैज्ञानिक अधिकारी)

सुश्री मर्सी ललरोहलू हमार

(सहायक वैज्ञानिक अधिकारी)

प्रस्तावना

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने विभिन्न विषयों के लगभग 5.30 लाख तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय विकसित किए हैं । आयोग ने इन विषयों की जिन शब्दावलियों या शब्दसंग्रहों का प्रकाशन किया है उनका विवरण इस पुस्तक के अंत में दिया गया है । आयोग ने अपनी समस्त तकनीकी शब्दावली का कंप्यूटर-आधारित डाटा बैंक भी तैयार कर लिया है । अनेक विषयों के सामूहिक समेकित शब्दसंग्रहों के प्रकाशन के बाद आयोग अब अलग-अलग विषयों के अलग-अलग स्वतंत्र शब्दसंग्रह प्रकाशित करने की योजना पर काम कर रहा है । इन नए शब्द-संग्रहों में हज़ारों नए तकनीकी शब्दों का समावेश किया गया है । शब्दावलियों के इन अद्यतन, परिवर्धित एवं संशोधित संस्करणों के प्रकाशन एवं प्रणयन में आयोग को विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं उच्चतर तकनीकी संस्थानों के विद्वानों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है । इस शृंखला में भूविज्ञान, खनन एवं भूविज्ञान आदि अनेक विषयों के स्वतंत्र शब्दसंग्रह प्रकाशनाधीन हैं ।

शब्दावली-निर्माण का कार्य स्वयं में साध्य या लक्ष्य नहीं हैं । यह साधन मात्र है, जिसका लक्ष्य है हिंदी में विश्वविद्यालय-स्तरीय वैज्ञानिक साहित्य (अर्थात् पाठ्य-पुस्तकों, संदर्भ-ग्रंथों, सहायक पठन-सामग्री, शोध-सामग्री आदि) की रचना करना एवं सभी हिंदी-भाषी राज्यों में हिंदी के माध्यम से सभी विषयों का शिक्षण करना । इसके लिए आवश्यक है कि आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का अनुप्रयोग, अभ्यास, प्रशिक्षण तथा परीक्षण हो एवं उसकी दृष्टि से विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन निरंतर किया जाए । आयोग इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं उच्चतर तकनीकी संस्थानों में निरंतर वैज्ञानिक शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन करता रहता है । इन कार्यशालाओं में विभिन्न विषयों के प्राध्यापकों को शब्दावली अनुप्रयोग, वैज्ञानिक अनुवाद और मौलिक विज्ञान-लेखन की सूक्ष्मताओं से परिचित कराया जाता है । शब्दावली की संकल्पना, उसका निर्माण, विकास, समन्वय, प्रयोग की समस्याएँ तथा उसके विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत विचार-विमर्श एवं अभ्यास-कार्य कराए जाते हैं । वैज्ञानिक विषयों के अनुवाद तथा मौलिक विज्ञान-लेखन पर अधिकारी विद्वान लेखकों के सोदाहरण व्याख्यान कराए जाते हैं । अब तक सौ से भी अधिक कार्यशालाओं का आयोजन किया जा चुका है और इनमें चार हजार से भी अधिक प्राध्यापकों को नवप्रशिक्षण दिया जा चुका है। ये कार्यशालाएं हिंदी-भाषी राज्यों के अनेक विश्वविद्यालयों में तथा अहिंदी-भाषी राज्यों में भी अनेक उच्चतर तकनीकी संस्थानों में आयोजित की जा चुकी हैं । इन तकनीकी संस्थानों में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय रक्षा अनुसंधान विकास संगठन (दिल्ली, देहरादून) आयुध निर्माणी, जबलपुर, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, वाडिया हिमालय भूविज्ञान संस्थान,

दिल्ली कालेज ऑफ इंजीनियरिंग, तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग आदि अनेक संस्थाएं शामिल हैं । इनकी कार्यशालाओं की लोकप्रियता तथा उपादेयता इसी से सिद्ध है कि अनेक संस्थानों के अनुरोध पर हमने उनके यहाँ एक से अधिक बार इनका आयोजन किया है ।

काफी समय से यह अनुभव किया जाता था कि इन कार्यशालाओं में प्रस्तुत आलेखों/व्याख्यानों का प्रकाशन कराया जाए ताकि सभी जिज्ञासु प्राध्यापक, लेखक, अनुवादक आदि इनसे लाभ उठा सकें । वस्तुतः इसकी माँग कई दिशाओं से हो रही थी । तदनुसार यह प्रकाशन पाठकों के प्रति समर्पित है । इसमें वे आलेख/व्याख्यान दिए गए हैं जिनका प्रस्तुतीकरण आयोग द्वारा 28 से 30 नवंबर, 1996 तक राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में आयोजित 'राष्ट्रीय शब्दावली कार्यशाला' में किया गया था । इन आलेखों के प्रथम खंड में शब्दावली-निर्माण की अवधारणा, स्वरूप, सहजता, रचनापरक पहलू, अनुवाद, विज्ञान लेखन के आयाम, शिक्षा-माध्यम के परिवर्तन की दिशा-दशा आदि का निरूपण है । दूसरे खंड में हिंदी के मौलिक वैज्ञानिक आलेख/शोधसार दिए गए हैं जिनमें आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के अनुप्रयोग को प्रदर्शित करते हुए उच्चस्तरीय ज्ञान की अभिव्यक्ति सहज भाषा में की गई है ।

इस पुस्तक में जिन विद्वानों की रचनाएँ संकलित हैं उनका मैं हृदय से आभारी हूँ । साथ ही इस पुस्तक के लेखों के संकलन, संपादन एवं प्रकाशन के लिए मैं कार्यशाला संयोजक श्री वीर सिंह आर्य को भी साधुवाद देता हूँ । पुस्तक के प्रणयन में उल्लेखनीय योगदान के लिए मैं आयोग के पूर्व-अधिकारियों सर्वश्री देवेंद्र दत्त नौटियाल एवं प्रेमानंद चंदोला के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ । इस पुस्तक के निर्माण एवं इसके उत्तम प्रकाशन की व्यवस्था के लिए आयोग के कार्यकारी सचिव एवं प्रधान वैज्ञानिक अधिकारी डॉ० हरीश कुमार भी सराहना के पात्र हैं ।

आशा है कि यह संग्रह वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद एवं मौलिक लेखन के क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा ।

नई दिल्ली
15 फरवरी, 1996

प्रो० प्रेम स्वरूप सकलानी
अध्यक्ष

आयोग के वर्तमान अध्यक्ष तथा सदस्य :

अध्यक्ष

प्रो॰ प्रेम स्वरूप सकलानी

सदस्य

1. डॉ॰ अनूप चोपड़ा,
   प्रोफेसर ई॰एन॰टी॰,
   लोकनायक जयप्रकाश
   नारायण अस्पताल,
   नई दिल्ली
2. प्रो॰ कीर्ति सिंह,
   सदस्य,
   कृषि वैज्ञानिक चयन आयोग बोर्ड,
   पूसा, नई दिल्ली
3. प्रो॰ बी॰डी॰ नौटियाल,
   सिविल इंजीनियरी विभाग,
   बनारस हिंदू विश्वविद्यालय,
   वाराणसी
4. प्रो॰ डी॰बी॰ डिमरी,
   महानिदेशक,
   भारतीय भूविज्ञान सर्वेक्षण,
   कलकत्ता
5. प्रो॰ प्रेम सिंह,
   भाषाविज्ञान विभाग,
   दिल्ली विश्वविद्यालय,
   दिल्ली
6. प्रो॰ लक्ष्मण सिंह कोठारी,
   पूर्व अध्यक्ष, भौतिकी विभाग,
   दिल्ली विश्वविद्यालय,
   दिल्ली

परामर्शदाता :

डॉ॰ नगेन्द्र

CHAIRMAN

Prof. Prem Swarup Saklani

MEMBERS

1. Dr. Anup Chopra,
   Prof. ENT,
   Lok Nayak Jai Prakash
   Narayan Hospital,
   New Delhi
2. Prof. Kirti Singh,
   Member, Agricultural
   Scientists Selection Board,
   Pusa, New Delhi.
3. Prof. B.D. Nautiyal,
   Civil Engineering Deptt.
   Banaras Hindu University,
   Varanasi.
4. Sh. D.B. Dimri,
   Director General,
   Geological Survey of India
   Calcutta.
5. Prof. Prem Singh,
   Deptt. of Linguistics
   University of Delhi,
   Delhi.
6. Prof. L.S. Kothari,
   Former Head, Physics Deptt.
   University of Delhi,
   Delhi

CONSULTANT :

Dr. Nagendra

विषय - सूची

प्रथम खंड

शब्दावली, अनुवाद, मौलिक लेखन एवं माध्यम-परिवर्तन

			पृष्ठ
(क)	**शब्दावली**		
1.	राजनीति-विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली	डॉ॰ गोपाल शर्मा	1
2.	हमारी वैज्ञानिक शब्दावली : सहज विकास बनाम शब्दानुवाद	श्री दयानंद पंत	11
3.	संक्षिप्त तकनीकी शब्दावली : अनुवाद परिप्रेक्ष्य	डॉ॰ हरिमोहन कृष्ण सक्सेना	15
4.	पारिभाषिक शब्दावली : समस्याएं और निराकरण	डॉ॰ चंद्रमौलि मणि	20
5.	अखिल भारतीय शब्दावली : संकल्पना और स्वरूप	श्री नीलकंठन नंपूतिरि	27
6.	आयुर्विज्ञान की शब्दावली	डॉ॰ रमेशचंद्र गर्ग	33
7.	अर्थशास्त्र से संबद्ध शब्दावली निर्माण : समस्याएं एवं निराकरण	डॉ॰ प्रशांत कुमार घोष	41
8.	उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों की तलाश	डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र	47
9.	पारिभाषिक शब्दावली-निर्माण : एक व्यापक दृष्टिकोण	श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र	52
(ख)	**अनुवाद और मौलिक लेखन**		
1.	अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद की सामान्य समस्याएं	डॉ॰ नगेंद्र	58
2.	वैज्ञानिक अनुवाद	श्री हरीश्वर प्रसाद सिन्हा	68

			पृष्ठ
3.	हिंदी में अनुवाद की समस्याएं	डॉ॰ भगवान देव पांडेय	76
4.	हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य के अनुवाद की समस्याएं	डॉ॰ हरिमोहन	81
5.	हिंदी में वैज्ञानिक लेखन : समस्याएं, समाधान और सुझाव	श्री प्रेमसागर	87

(ग) माध्यम-परिवर्तन

1.	विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा में माध्यम-परिवर्तन और उसकी विसंगतियां	डॉ॰ शुकदेव प्रसाद	90
2.	शिक्षा का माध्यम मातृभाषा क्यों ?	श्री प्रेमानंद चंदोला	95
3.	विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी माध्यम से सामाजिक विज्ञानों के अध्यापन की समस्याएं	डॉ॰ जे॰पी॰ पचौरी	100

द्वितीय खंड
वैज्ञानिक आलेख

1.	कवक-मूल (माइकोराज़ा) का वन-रोपण में योगदान	श्री भगवती प्रसाद चमोला, प्रो॰ के॰जी॰ मुकर्जी एवं प्रो॰ जी॰एस॰ पालीवाल	107
2.	जनपद टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या एवं संसाधनों का अंतःसंबंध	श्री सुरेश कुमार बंदूनी एवं डॉ॰ लक्ष्मण प्रसाद सेमवाल	113
3.	पादप-प्रतिरोध द्वारा कीट-नियंत्रण	डॉ॰ प्रेम किशोर	121
4.	तथ्यों के आईने में गंगा	श्री अजय श्रीवास्तव एवं डॉ॰ सच्चिदानंद सिंह	139
5.	राजस्थान रत्न तथा आभूषण उद्योग : एक रत्नवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ॰ शेखर वाशिष्ठ	149
6.	ग्रीन हाउस में बेमौसम खीरा उत्पादन	डॉ॰ पीतम चंद्र श्री टी॰ए॰ मोरे एवं श्री अभय कुमार श्रीवास्तव	155

			पृष्ठ
7.	भारतीय खनिज विकास के इतिहास की संक्षिप्त समीक्षा	डॉ॰ केदार नारायण	161
8.	भारत की प्रमुख नदियां तथा उनकी बदलती प्रवाह-दिशाएं	डॉ॰ विजय कुमार उपाध्याय	166
9.	लेड द्वारा पत्तीदार सब्जियों को पहुँचने वाली हानि	डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र	169
10.	हिमालय का विवर्तनिक परिदृश्य	डॉ॰ डी॰सी॰ नैनवाल एवं श्री के॰एन॰ कंडवाल	174
11.	प्रकृति, विकिरण, रेडियो-ऐक्टिवता और परमाणु-खनिज अन्वेषण	डॉ॰ योगेश चंद्र शर्मा	181
12.	गढ़वाल हिमालय के गैरसैण क्षेत्र, जिला चमोली (उत्तर प्रदेश) की भौगर्भिक एवं विवर्तनिक स्थितियों का अध्ययन	श्री विजय कुमार गैरोला, श्री वैभव श्रीवास्तव, श्री राम अवतार सिंह एवं श्री दीपक हटवाल	187
13.	सूक्ष्मजैविकी का विकास	डॉ॰ पुरुषोत्तम कौशिक एवं श्री दीपक वत्स	199
14.	गढ़वाल हिमालय (उत्तर प्रदेश) के पोखरी गवाक्ष में पाए गए मध्यदृश्य वलनों का शुद्धगतिक विश्लेषण	डॉ॰ भुवन चंद्र जोशी एवं प्रो॰ प्रेमस्वरूप सकलानी	204
15.	तनाव से कैसे बचें ?	डॉ॰ एस॰सी॰ शुक्ल, श्री संजीव शुक्ल एवं श्री बृजेंद्र सिंह	224
16.	बहुप्रतीक्षित मलेरिया वैक्सीन	श्री संजीव शुक्ल, डॉ॰ यू॰डी॰ शर्मा, डॉ॰ ऋचा शुक्ला, डॉ॰ एस॰सी॰ शुक्ल एवं सुश्री रीना सिंह	233

पृष्ठ

तृतीय खंड

राष्ट्रीय शब्दावली कार्यशाला का कार्यविवरण एवं संस्तुतियां		श्री वीर सिंह आर्य	240

कुछ विचार-टिप्पणियां :

1.	डाक शब्दावली में एकरूपता का अभाव	डॉ॰ विजय कुमार सक्सेना	253
2.	हिंदी का प्रयोग, व्यवहार व कठिनाइयां	डॉ॰ दिनेश चमोला	255
3.	कृषि-अर्थशास्त्र के कुछ हिंदी पर्यायों पर पुनर्विचार	डॉ॰ राधामोहन श्रीवास्तव	258

परिशिष्ट :

1.	मानक देवनागरी वर्णमाला तथा वर्तनी	259
2.	राष्ट्रीय शब्दावली कार्यशाला में उपस्थित सहभागी	267
	लेखक-सूची	271

°°°°°

प्रथम खंड

राजनीति विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली

- डॉ० गोपाल शर्मा

अधिकांश आधुनिक विद्याओं के अध्ययन से भारत की प्राचीन विद्याओं से सातत्य स्थापित करना कठिन होता है और उस परंपरा को काटकर यूरोपीय ज्ञान-परंपरा स्थापित की जाती है। अतएव हमारे अध्यापन से जब सामाजिक विज्ञान की चर्चा होती है तो हमें यूरोप में हुए इन विषयों के विकास की ओर लक्ष्य करना पड़ता है। किंतु, भारतसंस्कृति के प्रेमी, विवेकशील अध्यापक इस बात से सहमत होंगे कि भारत की प्राचीन विद्याओं में आधुनिक विचार बीजरूप में मिलते हैं परंतु उनका विकास और उपलब्ध रूपों में उनका उपयोग हमारी उपेक्षा के फलस्वरूप अवरुद्ध रह गया है। इसके ऐतिहासिक कारण भी हैं और प्रधानतः इस प्रकार की उपेक्षा के लिए मेकाले का शिक्षा अभियान ही उत्तरदायी है। बाह्य विचार-पद्धति और निर्वचन प्रणाली के अनवरत आरोपण ने, विवेकानंद, राजा राममोहन राय, रवींद्र और गांधी जैसे क्रांतिकारी और भारतीय विचारपद्धति तथा दृष्टिकोण के संस्थापकों को पनपने नहीं दिया। अधिकांश अध्यापक वर्ग और विद्वान लेखक एक अर्से से आज तक पाश्चात्य परंपरा से चिंतन करते हैं अतएव नए विषयों का मूलस्रोत खोजने के लिए हमें यूरोपीय ज्ञान की जन्मभूमि यूनान और रोम के आचार्यों की कृतियों की ओर जाना पड़ता है।

परंतु राजनीति के विषय में हमारा दृष्टिकोण यही नहीं होना चाहिए था। इसका प्रमाण भारतीय संस्कृति और सभ्यता के उदय में निहित है जो निर्विवाद रूप से बहुत प्राचीन है। भारत में राजनीति एक अत्यंत समृद्ध विषय रहा है। वेद, पुराण, महाभारत, मनु, कौटिल्य, शुक्रनीति, याज्ञवल्क्य आदि में इस विषय की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इसके बाद भी इस विषय के सभी पहलुओं का सूक्ष्म विवेचन करते हुए अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। इस तरह हमें विषय-वस्तु के विकास और पारिभाषिक शब्दावली की एक अविच्छिन्न परंपरा उपलब्ध होती हे। आधुनिक विषय के विकास के साथ उसका सूत्र कहीं न कहीं सन्नद्ध हो जाता है। कई स्थलों पर तो आधुनिक चिंतन की शब्दावली से भिन्न विपुल परिमाण में ऐसे शब्द रह जाते हैं जिनके पर्याय अंग्रेजी में निश्चित करने अथवा जिन्हें दर्शन के पारिभाषिक शब्दों की तरह - (कर्म, मोक्ष, निर्वाण) उन्हीं रूपों में स्वीकार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। प्राचीन राजनीति विषय में 'राजा राज्यमिति प्रवृत्तिसंक्षेपः' के अनुसार राजा और राज्य में अभेद करते हुए राज्य के सम्यक् आंतरिक और बाह्य संचालन के लिए व्यावहारिक आदर्शों के स्थापक नियम हैं। विषय इतना व्यापक है कि वह वास्तव में एक विशाल 'सामाजिक विज्ञान' है। इसीलिए महाभारत में इसे राजधर्म कह कर भीष्म ने युधिष्ठिर को इसकी संपूर्ण विषयवस्तु से अवगत कराया है -

मन्त्रेत्रयी दंडनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः ।
सर्वेधर्माश्चाश्रमाणां हताःस्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे ।
सर्वेत्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ता ।
सर्वाविद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः ॥

प्राचीन भारत में राजनीति विज्ञान के कई नाम प्रचलित थे । इनके रहते हुए भी लोक में अर्थ-भ्रम नहीं होता था; जैसे, राजधर्म, राजशास्त्र, दंडनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और जातककाल में खत्तिविज्जा (क्षत्रिय-विद्या) । राजनीति के स्थान पर अब हम 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग नहीं करते । 'अर्थ' का सामान्य अभिप्राय 'धन' या 'संपत्ति' है । इसी दृष्टि से 'इकोनॉमिक्स' के अर्थ में इसका प्रयोग समीचीन प्रतीत होता है । किंतु कौटिल्य का कथन है : अर्थ का अभिप्राय मनुष्यों का व्यवसाय है, साथ ही वह भूमि भी है जहाँ मनुष्य रहते हैं इसलिए अर्थशास्त्र का अर्थ वह शास्त्र है जो भूमि के अर्जन-पालन और शासन से संबंध रखता है । इस शब्द की कौटिल्य द्वारा निश्चित व्याख्या चाहे हम स्वीकार न करें परंतु इससे यह तो अवश्य परिलक्षित होता है कि राजनीति और अर्थशास्त्र में बड़ा घनिष्ठ संबंध है । अंग्रेजी का Political Economy शब्द भी इसी बात का द्योतक है । यद्यपि यह अर्थ-पक्ष को प्रधानता देता है ।

म०म० काणे ने इस संबंध में विचारों का स्पष्टीकरण करते हुए दडंनीति और अर्थशास्त्र के पहलुओं का परिसीमन किया है । वे कहते हैं कि ये शब्द राज्यशास्त्र के लिए दो दृष्टिकोणों से प्रयुक्त होते हैं । कामसूत्र में अर्थ की परिभाषा है, शिक्षा, भूमि, सुवर्ण, पशु, धान्य, गृहभांडादि, मित्र तथा जो भी अर्जन किया गया है उसकी वृद्धि । अतएव जब सब प्रकार की संपत्ति और समृद्धि को ध्यान से रखकर इस विद्या को नाम देना हो तो इसे अर्थशास्त्र कहा जाता है और जब जनता का शासन और अपराधियों को दंड देने का भाव प्रधान हो तब उसी विद्या को दंडनीति भी कहते हैं । कौटिल्य ने इसे सम्मिलित रूप में देखा है ।

विषय-प्रतिपादन की सांस्कृतिक भिन्नता-समानता उनके शब्दों की तह में जाने से स्पष्ट हो जाती है । ऐसे ही दो शब्द राजनीति और पॉलिटिक्स हैं । पॉलिटिक्स या पोलिटिकल साइन्स पोलिस Polis पर विचार करता है । पोलिस वास्तव में स्वशासी राष्ट्रमंडल का सर्वोच्च रूप है । ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व इस कल्पना का उद्‌भव नगर-राज्य के रूप में हुआ । इसके शासन से संबंधित विषय का नाम 'पोलिटिक्स' रखा गया जिसकी आधार-शिला सुकरात ने रखी और विकास की मंजिलें अरस्तू और प्लेटो ने बनाईं । प्राचीन भारतीय इतिहास में राज का सर्वमान्य रूप राजतंत्र था । परंतु क्रमशः जैसे ही समय में हम आगे बढ़ते हैं डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल के मतानुसार ईसा से लगभग 1000 वर्ष पूर्व भारत के अधिकांश भाग में गणराज्य या गणतंत्र प्रणाली उपलब्ध होती है, केवल मध्यदेश में ही इस समय नृप-तंत्र था । प्रसिद्ध पालिग्रंथ अवदान शतक में 'गणाधीनाः' और 'राजाधीनाः' शब्दों का प्रयोग है । संभवतः यूरोप के उसी काल में 'पौरजानपदी' की

1—28/CSTT/ND/96

स्थिति होगी । जे०टी० शिपले ने बताया है कि Polis, Polit एक शृंखला को जन्म देता है, जैसे - Politics, metropolis, cosmopolitan आदि । उनका यह भी कहना है कि Polis संस्कृत के 'पुर' शब्द का सजातीय हे । **अतएव भारत में भी 'पौरिकी' शब्द का जन्म हो सकता था परंतु संभवतः राजतंत्र के प्रबल होने के कारण यहाँ 'पुरंदर' पैदा हुए जिन्होंने पौर-जानपदों को पनपने नहीं दिया** । निष्कर्ष यह है कि सांस्कृतिक इतिहास में किस बिंदु पर प्रबुद्ध चेतना से शब्द का आविर्भाव हुआ और वह क्षण कितना सक्षम रहा, ये बातें नाम के जन्म और उसकी स्थिरता निश्चित करती हैं । यही है Politics और राजशास्त्र या राजनीति जैसे विषयों के मूल नामों की आधारभूमि ।

अब मैं प्रस्तुत विषय की शब्दावली की विशेषताओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करता हूँ । इस थोड़े समय में चुनी हुई भारतीय तथा विदेशी संकल्पनाओं पर ही विचार किया जा सकता है । मनुस्मृति में शब्दों के निर्माण की विधा का उल्लेख है -

> **सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।**
> **वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥1।21॥**

सारांश यह है कि भाव आदि का नामकरण करने की आवश्यकता पड़ने पर वेद के शब्दों के आधार पर उन्हें बनाया जाता है । नए शास्त्रों में जो भी पारिभाषिक प्रतीक आविष्कृत होते हैं उनका आधार अविच्छिन्न परंपरा के प्राचीन साहित्य में खोजना चाहिए । उदाहरणार्थ, राज्यों के प्रकारों की चर्चा में हमें गणराज्य शब्द प्राप्त होता है । इसे हम Republic के अर्थ में प्रयोग में ला रहे हैं । जिन शब्द-निर्माताओं का प्राचीन भारतीय चिंतन से संबंध नहीं रहा है उनकी, किसी अद्यतन परिभाषा के आधार पर अनुवादात्मक नए शब्द बनाने की इच्छा रहती है, जैसे Simple Interest सरल ब्याज, Compound Interest यौगिक ब्याज । होना चाहिए साधारण और चक्रवृद्धि । इसी तरह गणराज्य की परंपरा के महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द Quorum ओर Secret ballot भी **अनुवादकों की विश्वकर्मिता के परिणामस्वरूप** 'अनिवार्य संख्या एवं गुप्तमतदान' बन चुके हैं । संविधान के निर्माताओं ने हिंदी संस्करण तैयार करते समय मनुस्मृति के पूर्वोक्त नियम को ध्यान में रखा और 'गणपूर्ति' तथा 'शलाका पद्धति' शब्दों का प्रयोग किया ।

शलाका पद्धति शब्द को अभी तक जन-स्वीकृति नहीं मिली है और अखबारी साहित्य में 'गुप्तमतदान' ही प्रचलित है । इसका कारण जनता का प्राचीन से असंबंध ही माना जा सकता है । परंतु ballot शब्द तत्त्वतः शलाका का ही बंधु है । जिस प्रकार पालिग्रंथों में शलाका जैसी वस्तु से मतदान का उल्लेख मिलता है उसी से मिलता-जुलता बैलट भी हुआ करता था । व्युत्पत्ति की दृष्टि से Ballot इतालवी शब्द ballota bullet,

---

1. Dictionary of Word Origins by J.T. Shipley

(जो कि balla या ball गेंद या गोली के अल्पार्थक है) से बना है । बरतन में गोलियाँ डालकर मत दिया जाता था । परंतु जहाँ यूरोपीय साहित्य में यह उसी रूप में प्रचलित है भारतीय साहित्य में 'शलाका' शब्द को दुरूह और मृत इतिहास का कट्टरपंथी पुनरुद्धार मानकर त्याज्य समझा गया है और यूरोपीय प्राचीन परंपरा को स्वीकार किया गया है । उपादेय परंपरा को स्वीकार न करने के फलस्वरूप ही शब्दावली में आज एकरूपता का अभाव दिखाई देता है । Democracy के लिए आज भारत में लोकतंत्र, प्रजातंत्र, लोकशासन, लोकशाही, जनतंत्र, जनसत्ताक राज्य, Bureaucracy के लिए अधिकारी तंत्र, कर्मचारी-तंत्र, नौकरशाही, दफ्तरशाही, अफसरराज आदि शब्द उपलब्ध होते हैं । वैसे तो यह कोई आपत्ति का विषय नहीं है बल्कि यह विपुल पर्याय भी हमारे विद्वानों की मौलिक सूझों की सशक्त उर्वरता का द्योतक है, परंतु इस रूपात्मक विविधता से कालांतर में अर्थ-विविधता के विकास हो जाने पर भ्रम होने का अंदेशा भी उत्पन्न हो जाता है । अतएव जहाँ बने एक या दो शब्दों को ही सर्वसम्मति से स्वीकार कर व्यवहार करना ठीक होगा ।

मेरा यह कहने का तात्पर्य कदापि नहीं कि पुराना है इसलिए सभी साधु हैं – परंतु जगदीश भट्टाचार्य, गदाधर ने क्रमशः शब्दशक्ति प्रकाशिका और शक्तिवाद नामक ग्रंथों में पारिभाषिक शब्द की आधुनिक संज्ञा पर प्रकाश डाला है । प्राचीन साहित्य में पारिभाषिक शब्द 'आधुनिक' इसलिए माना गया है कि शास्त्र-कार उसे नया संकेत Signification देते हैं । नए ऐतिहासिक संदर्भ में नई परिभाषा द्वारा उसमें प्रसंगगत अर्थाधान किया जाता है । इसी तर्क के अनुसार आज 'राज्य' (State) शब्द में 'प्रांत' में निहित अर्थ की स्थापना हुई है, तथा अध्यक्ष का आंख से संबंध तोड़कर Speak से जोड़ दिया गया है । इसे भिन्न संस्कृति-जन्य विचारों का समकक्ष स्थापन कहना चाहिए अनुवाद नहीं मानना चाहिए । शब्दावली-निर्माण में इसका प्राथमिक महत्व होता है ।

किसी विषय की शब्दावली का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दो भाषाओं की शब्दावली में बद्ध कल्पनाएँ दो जन समुदायों के आचारों-विचारों, सामाजिक और नैसर्गिक वातावरणों को प्रकट करती है । Language, Thought and Culture नामक पुस्तक में बेंजामिन हूर्फ और एडवर्ड सेपीर के विचारों के आधार पर इसकी स्थापना की गई है कि वस्तुतः किसी भाषा की शब्दावली उस जनसमुदाय की विचारधाराओं, गति-विधियों की एक सम्मिश्रित सूची प्रस्तुत करती है । इसलिए सामाजिक विज्ञानों की शब्दावली से मात्र रूपात्मक व्युत्पत्ति का आश्रय लेना बड़ा भ्रामक होता है । इससे शब्दों में निहित वर्तमान या परंपरागत अर्थों का विश्लेषण नहीं हो पाता और उचित पर्याय रचना नहीं होती । शब्द और भाषा ये दोनों बड़ी अपर्याप्त वस्तुएँ होती हैं । जब भी हम शब्दों की चर्चा करते हैं तो हमारा संकेत उसमें निहित विकासमान अर्थों की ओर होता है । एक सांस्कृतिक अवस्था में विकसित एक शब्दरूप क्रमशः नए अद्यतन विचारों के लिए प्रयुक्त होता ही रहता है । इसीलिए डॉ॰ रघुवीर जैसे प्राचीन संस्कृति-प्रेमियों ने उपलब्ध शब्दों का नए अर्थों में प्रयोग करने का आग्रह किया है किंतु इस विचार को भी संयत विवेक से स्वीकार करने

की आवश्यकता है । दंडपाशिक (Magistrate), महासंधिविग्रहिक (Minister of War and Peace), प्राड्विवाक् (Minister of Law and Justice), द्वारादेय (duty of excise) ऐसे शब्द से है जिन्हें आज प्रयोग में लाना कठिन प्रतीत होता है । परंपरावादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में भेद होता है । समाज के क्रमागत इतिहास में शब्दावली के अर्थों में सातत्यक विकास होता रहा हो तब तो प्राचीन शब्द लोकसम्मत हो जाते हैं अन्यथा व्याकरण का नियम - 'अप्रयुक्ते दीर्घसत्रवत् प्रयोगान्यत्वात्' लागू हो जाता है । शब्द का चिरकाल तक प्रयोग न हो या दूसरे अर्थों में प्रयोग होने लगे तो वह स्वीकार्य नहीं होता । इसी कारण आज विषय और भुक्ति शब्द डिवीजन और तहसील के लिए प्रयोग में नहीं लाए जा सकते । ये काल की एक निश्चित अवधि की स्थिर सम्पत्ति हैं । इनका उल्लेख मात्र किया जा सकता है । सांस्कृतिक शब्दों और ऐतिहासिक शब्दों में यही भेद है । ऐतिहासिक शब्द काल की एक अवस्था में जड़ होकर रह जाते हैं, सांस्कृतिक शब्द प्रवाह के साथ अपने अर्थ का विकास करते हुए वर्तमान तक चले आते हैं ।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र की शब्दावली बड़ी विचित्र है । इस ग्रंथ के अनेक अनुवाद उपलब्ध हैं । श्री प्राणनाथ विद्यालंकार ने इसका अनुवाद करते हुए भूमिका में लिखा है - कौटिल्य अर्थशास्त्र इतना कठिन ग्रंथ है और उसमें इतने अधिक अप्रचलित शब्द हैं कि इनके भाषांतर में भूल तो अपवाद न होकर नियम बन गई है । उन्होंने अर्थशास्त्र में प्रयुक्त उन शब्दों के उदाहरण दिए हैं जिनका प्रयोग उन अर्थों में संस्कृत ग्रंथों में नहीं मिलता जैसे - युक्त उपयुक्त, तत्पुरुष, काकपदी, प्रदर, ब्याजि, रूपिक, उच्छुल्क, चक्रधर, चक्रांत, अर्थचर इत्यादि । यहाँ हमें स्वीकार करना होगा - आचार्याचारात् संज्ञासिद्धिः । आज भी किसी विषय के प्रवर्तक नई शब्दरचना करें तो उस शास्त्र के साथ उन शब्दों का प्रचलन हो सकता है । भारतीय राजनीतिक विचारधारा में 'अर्थशास्त्र' का बड़ा महत्व है । हम चीनी गोरिल्ला लड़ाई की शिक्षा से संबंधित चीनी सेनापति द्वारा बहुत पूर्व लिखे गए शास्त्र का उल्लेख अंग्रेजी में बार-बार पढ़ते हैं परंतु इस साहित्य की सामग्री और प्रेरणा के स्रोत अर्थ-शास्त्र से हमने आज बहुत कम 'फीचर सामग्री' प्रकाशित की है । अर्थशास्त्र में वर्णित कापटिक, उदैस्थित, गृहपति-व्यंजन, वैदेहक व्यंजन, तापस-व्यंजन, क्षत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी इतने तरह के एस्पिओनेज और सैबोटाज की कार्रवाई करनेवालों का अध्ययन, विशेष रूप से तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो वर्तमान स्थिति में इससे बड़ा लाभ हो सकता है ।

शब्दावली की चर्चा में विदेशी विद्वानों द्वारा संस्कृति से संबद्ध किए गए पाश्चात्य शब्दों का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है । राज्यांग की चर्चा में गवर्नमेंट (Government) शब्द आता है । यह शब्द Govern धातु L. Gubernare - Steer (अर्थात् कर्णधारण) से बना है । लक्षणा से राज्य का कर्णधार शासन होता है । परंतु शिपले के अनुसार इस शब्द का संबंध संस्कृत के कूबर शब्द से है । इसका अर्थ होता है जुए में बाँधा गया बाँस जिसमें जोते हुए बैल आदि गाड़ी को खींचते हैं । यहाँ लक्षणा जहाज से गाड़ी पर आ गई है ।

इसीलिए लिंकन ने राज्यशासन के बीच ही में परिवर्तन की Changing horses in mid-stream उपमा दी थी। इस व्युत्पत्ति के अनुसार राज्य की गाड़ी को बढ़ाने वाला बाँस या 'दंड' गवर्नमेंट है। इस प्रकार प्राचीन शब्द 'दंड' अपने लक्ष्यार्थ में ठीक-ठीक बैठ जाता है।

एम्बेसेडर की व्युत्पत्ति में शिपले ने दूरान्वय और खींचातानी की है। लैटिन का एक शब्द ambactus दूत का समानार्थी है - अर्थात् उसका आशय वार्ता लाने ले जानेवाला होता है। शिपले ने इसकी व्युत्पत्ति OHG (पुरानी जर्मन) ambaht=from and towards + bak=back (जाना-आना) इस प्रकार की है। आगे जाकर शिपले ने इसका संबंध संस्कृत से जोड़ा है। and=अनु towards+Bhakta (भक्त) devoted=अनुभक्त रूप devoted के में स्थापित करने का यत्न किया है। परंतु वास्तव में दीक्षितार की तरह शब्द 'अनुभक्तार' बनता है। राजदूत के नाम की इतनी जटिल कूटता आश्चर्य का विषय नहीं होनी चाहिए। यदि इस तरह शब्द बनाये जाएँ तो यह क्रिया आविश्चिकीर्षा की पराकाष्ठा होगी।

शब्द ईज़ाद करने की इस इच्छा का प्रयोग तो नई कल्पनाओं को व्यक्त करने में किया जाना चाहिए। नई संकल्पनाओं की सूक्ष्मविविधता अंग्रेजी के इन शब्दों में व्यक्त होती है - Association, league, union, federation, confederation, आदि।

दो या अधिक राज्य अपने सामान्य अथवा विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मंडल बनाते हैं। इन्हीं मंडलों से संबंधित ये अनेक अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द हैं। इनमें निहित कल्पनाओं का विश्लेषण करके शब्द निश्चित करने की आवश्यकता है। वैब्स्टर के कोश के अनुसार Association एक स्वैच्छिक संगठन है। उदाहरण के लिए, बांडुंग कॉन्फरेंस के राष्ट्र स्वेच्छा से तटस्थता और सहअस्तित्व आदि पंचशील की नीति अपनाने के लिए एकत्र हुए थे। उनके सम्मेलन की कोई वैधानिक स्थिति नहीं थी। इसके लिए हमारे पास जातक-साहित्य का पालि शब्द 'संथा' है। भारतीय संविधान में डॉ॰ रघुबीर तथा श्री भगवानदास केला ने भी यही शब्द स्वीकार किया है। शिक्षा मंत्रालय का एक पर्याय **संस्था** भी है। उस्मानिया विश्वविद्यालय ने **संगति** तथा पं॰ सुंदरलाल ने अपने संविधान के अनुवाद में सभा शब्द सुझाया है। प्रस्तुत शब्द L. Socius साथी से बना है। Sociate का अर्थ होता है साथ होना as वास्तव में ad उपसर्ग है। अतएव Association में साथ होने, एकत्र होने या सम्मेलन का भाव है। जातक काल में **'संथा'** शब्द का भी यही अर्थ था, अतएव **संथा** शब्द ही यहाँ उपयुक्त पर्याय प्रतीत होता है। 'संस्था का रूढ़ार्थ' आज एक केंद्र, या विद्यालय हो गया है, अतएव यह शब्द Association के पर्याय के रूप में कभी-कभी भ्रम उत्पन्न कर देता है। संगति (सम् ✓गम् + क्तिन्) साहचर्य के भाव का द्योतक शब्द है। इसका हिंदी में अर्थ साथ रहना और चलना है (उसकी संगति-संगत अच्छी नहीं, तबले पर संगति श्री...करेंगे) यह अर्थ एसोसिएशन का यौगिक अर्थ है। राजनीति में उस शब्द की लक्षणा से उत्पन्न 'संगठन' भाव को ही अपने क्षेत्र में स्वीकार किया है। सभा शब्द का प्रयोग तो आज assembly (विधान सभा) council (राज्य-सभा) अनेक अर्थों में हो रहा है। उसका इस प्रसंग में प्रयोग ठीक अर्थ नहीं देता।

League (लीग) इसी तरह का शब्द है । यह L. Ligare शब्द से बना है जिसका अर्थ बाँधना, चुनना है । अतएव लीग का अर्थ स्वेच्छा से एकत्र होकर अपने को किसी उद्देश्य या विधान से अनुशासित करना है । लीग ऑफ नेशन्स इसी प्रकार का संगठन था । डॉ॰ रघुबीर तथा अन्य कोशकारों तथा लेखकों ने **संघ** शब्द का प्रयोग किया है । पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राचीन काल में भी संघ का यही आशय था परंतु जब से भारत के राजनैतिक जीवन में मुस्लिम-लीग और लीग ऑफ नेशन्स आदि प्रचलित हुए, बहुत-से लेखक लीग लिखना भी पसंद करते हैं ताकि इसे संघ से अलग समझा जा सके ।

राजनीति की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण तो **यूनियन** है । विभिन्न राज्य कभी स्वेच्छा से सामान्य शासन की व्यवस्था करके या किसी विशेष उद्देश्य (तटस्थता की रक्षा, विशेष अधिकारों की गारंटी आदि) को सामने रखकर संगठित हो जाते हैं । यूनियन (संघ) शब्द आज अनेक अर्थों में प्रचलित है । प्रधानतः इसमें अंतर्गत एक व्यवस्थित पारस्परिक संबंध और केंद्रीय सत्ता का भाव निहित है । (शासकीय) संघ इसी भाव को प्रकट करते हैं । जिस प्रकार L. Uni से 'स्वर-परिवर्तन' द्वारा one और onion शब्द बनते हैं उसी प्रकार L. Unus से union शब्द का जन्म हुआ है । चूँकि उक्त संगठित एकबद्धता का भाव **संघ** में निहित है, अतएव प्रायः सभी कोशों ने इसे ही उचित पर्याय माना है ।

राजनीति में संघ के कई प्रकारों की व्याख्या की गई है । उनके पारिभाषिक **व्यक्तिगत संघ** (Personal Union) और **वास्तविक संघ** (Real Union) **गण-संघ** (Federal Union) **राज्य-मंडल** (Confederation) आदि हैं । Union के लिए 'संघ' शब्द का व्यवहार करते समय केवल एक ही अवसर पर कठिनाई का अनुभव हुआ है । हिंदी में तथा कुछ मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं में भी federation के लिए भी 'संघ' शब्द प्रचलित है । जब federal union शब्द सामने आया तो हिंदी साहित्य सम्मेलन ने एक स्थान पर गण-संघ तथा दूसरे पर संघात्मक एकीकरण तथा संघ-संयुति शब्द निर्धारित किए । डॉ॰ रघुबीर ने federation के अर्थ में संधान (सम् ✓धा + ल्युट् = मेल) शब्द बनाया, इससे गणसंघ के साथ में संधानसंघ शब्द प्राप्त हुआ । परिभाषा के अनुसार तो गण और संघ शब्द इस अर्थ में उपयुक्त प्रतीत हुए हैं । अन्य कोशकारों (शि॰ मं॰ उस्मानिया आदि) को इस भाव के लिए कोई अन्य शब्द न जँचा तो उन्होंने फैडरल शब्द ही स्वीकार कर लिया ।

'व्यक्तिगत संघ' में दो या अधिक राज्यों का राजा या अधिकारी एक ही होता है । प्रायः ये राजतंत्रीय होते हैं,[1] अतएव इनमें व्यक्ति प्रधान होता है । वास्तविक संघ में एक या अधिक राज्यों का एक सामान्य शासक ही नहीं होता वरन् सामान्य कामों की व्यवस्था के लिए सामान्य संविधान तथा अंतर्राष्ट्रीय समझौते भी होते हैं ।[2]

'राज्य मंडल' राज्यों का वह संघ है जो विशेष उद्देश्यों की सिद्धि के लिए विशेषतः बाह्य सुरक्षा की दृष्टि से बनाया जाता है । राज्य मंडल का प्रत्येक सदस्य अपनी

स्वाधीनता तथा प्रभुत्व कायम रखता है। केवल जो शासन-सत्ता या अधिकार राज्य-मंडल को सौंप दिए गए हैं उनके संबंध में उसे कोई अधिकार नहीं रहते। संश्रय (मैत्री-संधि) alliance में बँधे हुए राज्य-समूह और राज्य-मंडल में यह अंतर है कि प्रथम में कोई केंद्रीय संस्थाएँ नहीं होतीं जिनके द्वारा सदस्य राज्यों की इच्छा व्यक्त हो। व्यक्तिगत संघ और राज्यमंडल में यह भेद है कि राज्य मंडल के सदस्यों से आपस में संबद्ध रखने वाला बंधन, सामान्य प्रभु के अतिरिक्त कुछ और भी होता है। राज्य-मंडल की स्थापना एक लिखित अंतर्राष्ट्रीय समझौते के द्वारा होती है, किसी उत्तराधिकार-क़ानून की आकस्मिक क्रिया के कारण नहीं।[3]

जब अनेक राज्य एक सामान्य-प्रभुत्व के अधीन अपने शासन प्रबंध के लिए एक सामान्य केंद्रीय शासन की स्थापना करते हैं या जब कुछ प्रांत राज्य के अधीन सर्वोच्च अधिकारी के नियंत्रण में स्वायत्त शासित बना दिए जाते हैं, तब संघ राज्य की स्थापना होती है। संघ राज्य या गण संघ federation तथा राज्य-मंडल confederation में अंतर यह है कि राज्यमंडल के अंतर्गत राज्य स्वाधीन रहते हैं। वे केवल आत्मरक्षा तथा सुरक्षा के लिए ही परस्पर मिलकर व्यवस्था करते हैं, परंतु संघराज्य उन विभिन्न राज्यों के विलीन होने से बनता है जो आपस में मिलकर सामान्य हित के मामलों का एक केंद्रीय सरकार द्वारा शासन-प्रबंध करते हैं। Federation शब्द L. Foedus=covenant से बना है। इसका अर्थ संधि या समझौता है। जब संधि और समझौते के आधार पर राज्यों का संगठन होता है तो मूलतः उसे Federation कहते हैं। डॉ० रघुबीर ने चूँकि Federation के लिए संधान शब्द बनाया अतएव confederation के लिए उन्हें प्रसंधान (प्र=बड़ा) शब्द बनाना पड़ा। यद्यपि वे प्राचीन परंपरावादी हैं फिर भी उन्होंने राज्यमंडल शब्द को इस अर्थ में क्यों उपयुक्त नहीं माना, यह समझ में नहीं आता। राज्यांगों के 'मित्र' प्रसंग में मंडल शब्द इसी पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त है।[4] उस्मानिया विश्वविद्यालय ने भी नया शब्द 'परिराज्य संघ' बनाया है।[5] सभी राज्यों के संघ का मंडल शब्द अपनी विशेष अर्थ-परंपरा देता है। परिभाषाओं की इतनी चर्चा इसलिए करनी पड़ी कि अत्यंत मिलती-जुलती संकल्पनाओं को परिभाषा या व्याख्या द्वारा अलग न कर लिया जाए तो पारिभाषिक शब्द की शुद्धता

---

1. *व्यक्तिगत संघों के दो उदाहरण निम्न प्रकार हैं -चार्ल्स पंचम के अधीन सन् 1520 ई० से 1956 ई० तक स्पेन तथा प्राचीन जर्मन साम्राज्य का संघ, 1603 सन् 1707 ई० तक स्काटलैंड तथा इंगलैंड का संघ जिसका ग्रेटब्रिटेन को यूनाइटेड किंगडम में दोनों के सम्मिलित हो जाने से अंत हुआ।*
2. *1867-1919 तक आस्ट्रिया-हंगरी का संयोग, 1905-1915 तक नार्वे-स्वीडन का संघ, वास्तविक संयोग के उदाहरण हैं।*
3. *आधुनिक काल में राज्य-मंडलों के दो बड़े उदाहरण हैं - संयुक्त राज्य अमरीका 1788-1789 और जर्मन राज्य मंडल 1815-1867।*
4. *तस्य समन्ततो मण्डलीयभूताः भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः। तथैव भूम्येकान्तरा मित्र-प्रकृतिः॥ अर्थशास्त्र 6/2/97*
5. *उस्मानिया वि०वि० ने क्रिया के अर्थ में फैडिरेटना शब्द बनाया है।*

सिद्ध करना कठिन हो जाता है। इस चर्चा से यह भी सिद्ध हुआ है कि नई कल्पनाओं के लिए प्राचीन शब्द किस सीमा तक व्यवहार्य हैं और कहाँ नए शब्द बनाने और किन तत्त्वों के आधार पर बनाने की आवश्यकता है। शब्द का निर्माण केवल उपसर्ग, धातु, प्रत्यय का जोड़-तोड़ नहीं है। यह अत्यंत सूक्ष्म और तीव्र कल्पनाश्रित प्रक्रिया है। इस कार्य के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानक संगठन यूनेस्को की तकनीकी कमेटी-37 ने संकल्पनाओं की शृंखलायें बनाकर शब्द तय करने का निर्देश दिया। इस संस्था के तत्त्वावधान में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं की शब्दावलियों का समन्वय और मानकीकरण किया जा रहा है।

नई कल्पनाएँ वास्तव में भौतिक विज्ञानों के क्षेत्रों में बहुतायत से आयी हैं। इनके मूल में जो वैज्ञानिक चिंतन-वृत्ति थी वह इस नवीन युग की सबसे महत्वपूर्ण देन थी। जिस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप के समस्त व्यवहार और चिंतन के ढाँचे को हिला दिया था, तथा जिस प्रकार सोवियत रूस के आर्थिक राजनैतिक ढाँचे ने पाश्चात्य देशों में ही पूँजी और श्रम का एक द्वैत कर दिया था, उसी प्रकार भारत के मानस को लॉर्ड मैकाले ने शिक्षा- पद्धति से तथा योरोपीय संपर्क से प्राप्त ज्ञान से आलोड़ित कर दिया। कल्पनाओं से उलझते हुए भारतीय विद्वान नई भाषा, नई शब्दावली की सृष्टि करने लगे। भारत की परंपरागत संस्कृति और जनमानस को जिस ज्ञान का सामना करना पड़ा उसे आत्मसात् करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ और एक प्रकार की समान्तरित स्थिति बनी रही। नहीं तो भारतीय आत्मा और विचार-पद्धति से उन कल्पनाओं का समुचित समन्वय स्थापित हो जाता। महात्मा गाँधी ने सार्वदेशिक रूप से इस समन्वय की कई कल्पनातीत और विलक्षण झाँकियाँ प्रस्तुत कीं। जैसे राजनीति के क्षेत्र में राजा और प्रजा के बीच मात्र शासन और शासित का संबंध था। जनता के आचरण और अधिकारों को नियंत्रित करने के लिए विधि या क़ानून की व्यवस्था की गयी थी। राजनीति में विद्रोह, राजद्रोह, ग़दर, गैर-क़ानूनी हरकतें इत्यादि शब्दों का ही प्रयोग होता था। ये सब शब्द शांति और व्यवस्था को भंग करने वाले वैयक्तिक या सामूहिक आचरणों के लिए प्रयुक्त होते थे। महात्मा गांधी ने शांति एवं विधि-विरुद्धता के भावों को मिला कर एक नई कल्पना खड़ी की और उसे नाम दिया 'असहयोग आंदोलन'। सविनय अवज्ञा, अहिंसात्मक विद्रोह, भूख-हड़ताल आदि नवीन राजनैतिक व्यवहारों का आविष्कार 'एसर्शन ऑफ राइट्स' के साथ 'अहिंसा' का समन्वय है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान से मिलते-जुलते निरादर्शी मानव के प्रकृत व्यवहारों के नियमों की चर्चा होती है। इसमें यदि कोई आदर्श हैं तो वे व्यक्तिगत या सामाजिक भौतिक समृद्धि संबंधी हैं। विज्ञान में नीति की दृष्टि से इन क्रियाओं का विवेचन नहीं किया गया। माँग और पूर्ति के नियम, मुद्रा-स्फीति के नियम, उत्पादन-वृद्धि के नियम आदि सभी किसी नैतिक आधार की कल्पना को प्रश्रय नहीं देते। महात्मा गांधी ने सबसे पहले नैतिक अर्थ-व्यवस्था शब्द का प्रयोग किया और इस तरह सामाजिक विज्ञानों में नीति और धर्म के साथ आर्थिक व्यवस्था की समन्वित कल्पना की। इसी प्रकार की अन्य आर्थिक कल्पना वर्गहीन समाज है। वर्गहीन समाज भारत की परंपरा से उद्भूत मात्र आर्थिक कल्पना है। उसमें वर्णभेद कायम रहे या नष्ट हो जाए इसकी कोई चर्चा नहीं

है । वर्गों के अस्तित्व का आधार महात्मा गाँधी के अनुसार वर्ण न होकर आर्थिक शोषण है । जिसके कारण कुछ तो 'हैव्ज'(सम्पन्न) हैं और कुछ 'हैव नॉट्स' (विपन्न) हैं । उनके अनुसार यही अनैतिक व्यवस्था है । इसका अंत करने के लिए शोषणहीन नैतिक अर्थ-व्यवस्था पर आश्रित सहकारी समाज के निर्माण की आवश्यकता है । इस समाज की कल्पना का निर्माण करने में उन्होंने दो अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया है जो पूँजी और श्रम की साझेदारी तथा उद्योगों का विकेंद्रीकरण है । अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ये कल्पनाएँ पूँजीवाद और समाजवाद की मध्यवर्ती कल्पनाएँ हैं तथा भारत की अपूर्व प्रतिभा की द्योतक हैं । राजनीति के क्षेत्र में ऐसा ही शब्द राम-राज्य है । 'राज्य' जाति और राष्ट्र की सांस्कृतिक कल्पना है । उसका राम, चन्द्रगुप्त, अकबर, या विक्टोरिया से कोई संबंध नहीं है । वह जनमानस की आत्मसंगठन की कल्पना है और अनेक रूपों में व्यक्त होती रही है । इसी को ध्यान में रखकर गाँधी जी ने धर्म के 'राम' को धर्मातीत सेक्युलर क्षेत्र में उतारकर शोषणहीन, सहकारी आत्मशासित समाज व्यवस्था को 'राम-राज्य' की संज्ञा दी जो वर्तमान और अतीत पूर्व और पश्चिम का विलक्षण समन्वय प्रस्तुत करती रही है । शब्द-निर्माण में ऐसी ही विलक्षण प्रतिभा की आवश्यकता होती है ।

राजनीति एक विशाल विषय है । इसकी संकल्पनाओं की संख्या भी बहुत अधिक है क्योंकि यह विषय जीवन के प्रत्येक पक्ष को छूता है । मैंने प्रस्तुत निबंध में सामान्य सैद्धान्तिक चर्चा ही की हे । अंत में पर्याय-बहुलता पर संक्षिप्त रूप से विचार करते हुए मैं इस विषय की चर्चा समाप्त करता हूँ । आज हिंदी में अनेक पारिभाषिक शब्दकोश हैं । एक अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द के लिए विभिन्न भारतीय कोशों में विभिन्न पर्याय मिलते हैं । उदाहरणार्थ - Monarchy और Monocracy के लिए डॉ॰ रघुवीर राजतंत्र, दाते कर्वे - राजतंत्र, एकशासन, उस्मानिया वि॰वि॰ - एकशासन, एकशाही है ।

Aristocracy के लिए डॉ॰ रघुबीर-अभिजात-तंत्र, दाते कर्वे - कुलीन राज्य, शिष्टशासन, उस्मानिया वि॰वि॰ - उच्च शासन, अमीरशाही शब्द निश्चित करते हैं । इससे हमें तीन स्पष्ट धाराओं का आभास मिलता है । डॉ॰ रघुवीर सांस्कृतिक पुनरुत्थान में मात्र संस्कृत को ही प्रधानता देते हैं, उस्मानिया वि॰वि॰ प्रचलित भाषा की शब्दावली में नवीन प्रयोगों का आश्रय लेता है । इन दोनों से परे शिक्षा-मंत्रालय और नागरी प्रचारिणी सभा ने समन्वित दृष्टिकोण से शब्द बनाए हैं । शब्द-चयन में समन्वित दृष्टिकोण ही सबसे उपादेय होता है । वह वर्तमान को अतीत से अभिभूत नहीं करता और न वर्तमान की सत्ता को अतीत से काटकर ही स्वीकार करता है । इसीलिए शिक्षा मंत्रालय राजनीति और तटस्थता शब्दों के होते हुए भी मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में प्रचलित राजकारण और नातरफादारी शब्दों को हेय या त्याज्य नहीं समझता है । प्रांतीय क्षेत्र में उनको तथा उन जैसे अन्य शब्दों को पर्यायों की मान्यता प्रदान करता है । आधुनिक राजनीति-विज्ञान के लेखक इस स्थिति को स्वीकार करेंगे तो भारतीय भाषाओं के लिए यह हितकर बात होगी ।

°°°°°

हमारी वैज्ञानिक शब्दावली :
सहज विकास बनाम शब्दानुवाद

- श्री दयानंद पंत

प्राचीन भारत में ज्ञान का विकास काफी प्रगत था और वस्तुओं और संकल्पनाओं के सार्थक नाम थे । नए आविष्कारों और खोजों के साथ-साथ नई शब्दावली भी बनती गई । शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ इस शब्दावली में स्थिरता भी आ गई । शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी जिसका अखिल भारतीय प्रयोग था । यह अखिल भारतीय शब्दावली रिस कर आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी प्रवेश कर गई और आज भी गणित, दर्शन, भाषा-विज्ञान, संगीत आदि की शब्दावली में काफी सीमा तक आधुनिक भारतीय भाषाओं में एकरूपता है । नदियों-पर्वतों, राशियों-नक्षत्रों, उत्सव-त्यौहारों, रोगों आदि के नामों में एकरूपता है । प्राचीन भारत के विकसित वाङ्मय के समझने में इस सशक्त शब्दावली का विशेष योगदान रहा । साथ ही विज्ञान का विकास भी द्रुत गति से हुआ । भाषा विज्ञान में तो भारत का सा ज्ञान यूरोप में कुछ ही सदियों पूर्व प्राप्त हुआ । चिकित्सा-विज्ञान में भारत चीन का समकक्ष था । गणित में मिस्र यूनान के समकक्ष रहा और मध्य युग में आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य के कार्यों ने इसे अग्रणी बना दिया । दशमिक संख्या पद्धति का यहीं उदय हुआ । बीजगणित, ज्या(साइन) आदि भी यहीं की उपलब्धियां हैं ।

फिर विदेशी आक्रमणों का सिलसिला जारी हो गया और हम अंधयुग में चले गए । वैज्ञानिक विकास तो बिल्कुल बंद हो गया ।

ऐसी स्थिति में अंग्रेजों ने भारत में अधिकार जमा लिया ओर मैकॉले की सिफारिश से अंग्रेजी के माध्यम से ही शिक्षा होने लगी । अंग्रेजों को सरकारी कामकाज चलाने के लिए लिपिक चाहिए थे, वे उन्हें मिल गए । कुछ प्रतिभाशाली युवकों ने उच्च शिक्षा भी ली और कुछ विदेश जाकर भी सीखे । एक भारतीय वैज्ञानिक को नोबेल पुरस्कार भी मिला । विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़लिख कर भी हम विज्ञान के क्षेत्र में भी किंचित् मौलिक योगदान दे ही पाए - यदि अपनी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त किए होते तो क्या नहीं कर डालते !

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद माध्यम परिवर्तन की बात उठी । सभी प्रदेशों ने सरकारी कामकाज तो अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम से आरंभ कर ही लिया किंतु उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहा । देश के नेता और बुद्धिजीवी दो गुटो में बंट गए । एक गुट की मान्यता यह रही कि उच्च शिक्षा - विशेष कर विज्ञान-शिक्षा-का माध्यम अंग्रेजी ही रहना चाहिए । दूसरा गुट अपनी भाषा के प्रेमियों का था जो चाहते थे कि उच्चतर शिक्षा का भी

माध्यम अपनी ही भाषाएं हों – जैसा कि चीन, जापान, तुर्की में हुआ था। अधिकांश नेता भारतीय भाषा समर्थक थे। किंतु दुर्भाग्य से प्रधानमंत्री अंग्रेजी समर्थक थे। भारतीय भाषाओं के बीच भी होड़ चली। दक्षिण के लोग हिंदी के विरोधी हो गए। इन परिस्थितियों ने स्वतंत्रता के तुरंत बाद माध्यम परिवर्तन नहीं होने दिया। इसी संक्रांति-काल में अंग्रेजी के समर्थकों ने एक चाल चली – कह दिया कि शब्दावली के अभाव में माध्यम परिवर्तन संभव नहीं है। चीन, जापान आदि देशों में शब्दावली का अभाव विज्ञान शिक्षा के आड़े नहीं आया। ऐसा यहाँ भी हो सकता था। कुछ दिनों तक अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों को वैसा ही लेकर भी पुस्तकें लिखी जा सकती थीं। किंतु भाषा-प्रेमी इन अंग्रेजी समर्थकों की चाल को नहीं समझ पाए। इस चाल को ही चुनौती मानकर शब्दावली-निर्माण में लग गए। अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के पर्याय थोक में गढ़े जाने लगे और शब्दावली, जोकि एक साधन थी, अब साध्य बन गई। माध्यम-परिवर्तन, जो कि वास्तविक साध्य था, अब गौण हो गया। नागरी प्रचारिणी सभा, विज्ञान परिषद्, दाते कर्वे, रघुवीर आदि के कोश बन गए। कोशकार का कर्तव्य सामान्यतः यह होता है कि वाङ्मय से शब्द संकलित कर कोशों में संगृहीत करे किंतु अब कोशकार शब्द-निर्माता ही हो गया। उल्टी गंगा बहने लगी। ऐसी स्थिति में भारत सरकार ने शब्दावली कार्य अपने हाथ में ले लिया। सामान्यतः इस प्रकार के कार्य भाषाशास्त्री के जिम्मे जाता था, पर भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (बाद में मानव संसाधन विकास मंत्रालय) में भाषाविदों और वैज्ञानिकों ने मिलजुलकर कार्य किया। परिणाम अच्छे निकले और लगभग 5 लाख अंग्रेजी शब्दों के पर्याय निर्धारित हो गए। हाल में इनका कंप्यूटरीकरण भी हो गया। इस अभियान को मैं विलक्षण अभियान कहता हूँ। पर देखना यह है कि माध्यम-परिवर्तन की दिशा में इसका कितना योगदान रहा। दूसरा प्रश्न जो उठता है वह यह है कि अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के भारतीय समानक निर्धारण-कार्य में क्या पर्यायों को विकसित किया गया या अंग्रेजी का हूबहू अनुवाद (अंधानुवाद) हो गया।

इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व लगभग सौ वर्ष पूर्व हुए दो महान बौद्धिक कार्यों का उल्लेख करना अपेक्षित है। एक था डॉ॰ गणनाथ सेन द्वारा शरीर-विज्ञान का और पं॰ सुधाकर द्विवेदी द्वारा गणित की आधुनिक शब्दावली का विकास। इन दोनों विद्वानों के कार्यों को मान्यता मिली और दोनों को सरकार ने महामहोपाध्याय उपाधि से विभूषित किया। आयुर्वेद की शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी जिसमें अच्छे ग्रंथ थे। डॉ॰ गणनाथ सेन ने सोचा कि आधुनिक शरीर-विज्ञान (एनाटौमी) की अधुनातन जानकारी विद्यार्थियों को मिलनी ही चाहिए। इस अभाव की पूर्ति के लिए उन्होंने संस्कृत भाषा में एनाटौमी की पुस्तक लिख डाली, जिसको नाम दिया 'प्रत्यक्ष-शारीरम्'। इस ग्रंथ में कई शब्दों का मानकीकरण हुआ। शिरा और धमनी दोनों शब्द प्रयोग में थे पर इसी ग्रंथ में शिरा को vein और धमनी को artery के लिए स्थिर कर दिया गया। संस्कृत की यह शब्दावली बंगाल में विकसित हुई और वहाँ से बनारस, हरिद्वार आदि अन्य आयुर्वेद के केंद्रों में चली गई और धीरे-धीरे सारी उत्तरी भारत की भाषाओं में रिस गई और आज के दिन भी जीवन-विज्ञानों

की इस मूलभूत शब्दावली में अखिल भारतीय स्तर की एकरूपता है । पं० सुधाकर द्विवेदी का कार्य था गणित की शब्दावली का स्थिरीकरण । उस समय हाई स्कूलों में भी गणित को अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाया जाता था, पर मिडिल स्कूलों की शिक्षा का माध्यम हिंदी प्रदेश में हिंदी या उर्दू था । हिंदी में गणित की पुस्तकें इसी विद्वान ने बनाई और शब्दावली का विकास किया । गणित की तीन शाखाओं – अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के पारिभाषिक शब्दों का स्थिरीकरण हो गया । यह सहज विकास था – यह शब्दावली विकास पुस्तक प्रणयन के संदर्भ में किया गया और यह शब्दावली रूढ़ हो गई । गणित की तीन शाखाओं ऐरिथमैटिक, एल्जेबरा और ज्योमेट्री के नामों में बिल्कुल ही एकरूपता नहीं है । । एल्जेबरा का तो मूल अर्थ कोई जानता ही नहीं । हिंदी के अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित में शाब्दिक साम्य भी है । किस प्रकार रेखागणित के स्थान पर ज्यामिति शब्द ने प्रवेश किया उस पर चर्चा आगे करेंगे ।

इन दो विद्वानों ने भारतीय माध्यम से विज्ञान-शिक्षा के संभव हो सकने में महानतम योगदान दिया किंतु इनके उस विलक्षण योगदान को अब भुलाया जा चुका है । जब शब्दावली-कार्य भाध्यम-परिवर्तन का साधन रहने के स्थान पर साध्य हो गया तो शब्दावली के सहज विकास के स्थान पर अंधानुवाद होने लगा । इस चर्चा का आरंभ किया जाए 'रेखागणित' बनाम 'ज्यामिति' से । 'ज्यामिति' शब्द geometry का शब्दानुवाद है । इसका अर्थ है भू-मापन (geo = भू metry = मिति) । इसी सदी के पूर्वार्ध तक हिंदी में रेखागणित शब्द ही प्रचलित था । यहाँ तक कि डॉ० रघुवीर ने भी इसे मान्यता दी । हाँ, इसके साथ-साथ रैखिकी शब्द भी गढ़ दिया । बाद में जब शिक्षा मंत्रालय ने शब्दावली-कार्य का श्रीगणेश किया तो किसी शब्द के पर्याय-निर्धारण के पूर्व अन्य भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों को भी देखना-परखना आरंभ कर दिया । बंगला भाषा में 'ज्यामिति' का प्रयोग हो चुका था । इस भाषा की रेखागणित की प्रथम पुस्तक लगभग सौ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी । उसका नाम था 'यूक्लिडेर ज्यामिति' । फिर क्या था रेखागणित शब्द से छेड़छाड़ शुरू हो गई । रेखागणित का निष्कासन तो संभव नहीं था । उसका एक रकीब उपस्थित कर दिया । कहा गया कि ज्यामिति शब्द geometry के अनुरूप है । अंग्रेजी शब्द से पर्याय की अनुरूपता की स्थापना तो हो गई किंतु जो अपने भाइयों (अंकगणित, बीजगणित) से उसकी अनुरूपता थी उसका विनाश कर दिया गया । मैं इस प्रकार की तथाकथित नव-विकसित शब्दावली को अंग्रेजी के शब्दों का 'अंधानुवाद' ही कहता हूँ । कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं :

हिंदी का जाना-माना शब्द है 'सप्तक' । समस्त भारतीय भाषाओं में 'सारे ग म प ध नी सां' को सप्तक ही कहते हैं । सात स्वरों के इस समूह का नाम सप्तक वास्तव में सटीक है । अंग्रेजी में इसे octave कहते हैं अर्थात् आठ स्वरों का समूह (oct = आठ) । octave से प्रेरित होकर अधानुवादियों ने इसका पर्याय 'अष्टक' दे दिया । भौतिकी विशेषज्ञ समिति ने काफी चर्चा के बाद यह निर्णय लिया कि 'सप्तक और अष्टक' दोनों

पर्यायों को मान्यता दे दी जाए । संगीत की विशेषज्ञ समिति में भी एकाध अष्टकवादी तो थे पर सप्तक शब्द इतना रूढ़ हो चुका था कि उन्होंने केवल सप्तक को ही स्वीकारा । प्रश्न है क्या सप्तक और octave एक ही संकल्पना के द्योतक हैं या दो अलग संकल्पनाएं हैं । इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक दूसरे शब्द का सहारा लेना अपेक्षित है । सात दिनों के समूह को हम सप्ताह कहते हैं । उर्दू का शब्द 'हफ्ता' भी सात का ही द्योतक है (फारसी का हफ्त, संस्कृत का सप्त है) । गुजराती, मराठी भाषाओं में सप्ताह को अठवाड़ा या अठौड़ा कहते हैं । रविवार से रविवार तक आठ दिन है । इसलिए उन्होंने नाम रख दिया अठौड़ा । सारेगमपधनीसां भी आठ स्वर है पर अंतिम स्वर सां अगले सप्तक का आरंभिक स्वर है । वास्तव में स्वर सात ही हैं । इसलिए सप्तक को अष्टक करना अनर्थक छेड़छाड़ है । हमारा शब्द सप्तक रूढ़ है । वास्तव में शब्द-निर्माण करने वाले लोगों में यह भावना व्याप्त हो गई कि प्रचलित शब्दों के औचित्य का निर्धारण भी करना है । यह उनकी अनधिकार चेष्टा ही है । खैर सप्तक का प्रतिद्वंद्वी अष्टक सप्तक का बिगाड़ नहीं कर पाया ।

दूसरा उदाहरण है 'अंडज' और 'जरायुज' । ये शब्द मनुस्मृति में हैं, अमरकोश में है और इनकी लंबी परंपरा है । अंग्रेजी के शब्द जो इसी अर्थ का द्योतन करते हैं वे हैं oviparous और viviparous । अंडज का अर्थ है अंडे से उत्पन्न और oviparous का अर्थ है 'अंडा देने वाला' । कुछ शब्द-निर्माता अपनी अहंभावना से प्रेरित होकर अंडज को अंडप्रजक करने को उद्यत हो गए । वास्तव में अंडज और जरायुज की जोड़ी बहुत ही सटीक है और परंपरा-प्राप्त है । oviparous और viviparous जोड़ी में मुझे यह आपत्ति है कि viviparous को 'सजीवप्रजक' यदि मान लें तो मानना पड़ेगा कि oviparous सजीव नहीं है ।

ये सब उसी अहंभावना के प्रतिफलन हैं जिससे प्रेरित होकर महान बौद्धिककर्मी डॉ॰ रघुवीर ने गज, फुट इंच को यष्टि, पाद और प्रांगुल कर दिया ।

अंधानुवाद के अन्य उदाहरण हैं - वैज्ञानिक शब्दावली आयोग की प्राणिविज्ञान शब्दावली में heterotrophic को 'विषमपोषित' कर दिया जाना, जबकि autotrophic को 'स्वपोषित' किया गया । 'स्वनिषेचित' का विलोम है 'परनिषेचित', 'स्वपरागित' का 'परपरागित' तो स्वपोषित का परपोषित होना चाहिए । homo, heter इन दो शब्दों के पर्याय सम और विषम उपसर्ग से बनाए गए, जो ठीक था, पर auto का विलोम hetero तो 'विषम' नहीं बल्कि 'पर' है । ग्रीक भाषा का heter संस्कृत 'इतर' का भाई है । अंग्रेजी other इसी से व्युत्पन्न है ।

इसलिए यह मानना पड़ेगा कि हमारी अभिनव वैज्ञानिक शब्दावली में कुछ अंश अंग्रेजी का अंधानुवाद है । सहज विकास कितना है और अंधानुवाद कितना यह तो एक शोध का विषय है । फिर भी हमारी नव-विकसित शब्दावली काफी सक्षम है, जिसका अधिकाधिक प्रयोग होना अपेक्षित है । प्रयोग के उपरांत इसका शोधन होता रहेगा ।

°°°°°

संक्षिप्त तकनीकी शब्दावली : अनुवाद परिप्रेक्ष्य

- डॉ॰ हरिमोहन कृष्ण सक्सेना

ज्ञान-विज्ञान की भाषा तथ्यप्रधान या सूचनापरक होती है, रागात्मक या भाव प्रधान नहीं । वैज्ञानिक भाषा का उद्देश्य तथ्यों की सही-सही जानकारी देना है, मनोभावों की अभिव्यक्ति नहीं । तथ्यों को सही-सही ढंग से और सुस्पष्टता के साथ व्यक्त करना तकनीकी लेखन का अनिवार्य गुण है । एक तीसरी विशेषता है कम-से-कम शब्दो में अधिक से अधिक बात कहना । इस प्रकार तकनीकी लेखन की तीन विशेषताएं हैं : यथातथ्यता (exactness) और संक्षिप्तता या लघुता (brevity or conciseness) । लोकप्रिय स्तर पर वैज्ञानिक लेखन में व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग होता है, किंतु उच्चस्तरीय वैज्ञानिक विचार-विमर्श में व्याख्यात्मक शैली के स्थान पर प्रतीकात्मक या सूत्रात्मक शैली का प्रयोग जरूरी हो जाता है । लेखक या अनुवादक के सामने अक्सर ऐसी स्थितियां आती हैं जब व्याख्यात्मक शब्द उपलब्ध होते हुए भी उनका प्रयोग संभव नहीं होता, क्योंकि वे वैज्ञानिक तथ्यों के संप्रेषण में बाधक सिद्ध होते हैं । प्रस्तुत लेख में तकनीकी अनुवाद करते समय व्याख्यात्मक शब्दों से उत्पन्न समस्याओं का विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है ।

सेवानिवृत्त होकर दिल्ली से अपने पैतृक शहर लखनऊ आने के बाद मुझे लखनऊ में स्थित कई वैज्ञानिक संस्थानों और केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक शब्दावली के विभिन्न पहलुओं पर व्याख्यान देने का अवसर मिला । एक कार्यशाला में यह बात उठाई गई कि शब्दावली आयोग ने वर्षों से चले आ रहे शब्दों के स्थान पर नए अपरिचित शब्दों को अपनाया है । इस दलील के पक्ष में यह कहा गया कि अंग्रेजी के anatomy और physiology शब्दों के लिए हिंदी में क्रमशः शरीररचना-विज्ञान और शरीर क्रिया-विज्ञान का प्रयोग काफी लंबे समय समय से हो रहा है, फिर शब्दावली आयोग द्वारा उनके स्थान पर क्रमशः 'शारीर' और 'कार्यिकी' जैसे कठिन शब्दों के प्रयोग का कोई औचित्य समझ में नहीं आता । ऐसे शब्दों के प्रयोग का औचित्य समझने के लिए हमें ऐसे कुछ संदर्भ देखने होंगे जहाँ इनका प्रयोग होता है । उदाहरणार्थ :-

1. Physiological anatomy is the study of relationship between structure and function.
2. Anatomy and physiology of insects.
3. Phytophysiology and zoophysiology.
4. Plant physiological ecology.

5. Physiology of respiration
6. Comparative anatomy of vertebrates
7. Anatomical adaptations of birds
8. Non-insect invertebrate host of sugar cane

ये वाक्य या वाक्यांश हिंदी में इस प्रकार हो सकते हैं :-

1. शरीरक्रिया-विज्ञानी शरीररचना-विज्ञान में सरंचना या प्रकार्य के संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

   या

   'कार्यिकीय शारीर' विषय में संरचना या प्रकार्य के संबंधों का अध्ययन किया जाता है ।

2. कीटों का शरीररचना-विज्ञान और शरीर क्रिया-विज्ञान

   या

   कीट शारीर और कीट कार्यिकी

3. पादप-शरीरक्रिया-विज्ञान और प्राणि-शरीरक्रिया-विज्ञान

   या

   पादप-कार्यिकी और प्राणि-कार्यिकी

4. वनस्पति-शरीरक्रिया-विज्ञानी परिस्थिति-विज्ञान

   या

   वनस्पति-कार्यिकीय पारिस्थितिकी

5. श्वसन का शरीरक्रिया-विज्ञान

   या

   श्वसन की कार्यिकी

6. रीढ़ की हड्डी वाले जानवरों का तुलनात्मक शरीररचना-विज्ञान

   या

   कशेरुकियों का तुलनात्मक शारीर

7. पक्षियों में शरीररचना-विज्ञान अनुकलन

   या

   पक्षियों में शारीरी अनुकूलन

8. गत्रे के कीटेतर बिना रीढ़ हड्डी वाले परपोषी

या

गत्रे के कीटेतर अकशेरुकी परपोषी

जिस वैज्ञानिक संकल्पना के लिए अंग्रेजी में एनाटमी शब्द का प्रयोग किया जाता है उसके लिए आयुर्वेद साहित्य में 'शारीर' शब्द मिलता है । पहले यह शब्द शारीरिक रचना और शारीरिक क्रियाओं दोनों संकल्पनाओं के लिए प्रयुक्त होता था । जैसे –

> **"Harvey's (1578-1657) discovery of the circulation of blood was announced as an "anatomical exercise."**

आज हम सभी जानते हैं कि रुधिर परिसंचरण कार्यिकी (यानी फिजियोलौजी) का विषय है । परंतु उन्नीसवीं शताब्दी तक इस विषय का जन्म नहीं हुआ था और शरीर-क्रियाओं की चर्चा भी शरीर-रचना के अंतर्गत ही होती है । हमारे प्राचीन साहित्य में भी इस संकल्पना के लिए कोई शब्द नहीं मिला । इसलिए नया शब्द 'कार्यिकी' गढ़ लिया गया ।

उपर्युक्त उदाहरण संक्षिप्त शब्द की उपयोगिता के साक्षी हैं । इन प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संक्षिप्त शब्द प्रयोग में कितने सुविधाजनक होते हैं । एक वैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक भाषा-अनुवाद के विशेषज्ञ टी॰एच॰ सेवरी ने ठीक ही कहा है कि "विचारों की सुस्पष्टता के लिए हमें संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ।" लंबे-चौड़े शब्दों के संक्षिप्त रूपों का प्रयोग भाषाविज्ञान की एक सामान्य प्रक्रिया है । शब्दार्थविज्ञान और अंग्रेजी भाषा-प्रयोग के एक विशेषज्ञ एरिक पारट्रिज के अनुसार "भाषा के संपूर्ण इतिहास पर गौर करने से पता चलता है कि शब्दों को छोटा करने की प्रवृत्ति सदा से चली आ रही है ।"

सुविधापेक्षता अर्थात् प्रयोग में सुविधा के अलावा तथ्यात्मक शुद्धता यानी यथार्थता (एक्यूरेसी) की दृष्टि से भी संक्षिप्त शब्दों का अपना महत्व है । आम बोलचाल में हम मिलते-जुलते अर्थ वाले शब्दों में भेद नहीं करते । हम मोरपंख शब्द का प्रयोग मोर के परों के लिए करते हैं जब कि 'पंख' और 'पर' शब्द दो अलग-अलग संकल्पनाओं के बोधक हैं । 'पंख' wings और 'पर' feather के द्योतक हैं । एक अन्य उदाहरण लें । आम व्यवहार में 'विष' शब्द का प्रयोग तीन वैज्ञानिक संकल्पनाओं के लिए किया जाता है जिनके लिए अंग्रेजी के तीन शब्द poison, toxin और venom प्रयुक्त होते हैं । हिंदी के सामान्य कोशों में इनके लिए केवल 'विष' शब्द ही मिलता है । कुछ विद्वानों ने अंग्रेजी टॉक्सिन के लिए फफूंद-विष, जीवाणुविष या कवकविष और अंग्रेजी के 'वेनम' शब्द के लिए 'सर्पविष' शब्द सुझाए हैं । हिंदी की एक मासिक पत्रिका में 'फफूंदविष एक गंभीर समस्या' शीर्षक लेख मैंने भी पढ़ा था । इस लेख में बार-बार विष शब्द का प्रयोग अंग्रेजी 'टॉक्सिन' के पर्याय के रूप में किया गया था । उसी लेख में एक जगह 'आंतरिक विष' का

भी प्रयोग हुआ था । लोकप्रिय स्तर के इस लेख में भी व्याख्यात्मक शब्द निश्चित अर्थ-बोध की दृष्टि से उतने सटीक नहीं बैठते कि 'विष' शब्द का प्रयोग एक ही संदर्भ में दो संकल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए किया जा रहा है जिनके लिए अंग्रेजी में poison और टॉक्सिन शब्द प्रयुक्त होते हैं । एक उदाहरण देखिए :-

> **Toxic food poisoning is caused by the endotoxins and exotoxins produced by some species or strains of bacteria.**

इस वाक्य में दोनों संकल्पनाओं के बोधक अंग्रेजी शब्द एक ही वाक्य में आते हैं । अत: हिंदी में दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है । 'टॉक्सिन' के लिए एक नया शब्द गढ़ा गया है 'आविष' । इसका अर्थ होगा 'विष-जैसा पदार्थ' । अर्थ की दृष्टि से सार्थक होने के साथ-साथ इससे बहुत से शब्द आसानी से गढ़े जा सकते हैं । 'आविष' व्युत्पन्न तीन शब्दों का प्रयोग उपर्युक्त वाक्य के अनुवाद में देखिए :

"आविषी भोजन-विषाक्तता जीवाणुओं की कुछ जातियों या प्रभेदों के कारण होती हैं जो बाह्याविष (बाह्य + आविष) और आंतराविष (आंतर + आविष) उत्पन्न करते हैं ।"

इन दोनों संकल्पनाओं से मिलती-जुलती एक तीसरी संकल्पना है जिसके लिए 'सर्पविष' शब्द का प्रयोग कुछ विद्वानों ने किया है । कुछ ने 'विष' शब्द से ही काम चलाया है । किंतु इसकी कामचलाऊ शब्दावली से वहाँ काम नहीं चलता जहाँ एक ही संदर्भ या एक ही वाक्य में तीनों संकल्पनाओं का जिक्र होता है, जैसे :

> **The stings of scorpions can cause serious poisoning due to toxins present in the venom secreted by the poisonous glands located in the last segment of the tail.**

यहाँ 'सर्पविष' का प्रयोग अशुद्ध लगेगा क्योंकि सांप की जगह बिच्छू का संदर्भ है । इसलिए 'सर्पविष' के स्थान पर 'जीविष' शब्द का निर्माण करना पड़ा । यह 'जीवविष' शब्द का संक्षिप्त रूप है । संक्षिप्तीकरण की इस पद्धति को भाषाविज्ञान में समाक्षरलोप (haplology) कहते हैं । उपर्युक्त अंग्रेजी वाक्य के निम्न अनुवाद में निश्चित अर्थ-बोध के लिए विचाराधीन दोनों संकल्पनाओं के लिए दो नए गढ़े शब्दों का प्रयोग किया गया है :

"बिच्छू की दुम के अंतिम खंड में विष-ग्रंथियां होती हैं । इनसे उत्पन्न जीविष में मौजूद आविषों के कारण बिच्छू के डंक मारने से गंभीर विषाक्तता हो सकती है ।"

इस वाक्य में तीनों संकल्पनाओं को अलग-अलग पारिभाषिक शब्दों के द्वारा व्यक्त किया गया है । तथाकथित पर्यायवाची शब्दों में अर्थ के स्थिरीकरण द्वारा पर्याय-भेद की प्रक्रिया भाषा के आधुनिकीकरण की एक सामान्य प्रक्रिया तथा दिशा है । आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में पर्यायता में कमी, किंतु अनेकार्थता में वृद्धि होती है । तकनीकी शब्दों में केवल संकेतात्मक अर्थ ही होता है, पूर्ण अर्थ का बोध तो परिभाषा या व्याख्या देखने पर ही होता है । तकनीकी शब्दों का मानकीकरण भी स्वीकृत परिभाषा के आधार पर होता है । किसी वैज्ञानिक संकल्पना की अर्थ-परिधि या तकनीकी अर्थ पर पहले विचार किया जाता है, फिर उसे कोई नाम दे दिया जाता है । इस नाम के साथ जो विषयगत अर्थ जोड़ दिया जाता है उसकी जानकारी शब्द से नहीं, विषय को पढ़ने से होती है । वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ वैज्ञानिक संकल्पनाओं में परिवर्तन होता रहता है, विषयगत अर्थ बदल जाते हैं, किंतु शब्द वही बने रहते हैं । संक्षिप्त शब्दों में अर्थ-विकास की सक्षमता होती है । ऐसे शब्दों के साथ नए विचारों को जोड़ा जा सकता है और व्यापक संदर्भ में इनका प्रयोग हो सकता है । तकनीकी शब्दावली को विषय के संदर्भ में और सही परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की जरूरत है ।

०००००

पारिभाषिक शब्दावली : समस्याएं और निराकरण

- डॉ॰ चंद्र मौलि मणि

पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में सबसे पहले हमें इस पर विचार करना होगा कि यह समस्या आई ही क्यों ? इसकी पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जितनी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति हुई वह क्रांति के स्तर पर थी। जो कार्य हजारों वर्षों में नहीं हुआ था वह मात्र डेढ़ सौ वर्ष में किया गया। किंतु हमारे देश में यह ज्ञान किसी देशी भाषा के माध्यम से न आकर एक विदेशी भाषा - अंग्रेजी के माध्यम से आया। यदि जापान में जापानी भाषा की तरह अपने यहाँ भी हिंदी में पारिभाषिक शब्दावली बनाई गई होती और यह नवीन ज्ञान उसके द्वारा संप्रेषित किया जाता तो हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी का विकास नैसर्गिक रूप से सुनिश्चित हो जाता और उसके मार्ग में कोई दुराग्रह या विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। आज जैसे अनेक संभ्रांत व्यक्ति वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान के लिए अंग्रेजी को ही उपयुक्त माध्यम समझ रहे हैं, वे वही उपयुक्तता एवं उपयोगिता हिंदी में ही देखते। पर व्यवहार में न आने के कारण हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएं स्थिर रह गईं और विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान बहुत आगे बढ़ गए। इन दोनों के बीच की दूरी बढ़ती ही गई।

यह बढ़ती दूरी कार्य की विशदता के कारण और भी बढ़ती गई। ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत होता गया था कि आधुनिक ज्ञान लगभग 600 शाखाओं में फैल गया। अंग्रेजी के केवल एक अक्षर 'A' से ही बहुत शाखाएं हैं, जैसे - Aeronautics, Anatomy, Art, Anthropology, Architecture, Accounts, Agriculture, Agronomy, Astronomy, Astrophysics, Aviation आदि, इसी प्रकार अन्य वर्णों से।

इन सभी शाखाओं में प्रयुक्त होने वाले लगभग 15 लाख शब्द हैं। हिंदी में विज्ञान, तकनीकी एवं मानविकी आदि से संबंधित वर्तमान ज्ञान लाने के लिए इन सभी के पारिभाषिक शब्दों के लिए प्रावधान करना निश्चय ही एक बड़ी समस्या बन गई, जिसका मूल उपरोक्त तथ्य में है।

तो फिर हमें देखना है कि पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में मुख्य समस्याएं क्या हैं ? कुछ तो काल्पनिक ही हैं। वे काल्पनिक कठिनाइयां अपने आप दूर हो जाती हैं, यदि हम निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखें :-

(1) जिस शब्दावली की हम चर्चा कर रहे हैं, वह पारिभाषिक है - साधारण बोलचाल या दिन प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाली नहीं है। सुलभ साहित्य के आदि के लिए भी नहीं है।

(2) यह सबके लिए या बहुसंख्य लोगों के लिए भी नहीं है । यह केवल उनके लिए है जो वैज्ञानिक या प्राविधिक विषयों का (या मानविकी के क्षेत्र में भी उच्च स्तर पर) विशेष अध्ययन करना चाह रहे हैं ।

(3) यह कार्य वर्तमान में या निकट भविष्य में भी समाप्त होने वाला नहीं है, क्योंकि स्वतंत्रता-प्राप्ति के 47 वर्षों के बाद तक भी वांछनीय से बहुत ही कम कार्य हुआ है ।

पहली बात के लिए हम उदाहरणस्वरूप कह सकते हैं कि **रेखा, बिंदु, कोण, परिधि** जैसे शब्दों की दैनंदिन प्रयोग के लिए आवश्यकता नहीं है, न ही अधिकांश विद्यार्थी या शिक्षित वर्ग के लिए । यह तो केवल उसी को चाहिए जिसे रेखागणित पढ़ना है । साहित्य के क्षेत्र में भी **संधि, समास, तद्धित** आदि शब्दों की जानकारी उन्हीं के लिए आवश्यक है, जिन्हें व्याकरण में प्रवीणता चाहिए । इसलिए जो लोग कहते हैं कि पारिभाषिक शब्दावली के लिए बहुत कठिन और दुरूह शब्दों का चयन या निर्माण किया गया है, या किया जा रहा है, वह निश्चय ही भ्रमवश या द्वेषवश ऐसा कह रहे हैं । एक साधारण उदाहरण यहाँ समीचीन होगा । अंग्रेजी का water शब्द सभी अंग्रेजी जानने वाले जानते हैं, लेकिन डाक्टर लोग दवा के नुस्खे में aqua शब्द प्रयुक्त करते हैं । इस पर किसी अंग्रेजी-भक्त को आपत्ति नहीं है । कोई नहीं कहता कि एक सरल, सुलभ शब्द के रहते हुए एक कठिन अप्रचलित शब्द क्यों प्रयुक्त हुआ । लेकिन हिंदी के संदर्भ में ये ही लोग, जिनमें मातृभाषा के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है, और जो अंग्रेजी से सम्मोहित हैं, हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली की निराधार आलोचना करते नहीं थकते ।

दूसरी बात भी स्पष्ट है, कि इसे समस्या के रूप में प्रस्तुत करना इसलिए तर्कसंगत नहीं है कि यह पारिभाषिक शब्दावली केवल विशेषाध्ययन करने वाले अल्पवर्ग के लिए है । यदि इस अल्पवर्ग के सामने यह कोई समस्या खड़ी भी करती हो, तो वह भाषा के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में नगण्य है ।

तीसरी बात के संदर्भ में हमें ध्यान रखना होगा कि भाषा में नए शब्द प्रयोग से ही रूढ़ होते हैं । आरंभ में जो शब्द कर्णकटु या कठोर लगते हैं, सतत प्रयोग से वे साधारण शब्दों जैसे ही हो जाते हैं । Mathematics के लिए गणित अब विद्यार्थियों के लिए दुरूह शब्द नहीं है । फिर अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली की तुलना में हिंदी की शब्दावली बहुत अधिक वैज्ञानिक है तथा इसके निर्माण के सिद्धांत बहुत अधिक तर्कसंगत हैं । एक क्रियापद से उपसर्गों और प्रत्ययों की सहायता से अनेक शब्द बनते हैं, जो अंग्रेजी की शब्दावली के सभी अर्थों और भावों को प्रकट करने की क्षमता रखते हैं, और साथ-साथ उन्हें सीखना भी अपेक्षाकृत सरल है । अंग्रेजी के शब्दनिर्माण की प्रक्रिया में यह लाभ नहीं है । एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा । Law के लिए हिंदी में पारिभाषिक शब्द 'विधि' चुना गया है । इससे संबद्ध विभिन्न शब्द ये हैं :-

अंग्रेजी	हिंदी
Law	विधि
Legal	वैध
Legislature	विधानमंडल
Legislative	विधायी
Bill	विधेयक

आप देखेंगे कि एक शब्द 'विधि' जान लेने पर अंग्रेजी के कितने ही पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हिंदी के पारिभाषिक शब्द सुगमता से जाने और सीखे जा सकते हैं। लेकिन अंग्रेजी में हर एक शब्द को अलग-अलग से जानना पड़ेगा। एक दूसरा उदाहरण लीजिए :-

Reservation	आरक्षण
Preservation	परिरक्षण
Conservation	संरक्षण
Maintenance	अनुरक्षण

हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली में ध्वनि-साम्य है और इन सबकी व्युत्पत्ति एक ही मूल से है। लेकिन अंग्रेजी के शब्द काफी भिन्न हैं, यहाँ तक कि Maintenance तो इस समूह के अन्य शब्दों से एकदम अलग है क्योंकि अंग्रेजी में स्वयं यह क्षमता नहीं है कि एक मूल से अनेक शब्द रचे जा सकें।

तो कथ्य यह था कि बिना प्रयोग के पारिभाषिक शब्दावली में सुगमता कभी परिलक्षित नहीं हो सकती और सतत प्रयोग से उसमें सहजता और सुगमता आना अवश्यंभावी है। यह अंग्रेजी के संदर्भ में हुआ और यही हिंदी के संदर्भ में भी सत्य है। कितने शब्द देखते-देखते रूढ़ हो गए हैं। टी॰वी॰ पर बार-बार देखकर बच्चा-बच्चा समझ गया है कि, 'त्वचा' क्या है। काफी दुरूह शब्द है लेकिन प्रयोग से ग्राह्य हो गया है। यदि हिंदी को राजभाषा के रूप में सही अर्थों में प्रतिष्ठा मिल गई होती, तो बहुत-सी कल्पित कठिनाइयां स्वयमेव समाप्त हो जातीं।

काल्पनिक समस्याओं पर विचार करने के बाद हम वास्तविक कठिनाइयों की चर्चा करेंगे। आप जानते ही हैं कि 1961ई॰ में केंद्रीय सरकार ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया। तब से आज तक यह आयोग पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में निरंतर कार्य कर रहा है। हिंदी की राजभाषा के रूप में बहुत धीमी प्रगति के अनुरूप ही इस कार्य में भी आरंभ में कम ही प्रगति हुई। इसलिए पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में जो समस्याएं प्रारंभ में थीं, उनमें से कुछ अभी भी बनी हुई हैं। उस समय और कुछ हद तक अभी भी वे मुख्य समस्याएं क्यों थीं ? और क्या हैं ?

प्रारंभ में काफी समय बाद तक सरकारी नीति स्पष्ट नहीं रही । कुछ लोगों का विचार था कि अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली को उसी रूप में ले लिया जाए । कुछ का विचार था कि अंग्रेजी की कोई शब्दावली प्रयुक्त न हो और सारी शब्दावली का निर्माण संस्कृत के आधार पर कर लिया जाए । कुछ का समन्वयात्मक रुख था । वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने इन सब विचारधाराओं को ध्यान में रखकर शब्दावली निर्माण किया । उसके द्वारा वही अपनाए गए सिद्धांत ही अब मान्य हैं । सारा सरकारी तंत्र उसी से नियंत्रित है - कम से कम केंद्रीय तंत्र ।

व्यक्तिगत प्रयास भी चलते रहे । इसके अतिरिक्त हिंदी प्रदेशों की कुछ सरकारों ने भी पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कराया, मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश ने । इस विषय में कोई ऐसा कानून नहीं था, न है, कि यह कार्य स्वतंत्र रूप से राज्य सरकारों द्वारा न किया जाए । और न केंद्रीय आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के ही अनुपालन की बाध्यता ही सुनिश्चित की गई । परिणामस्वरूप राज्यों द्वारा यह कार्य समानांतर रूप से चलता रहा । कुछ राज्यों में हिंदी का राजभाषा के रूप में प्रयोग काफी बढ़ गया, लेकिन आयोग द्वारा उस समय आवश्यक एवं पर्याप्त शब्दावली का निर्माण करके यह शब्दावली उन राज्यों को, विशेषकर विधि एवं प्रशासन के क्षेत्र में, उपलब्ध नहीं कराई जा सकी जहाँ दिन-प्रतिदिन के सरकारी कामकाज़ में इसकी आवश्यकता थी । इसलिए जब इन राज्यों के पास स्वतंत्र रूप से शब्दावली निर्माण के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था । केंद्र के भी कुछ मंत्रालयों ने, जो हिंदी के सरकारी कार्यों में प्रभावी प्रयोग के प्रति अपेक्षाकृत अधिक उत्साही थे, अपनी शब्दावली समितियां बनायी । उनकी नई पारिभाषिक शब्दावलियां बनीं । इसमें रेल मंत्रालय अग्रणी रहा । स्पष्ट है कि इन शब्दावलियों और आयोग द्वारा निर्मित शब्दावलियों में एकरूपता का अभाव रहा ।

यह सत्य है कि मंत्रालयों और राज्य सरकारों ने पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के लिए मुख्यतः आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धांत ही अपनाए । लेकिन चूँकि एक अंग्रेजी शब्द के लिए हिंदी में अनेक शब्द थे, या बनाए गए थे, अतः यह एक कठिन और विशिष्ट कार्य था कि प्रयोजन-विशेष के लिए उपयुक्त शब्द ही चुने जाएं । यह आवश्यक था कि जो शब्द चुना जाए वह कार्य-विशेष या कार्यविधि-विशेष के लिए सटीक एवं असंदिग्ध हो । मुझे ज्ञात है कि पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के कार्य के लिए उस विषय के विशेषज्ञों (जिनकी अंग्रेजी और हिंदी में अच्छी गति हो - यदि संस्कृत में भी हो तो और भी अच्छा) एवं भाषाशास्त्रियों की आवश्यकता है । लेकिन अलग-अलग मंत्रालयों और राज्य सरकारों द्वारा समितियों के गठन पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया । परिणामस्वरूप बहुत-सी पारिभाषिक शब्दावली सटीक नहीं बनी । आयोग द्वारा बाद में निर्मित शब्दावलियों और उपरोक्त शब्दावली में अंतर भी बना रहा । राज्य सरकारें और कुछ केंद्रीय मंत्रालय अपने द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करते रहे । इस बिंदु पर अपनी शब्दावली छोड़कर नए सिरे से आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करने में उन्हें स्वाभाविक हिचक हुई ।

कर्मचारियों एवं अधिकारियों को भी बार-बार एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए भिन्न- भिन्न हिंदी शब्द सीखने और प्रयोग करने से उलझन हुई । यह सरकारी कार्यों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग के मार्ग में एक बड़ी बाधा थी ।

यदि आरंभ से ही यह कार्य केवल आयोग में ही केंद्रित रखा जाता और उसी शब्दावली के प्रयोग की बाध्यता सुनिश्चित की जाती तो उपरोक्त अड़चन अवश्य ही कम हो जाती । इसके लिए यह नितांत आवश्यक है कि यह कार्य पूरे उत्साह और मनोयोग से कराया जाए । स्थिति यह है कि अभी भी यह बाध्यता नहीं है, जिसके कारण उपरोक्त विरोधाभास कम नहीं हो पाया । उन राज्यों और केंद्रीय मंत्रालय में जो शब्द प्रयोग के कारण रूढ़ हो गए हैं उन्हें छोड़कर नए शब्दों को ग्रहण करना व्यावहारिक नहीं हुआ ।

हाँ यह अवश्य है कि शिक्षा, पत्रकारिता जैसे क्षेत्रों में यह विरोधाभास नहीं के बराबर है, रहा है, क्योंकि विश्वविद्यालयों या पत्रकारों की किसी संस्था ने शब्दावली निर्माण के लिए अपना अलग से कोई प्रयास नहीं किया और आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली को ही अंगीकार कर लिया ।

इस प्रकार स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की पाठ्य-पुस्तकों या अन्य सहायक पुस्तकों में आयोग की शब्दावली को ही अपनाया गया । यही प्रक्रिया अभी भी जारी है । विभिन्न राज्यों के स्कूलों और कालेजों की पाठ्य-पुस्तकों में उपरोक्त विरोधाभास उपस्थित रह गया, क्योंकि वहाँ अधिकतर राज्य सरकारों द्वारा निर्मित शब्दावली ही इस कार्य में अपनाई गई । यह कार्य स्वतंत्र रूप से भी लेखकों द्वारा किया गया, जिनपर किसी शब्द-विशेष के प्रयोग की बाध्यता नहीं थी । आयोग ने इस स्तर की पाठ्य-पुस्तकें या साहित्य तैयार नहीं किया ।

अब यदि नए सिरे से स्कूल कालेज स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों के लिए आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रयोग की बाध्यता स्थिर की जाए तो इन पाठ्य पुस्तकों में संशोधन करना पड़ेगा । स्पष्ट है कि विद्यार्थियों पर एक नया बोझ आ पड़ेगा । चूँकि हिंदी प्रदेशों में स्कूल स्तर पर काफी दिनों से पाठ्य-पुस्तकों में पारिभाषिक शब्दावली हिंदी में आ रही हैं, अतः वहाँ के विद्यार्थी-वर्ग के बीच में ये शब्द रूढ़ हो गए हैं ।

हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग में एक और बड़ी बाधा यह रही है कि पाठ्य-पुस्तकों में अंग्रेजी के भी शब्द साथ-साथ दिए जा रहे हैं । चूँकि अधिकांश शिक्षक वर्ग ने स्वयं अपनी पढ़ाई अंग्रेजी की शब्दावली में की है अतः उन्हें अंग्रेजी शब्दावली पढ़ाने में ही आसानी मालूम पड़ती है । एक ही स्थान पर अंग्रेजी और हिंदी दोनों शब्द लिखे रहने से उन्हें हिंदी का शब्द समझ और सीखकर पढ़ाना अरुचिकर लगता है । ऐसा करने के लिए कोई प्रोत्साहन या न करने पर कोई दंड भी नहीं है । यदि केवल हिंदी में शब्दावली रहे, तो बाध्य होकर पढ़ाई हिंदी पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से करनी

पड़ेगी । इधर कुछ समय से कहीं-कहीं ऐसा हो भी रहा है । यदि स्नातक स्तर की पाठ्य-पुस्तकों में भी वही शब्दावली प्रयुक्त हो तो हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली पढ़ने वाले स्कूल-कालेज स्तर के विद्यार्थी आगे स्नातक पर हिंदी में पढ़ने में कठिनाई का अनुभव नहीं करेंगे ।

आयोग द्वारा निर्मित पाठ्य-पुस्तकों और सहायक साहित्य में इसका ध्यान रखा गया है कि उनमें आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग हो । लेकिन स्वतंत्र रूप से लिखी पुस्तकों में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग सुनिश्चित नहीं किया गया है । ऐसा कोई क़ानून या नियम नहीं बना है कि वही पाठ्य-पुस्तकें स्वीकृत की जाएं जिनमें आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली ही प्रयुक्त हो । यदि ऐसा हो जाए तो एक विषय की सभी पाठ्य पुस्तकों में पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में एकरूपता आ सकती है । लेकिन वर्तमान समय में ऐसा कोई क़ानून बन सकेगा इसमें बहुत संदेह है ।

ऊपर के बिंदुओं पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि पारिभाषिक शब्दावली का मानकीकरण नितांत आवश्यक है । पारिभाषिक शब्दों का एक स्पष्ट एवं असंदिग्ध अर्थ होना अनिवार्य है । यह तो सर्वविदित है कि संविधान के तहत और राजभाषा नियमावलियों के अंतर्गत केवल यही प्रावधान है कि संघ के सरकारी कामकाज के लिए हिंदी का प्रयोग किया जाए । ऐसा कहीं नहीं है कि राज्य सरकारें अपने आंतरिक कार्यों के लिए अपनी प्रादेशिक भाषा का प्रयोग न करें । भारतीय संविधान में कुछ विषय ऐसे हैं जो राज्य सरकार की कार्य सूची में भी है । इस में शिक्षा भी है । इसलिए इस क्षेत्र में राज्य सरकारों को अपनी प्रादेशिक भाषा में कार्य करने की पूरी छूट है । इसी प्रावधान के तहत कहीं अधिक, कहीं कम, प्रादेशिक भाषा में ही सरकारी कार्य हो रहा है । इसी क्रम में कहीं-कहीं अंग्रेजी का वर्चस्व अभी भी है ।

स्पष्ट है कि विभिन्न राज्यों को अपनी प्रादेशिक भाषाओं में अपनी-अपनी पारिभाषिक शब्दावली बनानी होगी । इनमें भी प्रयत्न यही रहे कि हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास किया जाए । कुछ क्षेत्रों में, जैसे सामान्य प्रशासन, या दैनंदिन कार्य आदि में यदि प्रादेशिक भाषा का पारिभाषिक शब्द हिंदी के पारिभाषिक शब्द से भिन्न है, तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि इन शब्दों का प्रयोग तो प्रदेश तक ही सीमित है, रहना है । लेकिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में यदि प्रदेशों की पारिभाषिक शब्दावली में भी हिंदी के पारिभाषिक शब्द रखे जाएं, तो अधिक सुगम होगा, क्योंकि उच्चतर ज्ञान के क्षेत्र में अंतर्देशीय आदान-प्रदान की आवश्यकता पड़ती है और उसके लिए भारत की सभी भाषाओं में यदि एक ही मानक शब्दावली का प्रयोग हो सके तो समझ रहेगा ।

इस दिशा में कठिनाई यह है कि क्या हिंदी की सारी की सारी पारिभाषिक शब्दावली उसी रूप में हिंदीतर प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त की जाए ? अनेक ऐसे देशज पारिभाषिक शब्द हैं जो केवल प्रदेश-विशेष में समझ में आते हैं । शब्दावली निर्माण

सिद्धांत के अनुसार ऐसे शब्दों का तत्सम बनाने का प्रयास नहीं करना है । तो क्या हिंदी के ही पारिभाषिक तद्भव शब्द और रूढ़ शब्द सभी प्रादेशिक भाषाओं में लिए जाएँ ? इसके अलावा, निर्माण के लिए जो संस्कृत का आधार रखा गया है, क्या वह उन प्रदेशों के लिए भी मान्य होगा जिनकी भाषा संस्कृतमूलक नहीं है । जैसे, तमिलनाडु में तमिल एक स्वतंत्र भाषा है, जो संस्कृतमूलक नहीं है । अवश्य ही समय-समय पर उसमें अनेक संस्कृत शब्द प्रविष्ट हो गए हैं, लेकिन तमिल का मूल स्वरूप संस्कृत पर आधारित नहीं है । इसी प्रकार अन्य द्रविड भाषाएं भी संस्कृतमूलक नहीं हैं । यह अवश्य है कि तेलुगु, कन्नड़, मलयालम में तमिल की अपेक्षा संस्कृत शब्दावली बहुत अधिक है । ये भाषाएं प्राचीन भी हैं और इनका प्रचुर साहित्य भी है । परंतु अनेक दक्षिण भाषा-भाषियों को सभी संस्कृतमूलक तत्सम शब्दावली पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोजन के लिए भी मान्य नहीं है । राजनीतिक कारणों से भी यह विरोध बढ़ता ही जा रहा है । तो अवश्य ही पारिभाषिक शब्दावली के मानकीकरण के मार्ग में यह एक बड़ी बाधा है । अभी तक इसका निस्तारण नहीं हो पाया है, और देश की जैसी दशा आम है और अंग्रेजी के प्रति जो व्यामोह है, उसे देखते हुए यह आशा करना व्यर्थ है कि इस समस्या का निदान हो सकेगा ।

ऐसी स्थिति में मानकीकरण का क्षेत्र सीमित ही रखना पड़ेगा अर्थात् हिंदी प्रदेशों में नवीन पाठ्य-पुस्तकों आदि में (वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों में) हिंदी के जो पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हों वे एक ही हों, जिसे मानक कहा जाए । यदि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में विशेष प्रगति लानी है, तो पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता अवश्य लानी होगी । इस दिशा में प्रयास जारी हैं । लेकिन काम बड़ा है और प्रतिबद्धता और लगन की कमी भी है । इसलिए प्रगति कम है । सरकारों की कार्यसूची में अभी भी राजभाषा काफी नीचे है । इसके लिए आवश्यक होगा कि हिंदी प्रदेशों में प्रचलित पाठ्य- पुस्तकों का पुनरीक्षण करके आयोग द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग किया जाए और ये पाठ्य पुस्तकें फिर से छपें । इन विषयों के अन्य सरकारी प्रकाशनों के साथ भी यही किया जाए ।

संतोष का विषय है कि अनेक विषयों की विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य-पुस्तकें या अन्य सहायक पुस्तकें केवल आयोग द्वारा ही लिखवाई और प्रकाशित की गई हैं । इससे एकरूपता की कमी का प्रश्न नहीं रहेगा । लेकिन जो व्यक्तिगत रूप से लिखी गई पुस्तकें हैं, उनके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं विश्वविद्यालयों द्वारा यदि यह संकल्प कर लिया जाए कि जिन पाठ्य-पुस्तकों या सहायक पुस्तकों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्धारित पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त नहीं की गई हो, उन्हें मान्यता नहीं मिलेगी, तो समस्या का निदान स्वयमेव हो जाएगा ।

• • • • •

अखिल भारतीय शब्दावली : संकल्पना और स्वरूप

- श्री नीलकंठन नंपूतिरि

कहा गया है कि हाथ और भाषा मानव की प्रगति के सर्वाधिक मूल्यवान साधन हैं । भाषा ही मानव के परस्पर संप्रेषण का मुख्य माध्यम है और इस दृष्टि से भाषा मनुष्य के लिए ईश्वरीय वरदान है । परंतु भाषाओं की बहुलता की स्थिति संप्रेषण के लिए बाधक रही है । इसी स्थिति को बाइबिल में बेबल की मीनार के प्रकरण में दैनिक अभिशाप माना गया है ।

भारत बहुभाषा-भाषी देश है । यहाँ ज्ञान के प्रसार में कार्यरत विद्वानों को परस्पर विचार-विनियम के लिए किसी संपर्क भाषा की सहायता लेनी पड़ती है । भारत के संविधान ने इस संपर्क भाषा का स्थान हिंदी को दिया है । हिंदी को अखिल भारतीय स्तर पर विकसित करने और उसे भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों को अभिव्यक्त करने का सक्षम माध्यम बनाने की संवैधानिक बाध्यता को पूरा करने के लिए अनेक शिक्षा-शास्त्री और भिन्न-भिन्न संस्थाएं कार्यरत हैं । इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप वैज्ञानिक और तकनीकी भाषा का एक नया रूप उभरता आ रहा है । अखिल भारतीय शब्दावली इस नए रूप का एक प्रमुख लक्षण है ।

प्रख्यात शिक्षाशास्त्री और भौतिकीविद् डॉ॰ दौलत सिंह कोठारी की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि "विज्ञान अर्थ को स्थिर करता है और भाषा शब्द को स्थिर करती है ।" इसी सिद्धांत के अनुसरण में भाषा में अनेकानेक नए पारिभाषिक शब्द आ गए हैं या पुराने शब्दों को नए अर्थ प्राप्त हुए हैं । यह सिलसिला अभी भी जारी है और आगे भी चलता रहेगा । परंतु भारतीय भाषाओं को अर्थ से सीधे मूल शब्द स्थिर करने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई है । हम स्थिर किए गए (अंग्रेजी) शब्द के लिए पर्यायवाची शब्द अपनी भाषा में स्थिर करने के लिए विवश हैं । इस विवशता का कारण ऐतिहासिक है, क्योंकि आधुनिक विज्ञान का विकास और वैज्ञानिक शब्दों के अर्थों का स्थिरीकरण मुख्यतः पश्चिमी भाषाओं के क्षेत्रों में हुआ है । परंतु यह विवशता हमें कुछ अर्थों में लाभकारी सिद्ध हुई है । अपने शब्दों को हम इस प्रकार चुन सकते थे कि वे भारत की सभी या अधिक से अधिक भाषाओं में समान रूप से प्रयोग में आ सकें । समान शब्दावली भाषायी असंप्रेषणताओं को दूर करने का प्रबल साधन है । यदि शब्दावली समझ में आती हो तो किसी भी भाषा में अभिव्यक्त विचार को समझने के लिए उस भाषा के व्याकरण का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना पर्याप्त होगा ।

शब्दावली-निर्माण की प्रक्रिया में आरंभ से ही समान शब्दावली के लक्ष्य को सामने रखकर कार्य किया गया है । इसके लिए सरकारी स्तर पर काफी प्रयास हुए हैं और भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी विद्वानों का सहयोग शब्दावली निर्माण में प्राप्त किया गया है ।

शब्दावली निर्माण और मानकीकरण की तीन दिशाएं मानी गई हैं : अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को अपनाना, भाषा में विद्यमान प्राचीन शब्दों को ढूँढना और नए शब्दों का निर्माण । इन तीनों ही दिशाओं में अखिल भारतीय शब्दावली का अस्तित्व है और सही ढंग से खोजने पर उनको पहचानना भी सरल हो सकता है ।

ज्ञान की सभी शाखाओं में कुछ शब्द ऐसे हैं जो संसार की सभी भाषाओं में स्वीकार किए गए हैं । इन शब्दों को अंतर्राष्ट्रीय शब्द कहते हैं । इस शब्दावली में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन जैसे रासायनिक तत्वों के नाम, व्यक्तियों के नामों पर आधारित शब्द, माप-तौल के मात्रक, जीवविज्ञान की द्विनाम-पद्धति के अंतर्गत नाम, आदि आते हैं । इनके अलावा आम तौर पर विश्वभर की भाषाओं में उपयोग में आने वाले टेलीफोन, रेडियो, लाइसेंस, कंप्यूटर आदि शब्द भी अंतर्राष्ट्रीय हैं । अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं से आए हुए बहुत-से शब्द हमारी भाषाओं में घुल-मिल गए हैं, जैसे बस, टिकट, पेंसिल, रेस्तराँ इत्यादि । नित्य नए अंतर्राष्ट्रीय शब्द अखबारों और अन्य माध्यमों के जरिए हमारी भाषाओं में आते भी जा रहे हैं, जैसे पेरेस्त्रोइका, ग्लासनौस्त, बॉबिटाइजेशन इत्यादि । इसमें कोई शंका नहीं होनी चाहिए कि इस अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । ध्यान केवल इतना रखा जाना चाहिए कि भाषाओं की अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार इन शब्दों का लिप्यंतरण एक भाषा में करने की छूट भाषाओं को मिलनी चाहिए । कोई 'पुलिस' कहे या दूसरी भाषा में कोई 'पोलीस' इसका मानकीकरण नहीं होना चाहिए ।

अगला वर्ग उन शब्दों का है जो हमें विरासत के रूप में प्राप्त हुए हैं । गणित, खगोलविज्ञान, रसायन, आयुर्विज्ञान आदि के विकास में प्राचीन भारत का काफी योगदान रहा है । इस योगदान का प्रमाण हमें प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों से प्राप्त होता है । इन ग्रंथों में शब्दावली का बहुत बड़ा भंडार अंतर्निहित है । शब्द-निर्माण के दौरान आधुनिक विज्ञान की संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने वाले शब्द इनमें से ढूंढ निकाले गए हैं । ये ग्रंथ प्रायः संस्कृत में लिखे गए हैं जो प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का माध्यम रही है । यह शब्दावली संस्कृत से सीधे भारतीय भाषाओं में आई है और इसको स्वीकार करना हर भाषा के लिए गर्व का विषय है ।

यहाँ एक प्राचीन शब्द का उदाहरण देना अनुचित नहीं होगा । संस्कृत व्याकरण में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द 'सूत्र' अंग्रेजी शब्द 'फॉर्मूला' के पर्याय के रूप में लिया गया है । दोनों ही शब्दों का अर्थ प्रतीकों और चिह्नों में किसी बड़े सिद्धांत का सारभूत रूप

है । आइन्स्टाइन के प्रसिद्ध सूत्र $E = MC^2$ में E, M और C क्रमशः ऊर्जा (energy) द्रव्यमान (mass) तथा प्रकाश-वेग के प्रतीक हैं । यह सूत्र आपेक्षिकता सिद्धांत की नींव है । इसी प्रकार पाणिनीय सूत्र 'इको यणचि' में इक्, यण् और अच्, तीन प्रतीक हैं । 'इक्' का अर्थ है इ, उ, ऋ और लृ । 'यण्' चार वर्णों य, र, ल, व को निरूपित करता है और 'अच्' सभी स्वरों को । यह सूत्र स्वर-संधि प्रकरण के सभी सिद्धांतों का सार है । दोनों ही प्रकरणों में सूत्र शब्द समान रूप से सटीक हैं । तभी भारतीय भाषाएं सूत्र की यह परिभाषा मानती हैं और परिणामतः इसे फार्मूला का पर्याय स्वीकार करती हैं ।

अखिल भारतीय शब्दावली का स्रोत मात्र संस्कृत नहीं है । अरबी-फारसी मूल के अनेक साधारण हिंदुस्तानी शब्द भी सदियों से भारतीय भाषाओं में समान रूप से प्रयुक्त होते आ रहे हैं । ये शब्द अधिकतर प्रशासन और व्यापार के क्षेत्रों में देखने में आए हैं । दीवान से लेकर दफेदार, हरकारा तक के पदनामों, जिला, तहसील, फरका जैसे भूमि-खंडों और कचहरी, थाना जैसे कार्यालयों के लिए किसी प्रांत में अलग नाम नहीं है । अदालत शब्द का प्रयोग आजकल बहुत प्रचलित हुआ है, जिसका श्रेय पेंशन अदालत, टेलीफोन अदालत जैसी तुरंत-न्याय की संस्थाओं को है । उधार-मेला, पट्टा वितरण मेला जैसे प्रयोग के सौजन्य से मेला शब्द बहुप्रचलित हुआ है और उसका विस्तार गज-मेला (हाथियों का मेला) गान-मेला जैसे शब्दों में भी हुआ है । बंध, हड़ताल, धरना, रास्ता रोको, आंदोलन, अनशन जैसे विरोध-प्रदर्शन-संबंधी शब्दों को भी सभी भाषाओं में बच्चा-बच्चा जानता है ।

सरकारी काम-काज के अनेक शब्द एक जमाने में सारे भारत में समान थे । अब देखने में आ रहा है कि हिंदी-भाषी प्रदेशों में इनको संस्कृत मूल के नए शब्दों से स्थानापन्न किया जा रहा है । 'आबकारी' शब्द दक्षिणी भाषाओं में अब भी प्रचलित है, परंतु उत्तर में उसका स्थान 'उत्पाद-शुल्क' ले रहा है । खानाशुमारी (जनगणना), सरासरी (औसत), निर्ख(दर) जैसे शब्दों की प्रविष्टि अब बृहद् प्रशासनिक शब्दावली से गायब है यद्यपि ये दक्षिण भारत की भाषाओं में प्रचलित हैं ।

अखिल भारतीय शब्दावली और प्राचीन भारतीय शब्दावली की संख्या सीमित है । उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक मुख्य आविष्कारों के द्वारा विज्ञान की बड़ी प्रगति हुई है और बीसवीं सदी में जाकर यह प्रगति कई गुना बढ़ गई है । इसके साथ जो शब्द-भंडार उपस्थित हुआ उससे कंधा मिलाने में हमारी प्राचीन शब्दावली पूर्णतः समर्थ नहीं रही है । परिणामस्वरूप हमें नए शब्द बनाने पड़े और उसके लिए नई संस्थाएं बनीं । इन संस्थाओं की कार्य-पद्धति के लिए निर्देशक सिद्धांत स्वीकृत हुए और बड़े पैमाने पर शब्दावली निर्माण और मानकीकरण के प्रयत्न आरंभ हुए ।

इन निर्देशक सिद्धांतों में शब्दावली को अखिल भारतीय रूप प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया गया और तदनुसार यह सिद्धांत सम्मिलित किया गया कि सभी भारतीय भाषाओं में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :-

1. अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और
2. संस्कृत धातुओं पर आधारित हों ।

शब्दावली के नवनिर्माण के लिए सभी भारतीय भाषाएं संस्कृत पर ही आश्रित रहती हैं । यद्यपि संस्कृत में धातुओं की संख्या सीमित है तो भी इनमें उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर नव शब्द बनाने की संभावना असीमित है । अत: यदि शब्द-निर्माता अंग्रेजी शब्द का सही अर्थ समझता हो और संस्कृत भाषा का सामान्य ज्ञान रखता हो तो वह प्रत्येक संकल्पना के लिए भारतीय पर्याय चुनकर विशेषज्ञों के अनुमोदनार्थ प्रस्तुत करने में सफल होगा । इस प्रक्रिया में यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि चुना गया शब्द किसी भाषा में अर्थ-विकास, अर्थ-संकोच और विशेषकर अर्थापकर्ष के फलस्वरूप कुछ अन्य अर्थ अर्जित न कर चुका हो । उदाहरणार्थ 'उपन्यास' हिंदी में नॉवल है, मलयालम में निबंध है और तमिल में व्याख्यान । यहीं भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले विशेषज्ञों की सेवा आवश्यक हो जाती है । इसी संदर्भ में भारत सरकार की अखिल भारतीय शब्दावली की खोज का सूत्रपात हुआ था ।

अप्रैल 1960 में राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए जिन आदेशों के अनुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (वै॰ त॰ श॰ आयोग) की स्थापना की गई थी, उनमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में विकसित की गई तकनीकी शब्दावली का समन्वय और अनुमोदन का आदेश भी सम्मिलित था ।

तदनुसार इस आयोग में अखिल भारतीय शब्दावली एकक खोला गया और 6 मार्च, 1979 को बेंगलूर में एक अखिल भारतीय शब्दावली संगोष्ठी का आयोजन हुआ । संगोष्ठी में हिंदीतर-भाषी राज्यों की ग्रंथ अकादमियों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस संगोष्ठी में यह संकल्प पारित किया गया :

> **अखिल भारतीय शब्दावली के निर्माण का कार्य तुरंत आरंभ किया जाए और उसके लिए विषय -विशेषज्ञों और भाषाविदों की संगोष्ठियां आयोजित करके भौतिक विज्ञानों, जीव-विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों की विविध शाखाओं की अखिल भारतीय शब्दावलियां अभिज्ञापित की जाएं ।**

संगोष्ठी की इस सिफारिश के अनुसार वै॰त॰श॰ आयोग के विभिन्न विषय एककों ने अपने-अपने विषय के पाँच-पाँच सौ शब्द चुन लिए । ये शब्द राज्य ग्रंथ अकादमियों को भेजकर अलग-अलग भाषाओं में इनके लिए स्वीकृत पर्यायों की सूची मंगाई गई । ये

सूचियां आयोग के संबद्ध एकक द्वारा सारणीकृत की गईं और विभिन्न भाषाओं में स्वीकृत पर्यायों की बृहद् सूचियां संगोष्ठियों में रखी गईं । इन संगोष्ठियों में ग्रंथ अकादमियों द्वारा नामित विषय-विशेषज्ञों और भाषाविदों ने भाग लिया । संगोष्ठी में भाग लेने वाले विद्वानों ने प्रत्येक शब्द के विभिन्न पर्यायों पर ध्यान देते हुए सर्वसम्मति से अखिल भारतीय पर्याय ढूंढ निकाले । इन संगोष्ठियों में चर्चाओं के फलस्वरूप जो निष्कर्ष उभरकर आए उनका संक्षेप इस प्रकार है :-

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली सभी भाषाओं के लिए स्वीकार्य है ।
2. जिन संस्कृत शब्दों के अर्थ विभिन्न भाषाओं में भिन्न न हों उनको अखिल भारतीय प्रयोग के लिए स्वीकार किया गया । कहीं-कहीं संस्कृतमूलक अतिरिक्त पर्याय भी स्वीकृत हुए हैं, जैसे मैगनेट के लिए 'चुंबक' के अलावा 'कांत' शब्द भी स्वीकृत हुआ है । जिन शब्दों के लिए वै॰त॰श॰ आयोग ने संस्कृतमूलक पर्याय नहीं दिए हैं उनके लिए भी अतिरिक्त पर्याय दिए गए हैं, जैसे pressure के लिए 'दाब' के अलावा संमर्द भी ।
3. कुछ संस्कृतेतर मूल की अखिल भारतीय शब्दावली भी सामने आई थी जिनको अतिरिक्त पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया,जैसे average के लिए 'सरासरी' जो चारों दक्षिण भारतीय भाषाओं, गुजराती और मराठी में प्रचलित थी । अनेक भारतीय भाषाओं में प्रचलित और स्वीकार-योग्य अरबी-फारसी मूल के शब्दों को भी अपना लिया गया ।
4. जिन पर्यायों का किसी-किसी भाषा में अर्थापकर्ष आया है उनको छोड़ दिया गया ।
5. यदि किसी भाषा में कोई शब्द इतना रूढ़मूल हो गया हो कि उसको छोड़ना असंभव है तो उस भाषा को उस शब्द के प्रयोग की छूट दी गई है, जैसे मलयालम में probability के लिए 'संभाव्यता' ।
6. लंबाई, चौड़ाई जैसे अर्ध-तकनीकी शब्दों के लिए अखिल भारतीय पर्याय निर्धारित नहीं किए गए है, यद्यपि wave length का पर्याय तरंग दैर्घ्य है ।

यद्यपि तमिल के शब्द-निर्माताओं ने संस्कृत धातुओं के स्थान पर शुद्ध तमिल शब्दों को वरीयता दी है तो भी उन्होंने अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में संस्कृत मूलक शब्दों पर आपत्ति नहीं की है ।

अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में अनुमोदित शब्दों का बहुत बड़ा प्रतिशत संस्कृतमूलक शब्दों का ही है ।

इन निष्कर्षों के फलस्वरूप जो अखिल भारतीय शब्दावली स्वीकृत हुई है उनको राज्य ग्रंथ अकादमियों ने अपने भविष्य के प्रकाशनों में दृढ़ता से लागू करने का वचन दिया है । इस कार्यक्रम का पूरा वित्तीय उत्तरदायित्व केंद्र सरकार का है । इन संगोष्ठियों में अनुमोदित शब्दावली का प्रकाशन करके निःशुल्क वितरण करने का भार भी भारत सरकार ने लिया हे । इस कार्यक्रम के अंतर्गत लगभग 20 शब्दावलियां प्रकाशित हो चुकी हैं । अभी तक 20,000 अखिल भारतीय शब्द पहचाने जा चुके हैं ।

विविधता में एकता भारतीय संस्कृति का विशेष लक्षण है । भाषायी विविधता में शब्दावली की एकता इस लक्षण का बहुत अच्छा उदाहरण है ।

°°°°°

आयुर्विज्ञान की शब्दावली

- डॉ॰ रमेश चंद्र गर्ग

विज्ञान की दिनोंदिन बढ़ती तरक्की को देखते हुए वैज्ञानिक तथा तकनीकी की शिक्षा में प्रगति लाने के लिए हमारे जैसे बहुभाषीय देश के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भारत की भाषाओं का उचित दिशा में विकास करना परमावश्यक हो गया है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने अप्रैल 1960 के राष्ट्रपति के आदेशानुसार केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों एवं मानविकी तथा समाज विज्ञान के विषयों की शब्दावली को अंतिम रूप देना था। वह उद्देश्य लगभग पूरा हो गया है और साथ ही अनेकों पुस्तकों का या तो अनुवाद हो गया है या आचार्यों द्वारा अपने-अपने शैक्षिक अनुभव के आधार पर उनको तैयार किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कोशों का निर्माण कार्य चल रहा है। वह दिन अब दूर नहीं जब हम अपने देश के विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को अपनी शिक्षा का माध्यम बना सकेंगे। मैंने समस्त भारत का भ्रमण किया है और कई स्थानों पर देखा है कि विज्ञान के विषयों की शिक्षा हिंदी माध्यम से दी जा रही है।

विभिन्न वैज्ञानिक तथा अन्य विषयों में पुस्तकों का निर्माण करने के लिए प्रथम आवश्यकता शब्दावली के निर्माण की होती है। प्रश्न है कि शब्दावली के निर्माण का आधार क्या हो ? यह सोच कर कि भारत की विभिन्न भाषाओं का उद्गम संस्कृत भाषा है, संस्कृत को ही मूल रखा गया।

विज्ञान की तरक्की का आधार वैज्ञानिकों के बीच मुक्त विचार-विमर्श एवं सक्रिय संचार रहा है। अब यह कार्य व्यावसायिक पत्रिकाओं के माध्यम से होता हे। इसके साथ ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी इसमें सहायक सिद्ध होते हैं। विश्व की एक आम भाषा न होने के कारण इसमें कठिनाइयां तो अवश्य हैं परंतु भाग्यवश ऐसा कठिन कुछ नहीं है जैसा आरंभ में दिखाई देता था। सत्रहवीं सदी के योरप में विज्ञान की तरक्की में लैटिन भाषा ने अपनी भूमिका निभाई। इसीलिए जब नई शब्दावली का निर्माण प्रारंभ हुआ तो लैटिन भाषा से या तो शब्द उधार लिए गए अथवा उसके आधार पर नए शब्दों का निर्माण किया गया।

अब प्रश्न उठता है कि तकनीकी शब्द कौन से हैं और उनको सामान्य शब्दों से कैसे अलग किया जा सकता है ? किसी भी वस्तु की सत्ता को स्थापित करने के लिए

लक्षण (परिभाषा) तथा प्रमाण की आवश्यकता होती है । इसीलिए तकनीकी शब्द की परिभाषा देनी होती है क्योंकि बिना परिभाषा के कोई भी यह कह सकता है कि अमुक शब्द तकनीकी नहीं है । चैम्बर्स तकनीकी शब्दकोश में लिखा है कि तकनीकी शब्द वह है जिसका कोई विशिष्ट महत्व है और सीखने वाले व्यक्ति के लिए उसकी कोई कीमत है । तकनीकी शब्दों के अर्थों को समझने वाले वे व्यक्ति हैं जो उन शब्दों को समझते हैं और उनका प्रयोग करते हैं । परिभाषा का उद्देश्य शब्द की सीमा को बांधना है । उदाहरणस्वरूप, समभुज त्रिभुज की परिभाषा यह होगी "एक ऐसी समतल या आबद्ध ज्यामितिक रचना जो तीन सीधी रेखाओं के द्वारा बनी हो और जिसके तीनों कोण बराबर हों ।" आयुर्विज्ञान में सभी विज्ञानों के व्यावहारिक पक्षों का समावेश है । इसीलिए इसको अनुप्रयुक्त विज्ञान कहा गया है । इस विज्ञान के शब्दों की परिभाषा स्थिति, आकार, गुण, लक्षणों आदि पर आधारित है । उदाहरण के तौर, पर एक शब्द विद्रधि या फोड़ा (एब्सिस) को लीजिए, जिसकी परिभाषा इस प्रकार होगी – "शरीर का एक फूला हुआ भाग जिसके आकार में वृद्धि हुई है, जो गरम है, चमकें मारता है, वेदना उत्पन्न करता है तथा जिसके अंदर पूय पदार्थ भरा हुआ है ।"

परिभाषाओं को भी चार वर्गों में बांटा गया है :

1. औपचारिक – जैसे ऊपर त्रिभुज की परिभाषा बताई गई है ।
2. परिचालित – इसकी परिभाषा बताती है कि हमको क्या करना है ।
3. अनौपचारिक – शब्द के अर्थ को थोड़े में बताना । यह आम लोगों के लिए हैं, वैज्ञानिकों के लिए नहीं ।
4. विस्तृत – जब लेखक किसी विकासशील धारणा की पहचान के लिए शब्द का निर्माण करता है ।

इस मामले में औपचारिक परिभाषा संभव नहीं है, और चूँकि तकनीकी शब्द की धारणा के लिए परिचालित तथा अनौपचारिक प्रकार बिल्कुल ठीक नहीं है अतः अंततोगत्वा आखिरी परिभाषा वर्ग अर्थात् विस्तृत परिभाषा का ही सहारा लेना पड़ता है ।

परिभाषा करने की दो पद्धतियां हैं :

निगमनात्मक पद्धति – इस पद्धति में ज्ञात परिभाषाएं ही ली जाती हैं, इनकी कमियों को देखा जाता है और उनको कम या ज्यादा करके ठीक किया जाता है ।

आगमनात्मक पद्धति – इस पद्धति में अलग-अलग परिभाषाओं को, जो निश्चित रूप से लेने लायक होती हैं, इकट्ठा कर लिया जाता है और एक कथन के रूप में तैयार किया जाता है । पुस्तकों का अनुवाद करने में विशेष रूप से वैज्ञानिक तथा तकनीकी पुस्तकों में अनेक ऐसे शब्द आते हैं जिनको स्थान विशेष के अनुसार निर्मित शब्दों में से चुनकर लिखना पड़ता है । परंतु हर मामले में हम ऐसा नहीं कर सकते । संभव

है ऋणी भाषा में समकक्ष शब्द नहीं मिल पाएं। ऐसे शब्दों का अनुवाद करना पड़ता है - अर्थात् शब्द की परिभाषा के अनुसार उसके लिए एक सामान्य ग्राह्य समकक्ष अपनाना होता है। इन्हीं को हम तकनीकी शब्द कहते हैं।

सभी शब्दों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं -

(1) तकनीकी शब्द

(2) सामान्य शब्द (गैर-तकनीकी शब्द)

(3) अर्ध-तकनीकी शब्द।

'टैक्नीकल' शब्द ग्रीक शब्द 'टैक्नीकोस' से बना है जिसका अर्थ है 'कला का'। ग्रीक में 'टैक्टोन' का अर्थ 'कार्पेन्टर' या 'बिल्डर' है। लैटिन में 'टैक्सेअर' का अर्थ 'ट् वीव' या 'कन्स्ट्रक्ट' है।

उपर्युक्त आधार की विशिष्टता से यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द की रचना करनी पड़ती है या उसको बुनना पड़ता है। उदाहरण के रूप में, एक शब्द 'साइन्स' को ले लीजिए। रूसी भाषा में इस शब्द का 'नॉका' और जर्मन में 'विसेनक्राफ्ट' अनुवाद किया गया है, हालांकि अंग्रेजी 'साइन्स' शब्द 'नॉका' तथा 'विसेनक्राफ्ट' शब्दों की अपेक्षा एक सीमित अर्थ रखता है। अंग्रेजी में कोई भी ऐसा ठीक-ठीक शब्द नहीं है जो 'नॉका' शब्द के पूरे अर्थ को दे सके। विज्ञान अर्थ को स्थिर करता है, भाषा शब्द को स्थिर करती है।

लड़का, चीता, घर, बर्तन आदि सामान्य शब्द हैं। इन शब्दों में कोई तकनीकी बात नहीं है। परंतु 'टैंडन', 'ल्यूकोसाइट' आदि तकनीकी शब्द हैं। हम पक्षियों का चौपायों से भेद आसानी से कर सकते हैं परंतु एक दूसरी जाति चमगादड़ की है जो न पक्षी है और न चौपाया बल्कि वह दोनों ही है। इस प्रकार कुछ अन्य अर्ध-तकनीकी शब्द हैं।

एक विशिष्ट विधाविशेष, विज्ञान या कला से संबंधित शब्द तकनीकी कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर, आयुर्विज्ञान में 'पैराप्लीजिया', 'ल्यूकोडर्मा', 'इन्फ्लैमेशन', 'ट्यूमर' आदि तकनीकी शब्द हैं। कुछ विज्ञान के शब्द ऐसे भी हैं जो रोज़मर्रा के इस्तेमाल में आते हैं, जैसे 'आई', 'नोज', 'टंग', 'बोन', 'मसल' आदि, और इन शब्दों को व्यक्ति आसानी से समझ लेते हैं, इसीलिए इनको तकनीकी शब्दों की गिनती में नहीं रखा जाता। विशिष्ट संदर्भ में ही इनको तकनीकी माना जाता है।

जो शब्द रचनात्मक यांत्रिक प्रवीणता के परिणाम को दर्शाते हैं, जैसे 'ट्राइप्लेन', 'ग्लाइडर', 'डिलीवरी', 'फोर्सेप्स', 'थर्मामीटर', 'थर्मोन्यूक्लियर वैपन' तथा 'थर्मोस्टैट', ये सभी तकनीकी शब्द हैं।

तकनीकी शब्द की निम्न विशिष्टताएं होती हैं :

ऐसे शब्दों को सामान्य व्यक्ति उस समय तक नहीं समझ सकता जब तक उन विषयों से संबंधित विज्ञान अथवा कला का ज्ञान उसको नहीं होता । ऐसे शब्दों को परिभाषित करना होगा क्योंकि वे अवधारणा में भाववाचक हैं । सामान्य अभिव्यक्ति में प्रयोग में लाने के अलावा विशिष्ट स्थानों पर इनका अधिक पारिभाषिक अर्थ हो सकता है । उदाहरणस्वरूप, 'डैन्सिटी' एक सामान्य शब्द है जो भाववाचक है और विशेषण 'डैन्स' से बनाया गया है, जिसका तात्पर्य घन या मोटा है । इसलिए 'डैन्सिटी' का अर्थ घनता या घनत्व हुआ । परंतु यदि 'डैन्सिटी' की परिभाषा - एक पदार्थ के यूनिट वॉल्यूम का वजन - की जाए तो यह शब्द तकनीकी हो गया । तात्पर्य यह हुआ कि यह ऐसी बात की तरफ इशारा करता है जिसकी वैज्ञानिक परिभाषा की गई है ।

उपर्युक्त शब्दों के भावानुवाद या व्याख्या या स्पष्टीकरण को तकनीकी नहीं माना जाएगा जैसे 'पैराप्लीजिया' शरीर के निचले भाग का अंगघात, 'ल्यूकोडर्मा' धवल त्वचा आदि ।

कुछ ऐसे जटिल शब्द हैं जिनको समझने के लिए विशिष्ट विवरण की आवश्यकता होती है । शरीरक्रियाविज्ञान, मनोविज्ञान, प्रकृतिविज्ञान आदि अनेक वैज्ञानिक शब्द हैं, जिनके लिए ऐसे विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है जिन पर ये आधारित हैं । ऐसे शब्दों को तकनीकी शब्द कहते हैं ।

क्रियात्मक प्रशिक्षण तथा मशीनरी से संबंधित अभिव्यक्ति वाले शब्द भी तकनीकी हैं । उदाहरण के रूप में विभिन्न मशीनों के नाम आदि ।

विधि से संबंधित शब्द भी तकनीकी हैं, जैसे 'अभियुक्त', 'प्रतिवादी', 'पक्का चिट्ठा' आदि ।

कविताओं, पत्रिकाओं, दैनिक पत्रों आदि में आये दिन ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो तकनीकी होते हैं ।

तकनीकी शब्दों की उपयोगिता

तकनीकी शब्दों का प्रयोग वे विद्वान करते हैं जिनका संबंध विभिन्न वैज्ञानिक विषयों एवं कला के अध्ययन से होता है । यहाँ पर सामान्य विचार, जटिल धारणाओं तथा दुर्बोध प्रतिमानों की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है जिससे शब्द भारी हो जाता है और अर्थ में गलतफहमी हो जाती है, जैसे - 'इन्फ्लैमेशन', 'बैन्जीन रिंग', 'एवोगाद्रो', 'हाइपोथीसिस' आदि संक्षिप्त रूप हैं परंतु इनके साथ अनेक अर्थ बंधे हुए हैं । विचार-विमर्श तथा टीका-टिप्पणी में इस छोटे रूप का प्रयोग किया जा सकता है । वैज्ञानिक बातचीत के ऊंचे स्तर

पर आचार्य वर्ग इनको उस पूंजीपति की तरह व्यवहार में लाते हैं जो लाखों रुपयों का एक चैक बनाकर दे देता है । मिसाल के तौर, पर 'भारत एक लोकतांत्रिक देश है', इसे स्पष्ट करने में बहुत कुछ कहा जा सकता है । ऐसे तकनीकी शब्दों द्वारा ज्ञान एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक, एक देश से दूसरे देश तक तथा एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक पहुँचाया जा सकता है । एक लेखक के निम्न उद्धरण द्वारा उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि की जा सकती है - "विज्ञान की विशिष्ट भाषा का एक लाभ उसके द्वारा प्राप्त व्यवस्थित ज्ञान का संक्षेपण है ।"

अर्ध तकनीकी शब्द - ऐसे शब्द वे हैं जो साधारण और तकनीकी शब्द की बीच की स्थिति में आते हैं । साधारण शब्दों को तो आसानी से पहचाना जा सकता है इसलिए इनके बारे में स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अर्ध-तकनीकी शब्दों को दो विशेषताओं के जरिए पहचाना जा सकता है - प्रयोग द्वारा अच्छी प्रकार की जानकारी और सुस्पष्टता द्वारा, अर्थात् यौगिक शब्द बनाते समय साधारण शब्दों का प्रयोग करके वाक्य का निर्माण करना । सूजन, वेदना, नील पड़ना आदि साधारण शब्द माने जाते हैं परंतु इन शब्दों को स्पष्ट करें तो इनमें वैज्ञानिक विशिष्टता मिलती है । इसलिए इनको अर्ध तकनीकी कहा जा सकता है । अनेक ऐसे शब्द हैं जो अलग-अलग शब्दों को मिलाकर बनाये जाते हैं, जैसे ट्रैक्शन-फॉरसैप्स, सारटोरियस कैनाल, मीडियोलेटरल आदि। ये शब्द साधारण हैं और समझ में भी आते हैं परंतु इनकी भी एक विशिष्टता है । अन्य उदाहरणों में नेल-पुलर, रेजिस्टैंस क्वाइल, शॉक एब्जौरवर, एयर-ड्राइंग आदि भी अनेक ऐसे शब्द हैं जिनका साधारण अर्थ होते हुए भी गूढ़ अर्थ हो सकता है । हाइड्रोजन सल्फेट, ब्लू स्टोन, कॉपर सल्फेट, मार्श गैस आदि शब्दों में एक शब्द सामान्य है और दूसरा तकनीकी है ।

तकनीकी शब्दों का अनुवाद किस प्रकार किया जाए

जैसा कि सर्वविदित है और पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है तकनीकी शब्द छोटे तथा जटिल विचारों को सांकेतिक रूप में अभिव्यक्ति देने वाले होते हैं । आमतौर पर जब किसी यंत्र या शल्यक्रिया का विकास होता है तो लिखने वाला उसे एक नाम दे देता है और उसकी भाषा में उसको स्वीकार कर लिया जाता है । अधिक ज्ञान से भरी भाषा जब दूसरी अल्पज्ञान वाली भाषा के संपर्क में आती है तो उधारबाजी प्रारंभ हो जाती है । प्रयोगकर्ताओं के कारण वे शब्द दूसरी भाषा का अंग बन जाते हैं । विद्वान यह उधारबाजी अनुवाद के नियमों के आधार पर करते हैं । पश्चिमी देशों ने विज्ञान में बहुत तरक्की की है । अनेक शब्दों का नव निर्माण हुआ है और उन्हें अपनी भाषा में अनुवाद के सिद्धांतों के आधार पर मिला लिया गया है । इन अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्याय बनाने का कार्य विषय के विशेषज्ञों और भाषाविदों के परस्पर सहयोग से करना होता है । बहुत-से विद्वान ऐसे हैं जो स्रोत भाषा का अच्छा ज्ञान रखते हैं परंतु उनका लक्ष्य भाषा का ज्ञान उतना अच्छा नहीं होता । इसी प्रकार बहुत से विद्वान ऐसे हैं जो स्रोत भाषा का तो अच्छा ज्ञान नहीं रखते

परंतु अपनी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान होता है । उधर विषयों के विशेषज्ञ भाषा की गहनता की दृष्टि से प्राय: सुविज्ञ नहीं हो पाते इसलिए इस क्षेत्र में भाषाविदों का सहयोग अनिवार्य हो जाता है । इसीलिए ऐसे सभी विद्वानों की एक संगोष्ठी बुलाकर विचार-विमर्श किया जाता है ।

शब्दावली का निर्माण एक निरंतर और व्यवस्थित प्रक्रम है । इसीलिए शब्द निर्माण करते समय अनुवादक का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह पहले शब्द के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझे और तब शब्द निर्माण के सिद्धांतों के आधार पर शब्दों का निर्माण करे अथवा उसका अनुवाद करे ।

शब्द और उनके अर्थ

शब्द मौलिक संकेत अथवा प्रतीक हैं और बाद में उनको लेखन-प्रतीक में निरूपित किया जाता है । जब तक उन शब्दों को श्रोता अथवा पाठक अच्छी तरह समझ नहीं लेता तब तक उनके निर्माण का ध्येय पूरा नहीं होता । इसीलिए अनुवादक का यह कर्तव्य है कि पहले वह शब्द का (संदर्भ सहित) अर्थ समझे और बाद में उसका अनुवाद करे ।

शब्द के अर्थ दो प्रकार के होते हैं :

(1) रूढ़िगत (2) व्युत्पत्तिक

रूढ़िगत शब्द - बिल्ली, अंबुज आदि

व्युत्पत्तिक शब्द - धमनी, शिरा, तंत्रिका आदि ।

धमनी अथवा शिरा शब्दों का संबंध शुद्ध तथा अशुद्ध रक्त से है परंतु धमनी शब्द - 'धमन्यात् धमनी' अर्थात् जो धमन करे से बना है तथा शिरा शब्द - 'शिरणात् शिरा' अर्थात् जो सरण करे से बना है । कुछ शब्दों का निर्माण आकार के अनुसार कर दिया जाता है, जैसे - 'क्रोकोडाइल फॉरसेप्स ।'

शब्द की व्युत्पत्ति

किसी विशिष्ट शब्द की व्युत्पत्ति का तात्पर्य उन तत्वों से है जिनसे उसको बनाया गया है । प्रयोग में लाने वाला व्यक्ति रूढ़िगत अर्थ को तो जानता है परंतु यह आवश्यक नहीं कि वह उसकी व्युत्पत्ति का जानकार भी हो । तकनीकी शब्दों का अनुवाद करते समय शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान लाभकारी सिद्ध होता है । उदाहरण के रूप में, एक शब्द है लिथार्ज़ें जो 'येलो ऑक्साइड ऑफ लेड' के संदर्भ में लिया जाता है । 'लिथार्ज़ें' शब्द 'लिथोस' से लिया गया है जिसका अर्थ एक स्टोन या पत्थर है । इसमें

आर्जेंटिनम अर्थात् सिल्वर मिलाकर इसे यौगिक रूप में लिखा गया है । शब्द की व्युत्पत्ति जानने से उसका पर्याय बनाने या अनुवाद करने में हमेशा सहायता मिलती है ।

यदि संदर्भ को ध्यान में न रखा जाए तो केवल शब्द का कोई अर्थ होता ही नहीं । एक ही शब्द के संदर्भ के अनुसार अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं । इसीलिए शब्द का अनुवाद करते समय संदर्भ को जान लेना अत्यंत आवश्यक होता है ।

यौगिक शब्दों का अनुवाद करते समय उनके योगार्थ का अनुवाद नहीं करना चाहिए । प्रत्येक शब्द के अलग-अलग अर्थ भी जानना अत्यंत आवश्यक है । उन दोनों शब्दों का आपस में क्या संबंध है, यह जानना परम आवश्यक है और इसके बाद ही निर्माण का कार्य आरंभ करना चाहिए । उदाहरण के लिए, नाइटमैन का अर्थ हुआ - वह व्यक्ति जो रात में कार्य करता है । यदि इस शब्द का अनुवाद रात का आदमी हुआ तो इसका अर्थ नहीं निकलता क्योंकि भारत की किसी भी भाषा में इस प्रकार का शब्द प्रचलित नहीं है । यदि इसका अनुवाद 'रात्रिचर' या 'निशाचर' किया जाता है तो साहित्य में इसको 'राक्षस' कहा जाता है । अतः वास्तविक अनुवाद 'चौकीदार' होगा ।

आयुर्विज्ञान की शब्दावली में ऐसे अनेक अंग्रेजी के शब्द हैं जिनको दूसरी भाषा में उनके समकक्ष नहीं बनाया जा सकता, जैसे - वैन्ट्रिकल, टंग इत्यादि । हिंदी में वैन्ट्रिकल को 'निलय' तथा 'टंग' को जिह्वा बनाया गया है । इसी प्रकार अंग्रेजी के 'विंड', 'एयर', 'गैस' शब्द हैं । इन शब्दों के अंग्रेजी में निश्चित अर्थ हैं और इन सभी को हिंदी में प्रचलित 'हवा' शब्द के सामान्य रूप में नहीं अपनाया जा सकता । नए शब्द जैसे वात, वायु, अनिल, प्रभंजन को प्रयोग में लाना पड़ेगा और संस्कृत में प्रयोग किए गए इन शब्दों का यदि अंग्रेजी के शब्दों के साथ मतभेद होगा तो इन पर पुनर्विचार करना होगा ।

शब्दों का अनुवाद करते समय निम्न बातों को स्पष्ट करना आवश्यक है :

1. **अनूद्य शब्द के अर्थ की परिभाषा** - शब्द के अर्थ की परिभाषा निश्चित करके उसे स्पष्ट कर लिया जाए, यदि शब्द तकनीकी है या सामान्य है तो उसके संदर्भ द्वारा अर्थ को निश्चित कर दिया जाए ।

2. **संपूर्ण विचार का उसकी मूल अवधारण के आधार पर विश्लेषण** - अर्थ का संघटकों में विश्लेषण करना, अर्थात् उन तत्वों के आधार पर शब्द का विश्लेषण करना जिनसे उसका निर्माण हुआ है । एक शब्द है - कोन्ड्रॉइड । यह शब्द कोन्ड्र और ऑइड से मिलकर बना है । कोन्ड्र का अर्थ है कार्टिलेज जिसका उपास्थि के रूप में अनुवाद किया गया है तथा ऑइड का सम के रूप में अनुवाद किया गया है। इसलिए हिंदी में अनुवाद अथवा पर्याय हुआ उपास्थिसम ।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि नए शब्द का अनुवाद प्रत्ययों के आधार पर या उसके अलग-अलग शब्दों के आधार पर करना चाहिए ।

3. **अनुवाद** – दूसरे किस्म के उदाहरण हैं – फायर ब्रिक – ऐसी ईंट जो आग को न पकड़े, फायर वॉल – ऐसी दीवार का निर्माण जो आग को फैलने से रोके । केवल अग्नि-इष्टिका या अग्नि-भित्ति पढ़ने वाला व्यक्ति अर्थ को समझ नहीं पाएगा । इसीलिए इनके स्थान पर यदि अग्निरोध-इष्टिका तथा अग्निरोध-भित्ति बनाया जाए तो ज्यादा स्पष्टता आ जाती है । अनुवाद करने का तात्पर्य ही यह है कि पढ़ने वाला व्यक्ति शब्द को अच्छी प्रकार से समझ सके ।

दोनों ही भाषाओं में संरचनात्मक समानता

शब्द के विशेषण रूप का अनुवाद प्रत्यय लगाकर अंग्रेजी तथा संस्कृत में किया जाता है । नीचे अंग्रेजी में 'al' प्रत्यय का प्रयोग निम्न प्रकार से किया गया है –

कोस्टल ट्रेड – तटीय व्यापार
डैन्टल पैपिला – दंत पैपिला
डैन्टल प्लेट – दंत पट्ट
उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अंग्रेजी में 'एल' का अर्थ ' से संबंध' है ।

संकर शब्द

संकर (हाइब्रिड) वे शब्द हैं जो विभिन्न भाषाओं के अवयवों से बने हैं । इस प्रकार से बने हुए संकर शब्द अन्य भाषाओं में मिलकर उसका एक अंग बन जाते हैं । किसी भी भाषा में पूर्ण विशुद्धता नहीं मिलती । प्रत्येक भाषा में इस प्रकार के संकर शब्द देखने को मिलेंगे । जब हम किसी अन्य भाषा का शब्द अपनी भाषा में लेते हैं तब उसको इकाई के रूप में प्रयोग करते हैं परंतु जब हम उससे व्युत्पन्न या संयुक्त शब्द बनाते हैं तब मामला दूसरा ही हो जाता है । इसी प्रकार अरबी फारसी संस्कृत शब्द बनाते हैं तब मामला दूसरा ही हो जाता है । इसी प्रकार अरबी फारसी संस्कृत, प्राकृत शब्दों को भारत की सभी भाषाओं में उधार के रूप में लिया गया हे । परंतु इनका प्रयोग विशिष्ट भाषा जीनियस (प्रकृति) के अनुसार किया गया है ।

संकर व्युत्पन्न – मिश्रित शब्दों के समान इनको देशीय प्रत्ययों के विदेशी आकारों के साथ मिलाकर बनाया जाता है । उदाहरण के रूप में पागल, सरकार तथा खिदमत को लीजिए । इनसे पागलपन, सरकारी तथा खिदमतगार जैसे शब्द बने परंतु यदि हम पागलत्व, सरकारता तथा खिदमतिक, त्व, त तथा इक मिला कर बनाएं तो उनको संकर शब्द कहेंगे । लेकिन व्याकरण की दृष्टि से ऐसे शब्दों को नहीं बनाया जाता ।

• • • • •

अर्थशास्त्र से संबद्ध शब्दावली निर्माण : समस्याएं एवं निराकरण

- डॉ॰ प्रशांत कुमार घोष

विश्वविद्यालय स्तर पर किसी भी भारतीय भाषा के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन के लिए यह आवश्यक है कि संबंधित विषय की उपयुक्त व पूर्ण शब्दावली उपलब्ध हो । परंतु अर्थशास्त्र के संदर्भ में इसका नितांत अभाव है । कारण यह है कि पिछली दो शताब्दियों में इस विषय के विकास पर पाश्चात्य विचारों व अंग्रेजी भाषा का ही सर्वाधिक प्रभाव रहा है । अतः अधिकांश स्तरीय सामग्री भी अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध है । इस कारण विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय भाषा के विद्यार्थियों के लिए एक विषय के रूप में अर्थशास्त्र का अध्ययन कठिन होता है, जो ऐसे विद्यार्थियों में इसके अधिक लोकप्रिय न हो सकने का एक मुख्य कारण भी है ।

वर्तमान में अर्थशास्त्र विषय को समझने की आवश्यकता केवल इस विषय के विद्यार्थियों व अध्यापकों तक ही सीमित न होकर समाज के प्रत्येक वर्ग की हो गई है । अतः अर्थशास्त्र से संबद्ध शब्दावली के निर्माण में दो प्रकार के समूहों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए - (1) इस विषय के नियमित छात्र व अध्यापक, तथा (2) विश्वविद्यालयों के पत्राचार व सतत शिक्षण संस्थानों में पत्राचार के माध्यम से उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले लोग, जिनमें पत्रकार, जन-प्रतिनिधि, शेयरकारोबारी, श्रमिक संगठनों के प्रतिनिधि, बैंकर, नियोजनकर्ता, व्यवसायी, प्रशासनिक अधिकारी, प्रतिरक्षा सेवाओं के अधिकारी आदि सम्मिलित हैं ।

इनके अतिरिक्त आर्थिक विषयों में रुचि रखने व इस पर चर्चा करने वाले जन-सामान्य को भी इसकी सही समझ के लिए अर्थशास्त्र शब्दावली की सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती रहती है । इस प्रकार अर्थशास्त्र शब्दावली का परिक्षेत्र काफी व्यापक है ।

भारतीय भाषाओं में अर्थशास्त्र संबंधी अनूदित व मौलिक पुस्तकों के लेखन में विभिन्न विद्वानों द्वारा एक ही संकल्पना के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों के प्रयोग के कारण बहुधा यह विषय बोधगम्य नहीं हो पाता । उदाहरणार्थ, अंग्रेजी शब्द 'Indifference Curve' को लें । इसके लिए हिंदी भाषा में प्रयोग किए जाने वाले का सम समानार्थी शब्द हैं - 'तटस्थता वक्र', 'अनधिमान वक्र' 'सम-संतुष्टि वक्र', 'भेदरहित वक्र', 'सम-उपयोगिता

वक्र' आदि । शब्दों की एकरूपता के अभाव की ऐसी स्थिति में पठन-पाठन में यदाकदा अनावश्यक ही विषय-संबंधी भ्रम उत्पन्न होते हैं । साथ ही, ऐसे में उचित पर्याय-निर्धारण का कार्य अत्यंत जटिल हो जाता है और परिणामस्वरूप शब्दावली-निर्माण का भी । अनेक सरल व प्रचलित अंग्रेजी पदुच्चयों के अत्यंत जटिल भारतीय भाषांतरण के कारण प्राय: उनका अर्थ समझना तक कठिन हो जाता है जिससे विषय का दुरूह हो जाना स्वाभाविक ही है । अत: शब्दावली निर्माण में ऐसे अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्यायों के चुनाव में अर्थ-संक्षेप, सरलता, स्पष्टता, सुबोधता आदि गुणों पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनसे पहली बार साक्षात्कार होने पर वे अटपटे न लगें और जो बोलचाल की भाषा के अधिकाधिक निकट हों ।

निराकरण के प्रमुख बिंदु

1. अर्थशास्त्र-विषयक जो अंग्रेजी शब्द या शब्द-संकेत भारतीय भाषाओं में प्रयोगकर्ताओं में ग्राह्य और प्रचलित हो चुके हैं, लेखन या पठन-पाठन में यथासंभव उनका प्रयोग उनके मूलरूप में ही यथावत् किया जाना चाहिए । इन अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का सरल भारतीय लिप्यंतरण मात्र किया जाना चाहिए, अर्थानुवाद कदापि नहीं । लिप्यंतरण करते समय इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि वह मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक निकट हो । इससे उस शब्द एवं उसके अर्थ को समझने, प्रयोग में लाने व आत्मसात् करने में कोई कठिनाई नहीं होगी । इसके विपरीत यदि इन अंग्रेजी शब्दों का हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने का प्रयास किया गया तो इससे न केवल विषय जटिल हो जाएगा बल्कि साथ ही शब्दावली का मानकीकरण भी संभव नहीं होगा । उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'Budget', 'Licence', 'Quota', तथा 'Bonus' जैसे आर्थिक शब्दों को देवनागरी लिप्यंतरण में क्रमशः 'बजट', 'लाइसेन्स', 'कोटा' तथा 'बोनस' लिखना मेरे विचार से अधिक उचित व सरल होगा ।

2. अर्थशास्त्र में यदाकदा अंग्रेजी के ऐसे शब्द भी प्रयुक्त होते हैं जिनकी अवधारणाएं अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होती हैं । ऐसी भिन्न स्थितियों में इनके भारतीय पर्याय भी भिन्न हो जाते हैं । उदाहरणार्थ, अंग्रेजी शब्द 'Investment' को देखें । इस एक ही शब्द के निम्न दो अर्थ हैं[1] :

---

1. *Christopher Pass and Bryan Lowes, Collins Dictionary of Economics, 2nd Edition, Harper-Collins Publisher, Glasgow, 1993, pp. 278-79.*

(अ) आर्थिक पद की दृष्टि से इस शब्द का अर्थ सामान्यतः भौतिक परिसंपत्तियों पर किए जाने वाले पूँजीगत व्यय अर्थात् भौतिक या वास्तविक व्यय से है ।

(ब) वित्तीय पद की दृष्टि से इस शब्द का अर्थ सामान्यतः शेयर बाजार में अंशपत्रों, प्रतिभूतियों, ऋणपत्रों आदि पर किए जाने वाले वित्तीय व्यय से है ।

हिंदी भाषा में इनमें से प्रथम के लिए 'विनियोग' तथा द्वितीय के लिए 'निवेश' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

स्पष्ट है कि ऐसे प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के समानार्थी भारतीय पर्यायों को उनके स्पष्टीकरण के साथ दिया जाना आवश्यक है । इन शब्दों के एक से अधिक हिंदी पर्याय तो दिए ही जाने चाहिए, साथ ही प्रत्येक पर्याय के साथ कोष्ठक में उसके प्रयुक्त किए जाने के संदर्भ का स्पष्ट उल्लेख भी किया जाना चाहिए ।

3. शब्दावली-निर्माण के समय ऐसे अंग्रेजी शब्दों के हिंदी शब्दार्थ लिखने में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए जिनमें आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से स्पष्ट अंतर है परंतु हिंदी भाषा में इस अंतर की अवहेलना जाने - अनजाने की जाती रही है, जिससे प्रारंभ से ही छात्रों के मस्तिष्क में इनकी बिल्कुल गलत अवधारणाएं घर कर जाती हैं । उदाहरणार्थ, अंग्रेजी पदुच्चयों 'Economic Development' तथा 'Economic Growth' पर विचार करें । इन दोनों में आशय, अवस्था तथा विस्तार की दृष्टि से पर्याप्त भेद हैं[1] । परंतु अधिकांश भारतीय भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकों में इन दोनों शब्दों के बीच की इस स्पष्ट विभाजन-रेखा पर सामान्यतः ध्यान नहीं दिया जाता है । इनमें से पहले के लिए सदैव 'आर्थिक विकास' तथा दूसरे के लिए सदैव 'आर्थिक संवृद्धि' का ही प्रयोग किया जाना चाहिए । ध्यान रहे, अर्थशास्त्र की दृष्टि से 'विकास' और 'संवृद्धि' पर्यायवाची शब्द नहीं हैं । अतः इन दोनों शब्दों को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जाने की स्वतंत्रता बिल्कुल नहीं ली जानी चाहिए, जैसी कि सामान्यतः ली जाती रही है ।

इसी प्रकार माँग-विश्लेषण के संदर्भ में 'Expansion (विस्तार) व 'Increase' (वृद्धि) शब्दों के मध्य तथा 'Contraction' (संकुचन) व 'Decrease' (कमी) शब्दों के मध्य आर्थिक संकल्पना की दृष्टि से पर्याप्त अंतर है । अतः 'विस्तार'

1- *Stephen Enke, Economics for Development, Prentice-Hall, N.J. 1963.*

व 'वृदधि' शब्दों का अथवा 'संकुचन' व 'कमी' शब्दों का एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाना गलत होगा ।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण अंग्रेजी 'Price' शब्दों तथा 'Value' का है । अर्थशास्त्र में इनमें से प्रथम का अभिप्राय 'कीमत' तथा दूसरे का 'मूल्य' से है । आर्थिक संकल्पना के अनुसार इन दोनो शब्दों में कितनी भिन्नता है, यह बात एक अंग्रेजी वाक्य 'Price relfects value' से स्पष्ट हो जाएगी । परंतु हिंदी भाषा की पुस्तकों में इन दोनों ही शब्दों के लिए स्वेच्छा से कभी 'मूल्य' तो कभी 'कीमत' लिखा जाता है, जो सर्वथा अनुचित है ।

स्वाभाविक है कि यदि विद्यार्थियों को प्रारंभ से ही ऐसे शब्दों का बारीक अंतर स्पष्ट नहीं होगा तो वे अनजाने ही न केवल इनका दोषपूर्ण प्रयोग करने के अभ्यस्त हो जाएंगे वरन् साथ ही विषय की शुद्ध अवधारणाएं समझ सकने में भी असमर्थ होंगे । इस संदर्भ में शब्दावलीकार का दायित्व और भी बढ़ जाता है । अत: शब्दावली निर्माण में सामान्य त्रुटियों वाले ऐसे शब्दों के अर्थ स्पष्ट करते समय यदि उनके साथ ही कोष्ठक में उनसे मिलते-जुलते अन्य शब्दों तथा उनके मध्य के अंतर का भी संकेत कर दिया जाए तो निश्चय ही शब्दावली अपने दायित्व का निर्वाह कर सकेगी । यदि सामान्य त्रुटियों वाले ऐसे शब्द-समूहों के लिए कोई अलग खंड बनाया जाए तो इन भूलों को समझने तथा उनका निराकरण कर सकने में भी सहायता मिलेगी ।

4. चूँकि अंग्रेजी शब्दों के अनेक हिंदी पर्याय प्रयुक्त किए जाते हैं, अत: विश्वविद्यालय स्तर पर विषय को बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से अंग्रेजी शब्दों के समस्त समानार्थी हिंदी पर्याय दिए जाने के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि इनमें से सबसे सरल पर्याय को रेखांकित किया जाए ताकि भविष्य में यही शब्द व्यवहार्य बन सके ।

5. यद्यपि विश्वविदयालय स्तर पर अर्थशास्त्र विषय को अनेक शाखाओं जैसे - व्यष्टि, मौद्रिक, लोक कल्याण, अंतर्राष्ट्रीय, अर्थनीति आदि में विभक्त किया जाता है, परंतु शब्दावली को पूर्ण व उपयुक्त बनाने के लिए इन सभी को एक ही साथ संकलित किया जाना नितांत आवश्यक है ।

6. जहाँ समानार्थी अंग्रेजी शब्दों या समान शब्द-समूहों की पुनरावृत्ति होती है, वहाँ उनका उल्लेख उन शब्दों को तारांकित करके प्रति-निर्देश (Cross Reference) के रूप में अवश्य दिया जाना चाहिए । हिंदी शब्दों के लिए ऐसा करने से शब्दावली अधिक ग्राह्य होगी ।

7. अर्थशास्त्र विषय की सीमा अत्यंत व्यापक होने के कारण प्राय: इसमें निकटवर्ती इतर विषयों जैसे - वाणिज्य व व्यवसाय के शब्दों का भी प्रयोग बहुतायत से होता है । अत: ऐसे शब्दों के समावेश से शब्दावली की प्रासंगिकता बढ़ जाएगी ।

8. अर्थशास्त्र विषय में अनेक शब्दों के संक्षिप्त रूप (Abbreviation) अत्यधिक प्रचलित हैं, यथा - GNP, GDP, SLR, VAT, SDR, MOU. EOU आदि । मेरी दृष्टि में शब्दावली में इन संक्षिप्त रूपों को यथावत् लेने के साथ ही इनका पूर्ण विस्तार अंग्रेजी व भारतीय भाषा - दोनों में दिया जाना चाहिए ।

9. आर्थिक व राजनैतिक जगत् से संबंधित अनेक संस्थाओं व संगठनों का उल्लेख विश्वविदयालय स्तर के अर्थशास्त्र में बहुतायत से होता है, जैसे - UNCTAD, GATT, G-15, SAARC, EEC, OPEC, WTO आदि । यद्यपि ये अर्थशास्त्र से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं हैं, परंतु शब्दावली को उपयोगी बनाने के लिए इन्हें अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

10. अर्थशास्त्र के अधिकांश सिद्धांतों की व्याख्या के लिए रेखाचित्रों व ज्यामितीय आकृतियों का प्रयोग किया जाता है । इनमें वक्रों, रेखाओं, अक्षों आदि को दर्शाने के लिए उनके संक्षिप्त रूप ही प्रयोग किए जाते हैं, जिन्हें सामान्यत: अंग्रेजी वर्णों व संकेतों में ही दर्शाया जाता है, जैसे - माँग वक्र के लिए - D, पूर्ति वक्र के लिए - S, संतुलन बिंदु के लिए - E, औसत लागत वक्र के लिए - AC, सीमांत लागत-वक्र के लिए - MC, औसत आय वक्र के लिए - AR, सीमांत आय वक्र के लिए - MR, आय-व्यय समानता रेखा के लिए - Y=E आदि । संभवत: शब्दावली में ऐसे संक्षिप्त अंग्रेजी वर्ण-संकेतों को उनके मूलरूप में ही प्रयोग किया जाना उचित होगा । अत: ऐसे प्रचलित संक्षिप्त रूपों का उल्लेख उनके विस्तृत शब्द के साथ ही कोष्ठक में कर दिया जाना चाहिए । यदि शब्दावली के अंत या प्रारंभ में ऐसे प्रचलित संक्षिप्त रूपों की एक अनुक्रमणिका बना दी जाए तो इससे पाठकों को विषय समझने में अधिक सहायता मिलेगी ।

11. अर्थशास्त्र में अनेक सिद्धांतों, अवधारणाओं व संबंधों का निरूपण सूत्रों व समीकरणों के माध्यम से किया गया है । इन सूत्रों व समीकरणों में अंग्रेजी के वर्ण ही प्रयुक्त किए गए हैं, जैसे -

(अ) समग्र आय की अवधारणा के लिए, $Y = C + I + G$

(ब) उपभोग व बचत प्रवृत्तियों के संबंधों के लिए, $MPC + MPS = 1$

(स) मुद्रा परिमाण सिद्धांत के लिए, $M.V. = P.T.$

(द) गुणक की अवधारणा के लिए, $K = \frac{1}{1 - MPC}$

अर्थशास्त्र में सामान्य रूप से प्रयुक्त किए जाने वाले अंग्रेजी के इन वर्ण संकेतों, सूत्रों व समीकरणों का भारतीय भाषाओं मं लिप्यंतरण नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इन्हें इनके मूलरूप में ही यथावत् दर्शाते हुए इनमें प्रयुक्त वर्णों व पदों के अर्थ अंग्रेजी व भारतीय भाषा - दोनों में स्पष्ट कर दिए जाने चाहिए । यदि इनके लिए शब्दावली में एक अलग खंड बनाया जाए तो शब्दावली की उपादेयता निश्चय ही बढ़ जाएगी ।

12. शब्दावली का निर्माण दो अलग-अलग संस्करणों के लिए किया जाना चाहिए - (1) अंग्रेजी-हिंदी, तथा (2) हिंदी-अंग्रेजी । इससे मौलिक अंग्रेजी पुस्तकों अथवा अनूदित या मौलिक हिंदी पुस्तकों में प्रयुक्त किए गए किसी भी शब्द का अर्थ तत्काल स्पष्ट हो सकेगा ।

13. अर्थशास्त्र एक ऐसा गतिमान विषय है जिसमें समय-समय पर नई संकल्पनाओं व नए शब्दों का प्रयोग किया जाता है । साथ ही आर्थिक जगत् में भी प्रायः नए संगठनों व नए संक्षिप्त शब्दों का निर्माण होता रहता है । अतः अर्थशास्त्र शब्दावली का अद्यतन (Upto date) होते रहना आवश्यक है । इसके लिए समय-समय पर शब्दावली के नए संस्करण में ऐसे नवीन शब्दों का समावेश अवश्य करते रहना चाहिए ।

उपर्युक्त बिंदुओं पर ध्यान देने से विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय भाषा की एक मानक शब्दावली का निर्माण संभव होगा । आवश्यकता बस इससे क्लिष्ट व दुरूह बनने से बचाने की है ।

°°°°°

उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों की तलाश

- डॉ॰ शिव गोपाल मिश्र

मैं चालीस वर्षों तक विश्वविद्यालय में कृषि-रसायन का अध्यापक रहा । हिंदी में रुचि होने के फलस्वरूप 1952 से ही हिंदी में विज्ञान-लेखन करने लगा था । मैंने हाई स्कूल में जो विज्ञान पढ़ा था वह हिंदी-अंग्रेजी की खिचड़ी भाषा में होता था । इलाहाबाद आया तो डॉ॰ सत्यप्रकाश (बाद में स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती) से संपर्क हुआ-संपर्क क्या, रसायन विभाग में लेक्चरर के रूप में उनका सहकर्मी बना। वे मेरे शिक्षक भी रहे । उनका हिंदी लेखन मैंने देखा । उनके निर्देशन में विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ तो मैं प्रबंध संपादक बना ।

वैसे विज्ञान-लेखन में तब तक मैं अपने हाई स्कूल ज्ञान के आधार पर हिंदी में लिखता-समझता रहा किंतु अब मुझे डॉ॰ सत्य प्रकाश जी के कारण पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की पद्धति का पता चला । अनुसंधान पत्रिका के लिए शोध-पत्रों का अनुवाद करते समय अंग्रेजी-हिंदी कोशों के साथ ही डॉ॰ रघुवीर के कोश का सहारा लेना पड़ता । मुझे स्मरण है मैंने डॉ॰ सत्य प्रकाश जी से पूछे बिना बेस ऐक्सचेंज का अनुवाद 'पीठिका विनिमय' छपने दिया । बाद में मुझे त्रुटि का पता चला ।

सचमुच पारिभाषिक शब्दों का प्रसंगानुकूल चुनाव हम विज्ञान वालों के लिए अग्नि-परीक्षा बन जाता है । हमें जो हिंदी भाषा का ज्ञान दिया जाता है वह साहित्योन्मुखी अधिक और व्यवहारोन्मुखी कम होता है । हम कितना ही पढ़ जाएँ, लेकिन उपयुक्त शब्द का निर्माण हमारे वश की बात नहीं । शब्दावली आयोग ने दशकों तक विशेषज्ञों के सहयोग से जो पारिभाषिक शब्द गढ़े हैं, उनकी जितनी भी सराहना की जाए कम है । यही नहीं, पारिभाषिक शब्दों के पुनः पुनः परिमार्जन के लिए किए जा रहे परवर्ती प्रयास भी सुखद हैं - सुखद इसलिए कि अब हमारी उन तमाम कठिनाइयों का समाधान हो रहा है जो लेखक के रूप में हम अनुभव कर रहे थे ।

अनुवाद-कार्य करते समय या अनूदित सामग्री का पुनरीक्षण करते समय मैंने अनुभव किया है । कि प्रायः उपयुक्त या सटीक पारिभाषिक शब्द के स्थान पर उसी जैसे दूसरे शब्द को भी पुनरीक्षक चालू कर देते हैं । विचार करने के लिए समय कहाँ ? किंतु जब मौलिक लेखन करना होता है तो स्थान-स्थान पर माथा पकड़कर रुकना पड़ता है, रह रहकर कोश देखने पड़ते हैं और तब तक हमारे भाव समाप्त हो जाते हैं । वस्तुतः तभी अपने भाषा-ज्ञान की न्यूनता, व्याकरण ज्ञान की अक्षमता तथा अपनी असहायता का बोध होता है ।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ मेरा विशिष्ट क्षेत्र कृषि-रसायन रहा है । कृषि हमारे देश की रीढ़ है । कृषि-विज्ञान में होने वाले शोध-कार्यों एवं उसकी प्रगति की सूचना किसानों तक, किसानों तक ही क्यों, देश के शिक्षित समस्त नर-नारियों तक पहुँचाने के लिए हिंदी में इसका प्रकाशन अत्यावश्यक है । मैं पहले तीस वर्षों तक सूक्ष्ममात्रिक तत्वों पर अनुसंधान कार्य का निर्देशन करता रहा तो मैंने इस विषय पर सैकड़ों लेख लिखे और अंत में 'सूक्ष्ममात्रिक तत्व' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी । मुझे प्रसन्नता है कि मैंने लेख लिखते समय पारिभाषिक शब्दों के विषय में जो चिंतन-मनन किया था और गोष्ठियों में जो विचार-विमर्श हुए उसके फलस्वरूप पुस्तक-लेखन में मुझे कठिनाई नहीं हुई । मैं संतुष्ट हूँ कि मैंने पारिभाषिक शब्दावली का उपयुक्त व्यवहार किया है । मुझे स्मरण है कि लखनऊ विश्वविद्यालय में शब्दावली आयोग की एक कार्यशाला में मैंने दो भाषण दिए थे जिनमें 'स्थिरीकरण' शब्द को लेकर स्वयं ही मैने 'निश्चलीकरण', 'यौगिकीकरण' जैसे शब्दों को अधिक उपयुक्त कहा था । इसी तरह कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में ही इंजीनियरिंग कालेज में संपन्न एक गोष्ठी में मैंने पुनः यह विश्वास प्रकट किया था कि लिखते-लिखते लेखन का परिष्कार होता है और उपयुक्त शब्द स्वयं ही लेखनी से निकलने लगते हैं ।

विगत दस वर्षों से मेरा शोध कार्य 'मृदा प्रदूषण' के विषय तक सीमित रहा है । इस विषय पर भी मैंने पचासों निबंध लिखे हैं । किंतु जब मुझसे एक प्रकाशक ने मृदा प्रदूषण पर एक सौ पृष्ठ की पुस्तक लिखने के लिए आग्रह किया और जब मैं पुस्तक लिखने लगा तो मुझे कुछ खट्टे-मीठे-चरपरे अनुभव हुए जिनका उल्लेख करना चाहूँगा । आप कह सकते हैं कि यह रामकहानी कह रहे हैं । किंतु मेरा कहना होगा कि मेरी बातों का 'साधारणीकरण' करके आप हृदयंगम कीजिए । तभी हिंदी में विज्ञान-लेखन सार्थक होगा, प्राणवान बनेगा, तभी हिंदी में विज्ञान-लेखन एक शैली का रूप धारण करेगा, तभी हम हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि कर सकेंगे । वैसे हिंदी के साहित्यकार विज्ञान-लेखन को साहित्य की विधा नहीं मानते । न मानें । लेकिन वे अंग्रेजी के एच॰जी॰वेल्स, जेम्स जीन्स हक्सले आदि की चर्चा करते अघाते नहीं । वे विज्ञान की हिंदी शब्दावली को कृत्रिम बताते हैं - बताएँ । हमें इसकी परवाह न करते हुए अपने विषय को इस प्रकार पुष्ट रीति से प्रस्तुत करना है कि वे दंग रह जाएँ । अब समय आ गया है विश्वविद्यालय स्तर तक की प्रचुर पाठ्य-सामग्री पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर तैयार हो चुकी है - हिंदी ग्रंथ अकादमियों के गोदाम इन पुस्तकों से भरे पड़े हैं । किंतु दुर्भाग्य की बात है कि हिंदी में विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का समुचित वातावरण तैयार नहीं हो पा रहा है । उसका मूल कारण यही है कि वैज्ञानिक हिंदी के पठन-पाठन की उपेक्षा की गई है । यदि प्रारंभ से ही विज्ञान के लिए हिंदी में तैयारी कराई जाए, यदि हर छात्र के लिए पारिभाषिक कोश अनिवार्य कर दिया जाए, यदि कक्षाओं में सही पारिभाषिक शब्द के प्रयोग पर बल दिया जाए तो कोई कारण नहीं कि हमारे छात्र हिंदी में कुशल लेखन न कर सकें । इतना तो सच मान लें कि जब तक विद्यार्थी को तैयार नहीं किया जाएगा, वह विज्ञान का अच्छा

विद्यार्थी भले हो ले - किंतु अच्छा लेखक, अच्छा शिक्षक नहीं बन सकता । अंततः वह सामान्य जन के लिए अज्ञात बना रहगा । उसके ज्ञान का लाभ जनता को नहीं मिल सकेगा ।

आज हिंदी में लेखन के फलस्वरूप कुछ विज्ञान-लेखक अनेक पत्र-पत्रिकाओं की सुर्खियों में इसीलिए दिखते हैं कि वे हिंदी का परिमार्जन करते रहे हैं । किंतु स्मरण रहे कि इनमें से अधिकांश लेखक ऐसे हैं जो उच्चस्तरीय शोध-कार्य से सीधे जुड़े नहीं रहे या कभी उससे उनका संपर्क भी नहीं रहा । ऐसी स्थिति में कुछ न कुछ रिक्तता स्वाभाविक है । विज्ञान-विशेषज्ञों को ऐसा लग सकता है कि उनसे निचले स्तर के लेखक उन्हें मार्ग दिखाना चाहते हैं । किंतु ऐसा मात्र भ्रम होगा । लेखन, परिष्करण, शैली-निर्माण का यह रोना-धोना उन्हें प्रेरित करने, सजग करने के लिए ही है कि वे भी अपने लेखनी उठाएँ, हिंदी में लिखना शुरू करें और उस अभाव की या रिक्तता की पूर्ति करें जिसके लिए हमारा राष्ट्र बेचैन है । जब तक वे हिंदी को अपने लेखन की भाषा नहीं बनाते तब तक हम उत्कृष्ट साहित्य से, उत्कृष्ट भावों से, उत्कृष्ट शैली से वंचित रहते रहेंगे । विगत 50 वर्षों से तमाम लेखकों ने वह पृष्ठभूमि तैयार कर दी है जिससे आगे का कार्य सकुशल संपन्न हो सकता है - यदि हमारे चोटी के वैज्ञानिक अपने इस पुनीत कर्तव्य को समझें कि उन्हें हिंदी में ही अपने शोध-कार्य को प्रस्तुत करना है । उन्हें इसका एहसास होना चाहिए कि भाषा को समृद्ध करके ही विश्वस्तर पर भारतीय विज्ञान को प्रतिष्ठित कर सकेंगे । वे अपनी सहभागिता को समझें, उसे निभाएँ, नवीन विदेशी शब्दों के लिए नए पारिभाषिक शब्द सुझाने, उनका निर्माण करने में अपना योगदान दें । वे उलाहना देने से बाज आएँ कि गढ़े हुए पारिभाषिक शब्द कठिन हैं, या कि अनुपयुक्त हैं ।

बात करते-करते मैं बहक गया । पुनः अपने विषय 'मृदा प्रदूषण' पर आता हूँ । पुस्तक-लेखन में और पुस्तक छप जाने के बाद मुझे जो अनुभव हुए हैं उन्हीं को शब्दबद्ध कर रहा हूँ ।

सर्वप्रथम मृदा का चुनाव करते हुए मेरे समक्ष भूमि, मिट्टी तथा स्थल जैसे शब्द थे । मैंने इन सबकी उपयुक्तता पर विचार किया और इन सबका यथास्थान व्यवहार किया है । मुझे लगा कि ये सब पर्यायवाची हैं । और नहीं भी हैं तो उनका प्रयोग मैं प्रसंगानुसार करता गया । प्रदूषण शब्द मुझे बहुत रुचिकर लगता है । इसी भाव के अन्य शब्द दूषण तथा संदूषण हैं । अपशिष्ट शब्द को लेकर मेरे मन में कुछ ऊहापोह रहा है । इसलिए मैं यदा- कदा अवशिष्ट या व्यर्थ पदार्थ जैसे शब्दों का प्रयोग करता हूँ । इसी से मिलता हुआ शब्द उच्छिष्ट है । मैंने 'रेजिड्यूअल ऐफेक्ट' के प्रसंग में उच्छिष्ट प्रभाव का प्रयोग किया है । किंतु पारिभाषिक कोश में अवशिष्ट प्रभाव शब्द आया है । कभी-कभी मुझे लगता है कि यह शब्द अधिक सही है । इसी तरह मैंने कूड़ा-करकट, मलबा, रद्दी जैसे शब्द 'गार्बेज' के प्रयुक्त किए हैं । अब भी भूमि अपरदन के साथ-साथ भूमिक्षरण मुझे अच्छा लगता है । विच्छेदनशील, विघटनशील या फिर अविघटनीय, न सड़ने-गलने वाले पदार्थ

जैसे शब्दों को मैं एक ही तरह से प्रयोग में लाता हूँ। पारिभाषिक शब्दावली का 'व्यर्थभूमि' 'वेस्टलैंड' के लिए मुझे नहीं रुचता क्योंकि मैं मृदा-विज्ञान के प्रसंग में इस शब्द को वास्तविक भाव का वाहक नहीं मान पाता।

कुछ युग्मी शब्द हैं कृषीय-अकृषीय, जैव-अजैव। मुझे अकृषीय शब्द से कुछ विचित्र अनुभूति होती है। इसी तरह अजैव कहते ही मेरे मन में अकार्बनिक शब्द कौंध जाता है। फिर चुनाव कर पाना कठिन हो जाता है। मुझे निपटान, नवीकरण, चक्रण, उपचारित, संस्तरीकरण, बहिःस्राव जैसे शब्द अति रोचक एवं साहित्यिक लगते हैं जिनके प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन तनूकरण, जीवमंडल, जीवभार (जैवमात्रा) शब्दों में मुझे कुछ न्यूनता लगती है। इसी तरह प्राप्यता के स्थान पर न जाने क्यों मुझे उपलब्धता अधिक भाता है। उद्ग्रहण शब्द ठीक है किंतु क्रिया बनाते समय मुझे कुछ कठिनाई लगती है। भौम जल शब्द अति उत्तम है किंतु मलजल वाहित, मलजल जैसे शब्दों के विषय में बारंबार सोचना पड़ता है। अवमल (स्लज) शब्दभी मेरी रुचि का नहीं लगता।

मुझे Zero ploughing के लिए शून्य जुताई शब्द ग्राह्य है किंतु जब Zero Point pollution के लिए शब्द ढूँढ़ता हूँ तो पारिभाषिक कोश में कोई शब्द न पाकर मैं अपनी पुस्तक में शून्यवत् प्रदूषण लिखने के लिए बाध्य हुआ और कोष्ठक में अंग्रेजी शब्द लिख दिया।

चूँकि नए-नए क्षेत्रों में हमारी रुचि बढ़ी है, और शोधकार्य हो रहा है अतः नए शब्दों की माँग बढ़ेगी। यथा वर्मीकल्चर नया विषय है। विगत पाँच वर्षों से हमारा शोध-कार्य इसी पर हो रहा है। केंचुए पर पुस्तिका लिखते समय मुझ वर्मीकल्चर के लिए कृमि-कृषि शब्द ग्राह्य नहीं हो सका। मेरे मन में 'अर्थवॉर्म' के 'वॉर्म' शब्द तथा अंग्रेजी के अन्य शब्द verm में बारंबार भ्रम होता रहा है। लेकिन किससे अपनी बात कहूँ ?

मैं बायोमास, पैकिंग, डिटरजेंट, मॉनीटरन आदि का व्यवहार प्रायः अंग्रेजी रूप में करता रहा हूँ। मुझे अभी भी बायोमैग्नीफिकेशन, लैंडफिल, फार्म केमर्जी, लोडिंग वर्मीकल्चर (vermiculture) के लिए उपयुक्त शब्दों की तलाश है। मुझे पारिभाषिक शब्दावली का बायोडिग्रेडेबल के लिए स्वीकृत जैव-निम्नीकरणीय बिल्कुल नहीं जमता।

मैंने मृदा के संबंध में रुग्ण मृदा, स्वस्थ मृदा, प्रदूषणमुक्त मृदा, मिट्टियों का दोहन जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए साहित्यिक अभिरुचि का भी परिचय दिया है। विषाक्तता, घातक मात्रा, विषैली धातुएँ, धात्विक प्रदूषण जैसे शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। मैंने प्रदूषण को उग्र भी कहा है। मैंने सूचक पौधे, प्रदूषण-प्रतिरोधी वनस्पतियाँ, डेयरी व्यर्थ-पदार्थ शब्दों का भी प्रयोग किया है। किंतु मैं अब भी यूट्रॉफिकेशन के लिए सुपोषण पारिभाषिक शब्द को मान्यता नहीं दे पाया। इसी तरह डंपिंग ग्राउंड के लिए सन्निक्षेपण-स्थल भी मन में घर नहीं कर पा रहा।

आप मुझे क्षमा करेंगे कि मैंनें अपनी व्यथा-कथा कही । किंतु प्रकारांतर से मैंने वे अनेक बातें कही हैं जो लेखन के समय उभर कर आती हैं । कोई लेखन तभी प्रभावी हो सकता है जब उसे सही रूप में पाठक तक पहुँचाया जा सके । यह परिष्कार, निखार या परिमार्जन एक निरंतर प्रक्रिया है जो मनों में, गोष्ठियों में, प्रकाशनों में परिलक्षित होनी चाहिए ।

मेरा सुझाव है कि शब्दावली आयोग पारिभाषिक शब्दों की संशोधित सूची उन लेखकों के पास अवश्य भेजे जो किसी-न-किसी रूप में लेखन से जुड़े हैं - चाहे वे फ्री लांसिंग करते हों, शोध-पत्र लिखते हों या मौलिक ग्रंथ का लेखन-कार्य कर रहे हों । ऐसे प्रयास, जिनको विज्ञापित या प्रचारित न किया जा सके, कोई अर्थ नहीं रखते । ऐसे मंच से ऐसी घोषणा हो जो सर्वमान्य हो तथा सर्वत्र सुनी जा सके । राष्ट्र की वाणी को मुखरित करने के लिए हिंदी की विज्ञान शब्दावली के लिए एकजुट होकर प्रयास करने की नितांत आवश्यकता है । जो शब्दावली-निर्माण से जुड़े रहे हैं वे प्रचार-कार्य करने में सकुचे नहीं । आवश्यकता पड़े तो इसकी शिक्षा के लिए शिक्षण संस्थान खोलें । भाषा की शक्ति शब्दों के सही प्रयोग में निहित है । शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन भी उस दिशा में एक सही कदम है ।

०००००

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण : एक व्यापक दृष्टिकोण

- श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अर्वाचीन विज्ञान साहित्य का अभाव था, क्योंकि उस समय अंग्रेजी का बोलबाला था और भारतीय भाषाएं विज्ञान के क्षेत्र में उपेक्षित थीं । स्वातंत्र्योत्तर भारत में सरकार के विधान और प्रेरणा से विद्वान लेखक भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन के लिए प्रोत्साहित हुए और इस प्रकार विज्ञान-साहित्य के सृजन का आरंभ हुआ । किंतु इस दौरान हिंदी के क्षेत्र में मानक तथा प्रामाणिक शब्दावली के अभाव में वैज्ञानिक शब्दों के मनमाने और मनगढ़ंत हिंदी पर्याय विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त किए जाने लगे, जिसके फलस्वरूप अराजकता की स्थिति पैदा हो गई । अतः यह महसूस किया जाने लगा कि ऐसी पारिभाषिक शब्दावली विकसित की जाए जो मानक होने के साथ-साथ अखिल भारतीय भी हो ।

हमारी पारिभाषिक शब्दावली कैसी हो, इस बारे में शुरू में विद्वानों में मतभेद रहा है । भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने विचार प्रकट करते रहे हैं । इस दिशा में पाँच प्रकार के संप्रदाय उभर कर सामने आए, यथा-राष्ट्रीयतावादी, अंतर्राष्ट्रीयतावादी, प्रयोगवादी, लोकवादी और समन्वयवादी । इनमें राष्ट्रीयतावादी, अंतर्राष्ट्रीयतावादी और लोकवादी संप्रदाय प्रमुख थे ।

राष्ट्रीयतावादी संप्रदाय के लोग संस्कृत की धातुओं/शब्दों में उपसर्ग, प्रत्यय जोड़कर तथा संधि व समास विधि द्वारा संस्कृतनिष्ठ पारिभाषिक शब्दावली बनाने के पक्ष-धर रहे हैं और तद्भव, विदेशी या देशज शब्दों की तुलना में संस्कृत के तत्सम शब्दों के अधिकाधिक प्रयोग पर बल देते रहे हैं । इनमें डॉ॰ रघुवीर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो भारतीय शब्द-भंडार को संस्कृतनिष्ठ बनाने के प्रबल समर्थक थे । उनके द्वारा निर्मित शब्दों में से काफी शब्द आज धड़ल्ले से चल रहे हैं, जैसे - दूरदर्शन, दूरभाष, दूरमुद्रक, निषेचन आदि । इतना ही नहीं, इस संप्रदाय के लोगों ने उन विदेशी शब्दों को भी हटाकर, उनके स्थान पर नए शब्द बना डाले, जो हिंदी में इतने घुल-मिल गए थे मानों कि वे हिंदी के अपने शब्द रहे हों, जैसे दूरबीन (फारसी) शब्द के लिए दूरेक्ष, जमानतदार (अरबी) शब्द के लिए प्रतिभू, बल्ब (अंग्रेजी) शब्द के लिए विद्युत्कंद, ऑक्सीजन (अंतर्राष्ट्रीय शब्द) के लिए जारक आदि । इस संप्रदाय के आलोचकों का कहना है कि हमारी आज की संस्कृति मिश्रित संस्कृति है, अतः हमारे शब्दों को भी इसका प्रतिनिधित्व करना चाहिए । किंतु इस संप्रदाय ने मध्यकाल में अरबी-फारसी-तुर्की तथा आधुनिक

काल में अंग्रेजी के योगदान को नकारते हुए अपनी भाषा को संस्कृत के अनुरूप बनाना चाहा । वस्तुतः इस संप्रदाय द्वारा निर्मित शब्द सुगठित, उर्वर और सामान्य से अलग पारिभाषिक शब्द जैसे तो हैं किंतु कृत्रिम और कठिन हैं । यही कारण है कि सभी शब्दों को हिंदी पारिभाषिक शब्दावली में अपनाया नहीं जा सका है ।

अंतर्राष्ट्रीयतावादी मत के पक्षधरों में अधिकांश वैज्ञानिक, इंजीनियर-सरीखे व्यक्ति हैं । इनका कहना है कि जिन संकल्पनाओं और वस्तुओं के लिए हिंदी में शब्द नहीं हैं उनके लिए अंग्रेजी से शब्द ज्यों-के-त्यों ले लिए जाएँ । चूँकि अंग्रेजी का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है, अतः उन्हें ज्यों-का-त्यों अपनाकर हम शब्दावली के क्षेत्र में उन भाषाओं से जुड़ जाएँगे जो उनका प्रयोग करती हैं । हिंदी ने अंग्रेजी के काफी शब्दों को ग्रहण किया है, जैसे - मीटर, लीटर, रेडार, रेडियो, ऑक्सीजन, टन, हेक्टर, फोकस आदि । इनसे बहुत-से शब्दों का निर्माण उपसर्ग-प्रत्यय लगाकर किया गया है; जैसे - फोकसन, फोकसित आदि । कुछ शब्द भाषा की प्रकृति के अनुसार ध्वनि परिवर्तन करके निर्मित किए गए हैं; जैसे - तकनीक, अकादमी आदि । किंतु अंग्रेजी के सारे पारिभाषिक शब्दों को हिंदी पचा नहीं सकती । वस्तुतः कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा के सारे शब्दों को पचा नहीं सकती । दूसरे, गृहीत शब्द (लोन वर्ड्स) अर्धमृत होते हैं, क्योंकि उनमें शब्द बनाने की क्षमता या तो बहुत कम होती है या बिल्कुल नहीं होती । हमारे शब्दों को ऐसा होना चाहिए कि उनसे सुविधानुसार नए शब्द व्युत्पन्न किए जा सकें ।

लोकवादी संप्रदाय लोक प्रचलित शब्दों के आधार पर ही पारिभाषिक शब्द बनाने का पक्षधर रहा है । उदाहरणार्थ, यदि 'मैटर्निटी होम' को अपनाने के पक्ष में अंतर्राष्ट्रीयतावादी संप्रदाय वाले रहे हैं तो 'प्रसूति गृह' लेने के पक्ष में राष्ट्रीयतावादी, किंतु लोकवादी संप्रदाय के लोग लोक प्रचलित 'जच्चा घर' अपनाने के पक्ष में हैं । लोक प्रचलित शब्द प्रचलन की दृष्टि से निश्चित रूप से सरल तथा बोधगम्य हैं किंतु कठिनाई यह है कि सभी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण लोक प्रचलित शब्दों के आधार पर नहीं किया जा सकता है क्योंकि लोक प्रचलित शब्द इस दृष्टि से पर्याप्त नहीं हैं और विज्ञान की संकल्पनाओं से दूर हैं ।

वस्तुतः इनमें कोई भी संप्रदाय अकेले हिंदी के साथ न्याय नहीं कर सकता । अतः सभी भारतीय भाषाओं के लिए सर्वोत्तम मार्ग समन्वयवाद का ही हो सकता है । समन्वयवादी संप्रदाय के विद्वानों का कहना है कि - (1) अपने लोक प्रचलित शब्द-भंडार, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का सार्थक उपयोग करें, चाहे शब्दग्रहण करने की समस्या हो या नए शब्द बनाने की । (2) विदेशी, देशज तथा तद्भव शब्द, जो खूब चल पड़े हैं, ले लिए जाएँ । (3) गृहीत शब्द यदि ध्वनि की दृष्टि से हमारी ध्वनि व्यवस्था के अनुकूल नहीं हैं तो उन्हें अनुकूलित कर लेना चाहिए, जैसे तकनीक (टेकनीक के लिए) । (4) गृहीत शब्दों में उपसर्ग-प्रत्यय जोड़कर नए शब्द बना लिए जाएँ; जैसे - फोकसन, फोकसित आदि ।

(5) अनिवार्य होने पर वैज्ञानिक संकल्पनाओं के लिए संस्कृत शब्दों/धातुओं में उपसर्ग-प्रत्यय जोड़कर तथा समास व संधि विधि का प्रयोग कर नए पारिभाषिक शब्द बनाए जाएँ ।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने पारिभाषिक शब्दों के नव निर्माण के लिए जिन मार्गदर्शक सिद्धांतों को अपनाया, वस्तुतः वे समन्वयवादी दृष्टिकोण के अनुसार हैं । हिंदी ने पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता की पूर्ति के लिए काफी शब्द संस्कृत से, कुछ अरबी-फारसी से, कुछ अंग्रेजी से, कुछ लोक प्रचलित शब्दावली आदि से लिए हैं । किंतु, हिंदी में जब उपर्युक्त स्रोतों से पारिभाषिक शब्दावली के अभाव की पूर्ति नहीं हो सकी तो विभिन्न आधारों पर नए शब्दों की रचना के लिए नई दिशा की ओर उन्मुख होना पड़ा ।

हिंदी में संस्कृत शब्द दो रूपों में आए हैं : एक, तत्सम रूप में, जैसे - पर्ण, लवण, अंकुर, अणु, परमाणु, पुष्प, ज्यामिति, दुग्ध, आम्र आदि; दूसरे, तद्भव रूप में, जैसे - आम (आम्र), केला (कदली), दूध (दुग्ध), जामुन (जंबु) आदि। विदेशी भाषाओं से मध्य काल में पहले अरबी-फारसी के शब्द और बाद में पुर्तगाली और अंग्रेजी शासन काल में पुर्तगाली और अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द हिंदी में आकर इस तरह घुल-मिल गए हैं, मानो कि वे हिंदी के अपने ही शब्द रहे हों । अरबी-फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से हैं :

अरबी शब्द : मौसम, खरीफ, रबी, फसल आदि ।

फारसी शब्द : दूरबीन, गुलाब, बारानी, पैदावार आदि ।

तुर्की शब्द : खच्चर, अयाल, कैंची, चेचक आदि ।

पुर्तगाली शब्द : अनन्नास, संतरा, इस्पात, गमला आदि ।

अंग्रेजी शब्द : एकड़, हेक्टर, इंजन, बैटरी, टेलीविजन आदि ।

कुछ लोक प्रचलित क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों को भी पारिभाषिक शब्दावली के अंतर्गत ले लिया गया है; जैसे - पत्ता, पत्ती, रतुआ (रस्ट), हरदा (यलो रस्ट) आदि । इनके अतिरिक्त कुछ देशज शब्द भी लिए गए हैं; जैसे - पेड़, चूहा, टट्टू, पेठा, तेंदुआ आदि ।

अंतर्राष्ट्रीय शब्द :

अंग्रेजी के वे शब्द जिनका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है और जो कम से कम तीन यूरोपीय देशों में भी प्रयुक्त होते हों तथा समय-समय पर वैज्ञानिक संघों की अंतर्राष्ट्रीय परिषद् की कार्यवाहियों में प्रकाशित किए जाते हों, अंतर्राष्ट्रीय शब्द कहलाते हैं । ये पारिभाषिक शब्दावली के महत्वपूर्ण अंग होते हैं । इनके अंतर्गत - (क) तत्वों और

यौगिकों के नाम; जैसे - नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, आदि, (ख) माप-तौल और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ; जैसे - मीटर, कैलोरी, डाइन, ऐम्पियर आदि, (ग) वनस्पतिविज्ञान और प्राणिविज्ञान की द्विपद नामावली; जैसे - **मैंजीफेरा इंडिका** (आम/आम्र), **राना टिग्रीना** (मेंढक) आदि, (घ) व्यक्तियों के नाम पर निर्मित शब्द; जैसे - मेन्डलवाद (मेन्डल), डार्विनवाद (डार्विन) आदि, (च) आमतौर पर सारे संसार में व्यवहृत शब्द; जैसे - रेडियो, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, मानसून आदि, (छ) स्थिरांक जैसे - π, g आदि, एवं (ज) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न, सूत्र, लॉग आदि आते हैं ।

नए शब्दों का निर्माण :

विज्ञान की जिन संकल्पनाओं और वस्तुओं के लिए हिंदी में शब्द नहीं थे, उनके लिए संस्कृत धातुओं/शब्दों में उपसर्ग-प्रत्यय लगाकर तथा संधि व समास विधि का प्रयोग करके शब्द बनाए गए हैं और बनाए भी जा रहे हैं । शब्द निर्माण में प्राय: संस्कृत के उपसर्गों, प्रत्ययों, संधियों और समासों का इस्तेमाल किया गया है । इस कार्य में भाषाविदों की सहायता ली गई है क्योंकि वे उपसर्गों-प्रत्ययों से शब्दों के संकुचित क्षेत्र में विस्तार और विविधता ला देते हैं । जिस प्रकार वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीविद् नई संकल्पनाओं और वस्तुओं को जन्म देते हैं, इसी प्रकार भाषाविद् उनके पर्याय निर्धारित करते हैं । उपसर्गों, प्रत्ययों, संधियों और समासों द्वारा निर्मित शब्दों की बानगी निम्नलिखित प्रकार से दी जा रही है :

(अ) **उपसर्गों द्वारा निर्मित शब्द :**

प्रजाति, परा-उत्परिवर्तन, अपक्षय, संवर्धन, अनुक्रिया, अवशोषण, निष्युष्पन, निर्वात, दुर्गंध, विकिरण, आविष, निरोध, अधिशोषण, उत्प्रेरक, अभिकलन, परिकलन, उपग्रह, प्रतिलघुगणक आदि ।

(ब) **प्रत्ययों द्वारा निर्मित शब्द :**

सारणीयन, पर्णक, अम्लीय, अम्लता, युग्मित, अभिकलित्र, गुरुत्व, कक्षस्थ, यांत्रिक, विज्ञानी, पल्लवन, विषैला, उच्चतर, अनुकूलतम, उर्मिल आदि ।

(स) **संधियों द्वारा निर्मित शब्द**

शब्द की शब्द के साथ, उपसर्ग की शब्द के साथ और शब्द की प्रत्यय के साथ संधि के परिणामस्वरूप निर्मित शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :

शब्द + शब्द

गुरुत्व + आकर्षण = गुरुत्वाकर्षण
माप + अंक = मापांक
शंकु + आकार = शंक्वाकार
फल + उद्यान = फलोद्यान, आदि ।

उपसर्ग + शब्द

उत् + प्रेरक = उत्प्रेरक
परि + कलन = परिकलन
उप + अस्थि = उपास्थि
निः + वात = निर्वात
वि + किरण = विकिरण, आदि ।

शब्द + प्रत्यय

जीव + इक = जैविक
यंत्र + इक = यांत्रिक
उद्योग + इक = औद्योगिक
वाष्प + इत्र = वाष्पित्र
जंतु + क = जंतुक, आदि ।

समास द्वारा शब्द निर्माण :

समास विधि में शब्दों के बीच योजक चिह्न(-) लगाकर अथवा उन्हें मिलाकर लिखा जाता है; जैसे - गृहविज्ञान, कोशिका-विभाजन, जनन-कोशिका, भूकंपलेखी आदि । संस्कृतनिष्ठ शब्दों में प्रायः समास विधि का प्रयोग हुआ है । विदेशी भाषाओं (अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि) के शब्दों ने भी हिंदी व संस्कृत के शब्दों के साथ मिलकर शब्द-निर्माण के क्षेत्र में पर्याप्त योगदान किया है; यथा -

संस्कृत + हिंदी = पवन चक्की
अंग्रेजी + हिंदी = पीएच. मान
हिंदी + अंग्रेजी = बंधक बैंक
संस्कृत + अंग्रेजी = अंतर्दहन इंजन
अंग्रेजी + संस्कृत = जीन उत्परिवर्तन
फारसी + संस्कृत = बारानी खेती
फारसी + संस्कृत = गुलाब जल
संस्कृत + फारसी = कृषि पैदावार
अरबी + संस्कृत = मौसम विज्ञान आदि ।

अखिल भारतीय शब्दावली :

ऐसे शब्द जो देश की सभी या अधिकांश भाषाओं में प्रचलित हैं अथवा उन्हें स्वीकार्य हो सकते हैं अखिल भारतीय शब्द कहलाते हैं । ऐसे शब्दों की पहचान करने के लिए आयोग की एक परियोजना है, जिसके लिए अखिल भारतीय संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है । इस योजना के तहत विभिन्न विषयों के लगभग 20,000 आधारभूत अखिल भारतीय शब्दों की पहचान की जा चुकी है । विभिन्न संगोष्ठियों के दौरान यह देखा गया है आयोग द्वारा निर्मित अधिकांश शब्दों का स्वरूप प्रायः अखिल भारतीय शब्दावली के ही स्तर का है, तथापि विभिन्न राज्य सरकारों की एजेन्सियों द्वारा अपनी-अपनी भाषाओं में निर्मित अनेक शब्दों को भी अखिल भारतीय शब्दों के रूप में स्वीकार किया गया है । इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

	आयोग द्वारा अनुमोदित पर्याय :	**अन्य भाषायी अभिकरणों द्वारा अनुमोदित पर्याय :**
acceleration	त्वरण	वेगोत्कर्ष, त्वरण
average	औसत, माध्य	सरासरी, औसत, माध्य
balance	संतुलन	साम्य, संतुलन
pressure	दाब	संमर्द, दाब

उपर्युक्त सूची के तीसरे स्तंभ(कॉलम) में सभी भारतीय भाषाओं के विषय विशेषज्ञों तथा भाषाविदों द्वारा अनुमोदित अखिल भारतीय शब्द दिए गए हैं । स्पष्टतः उन शब्दों को हिंदी में अपनाने से पहले विज्ञान की विभिन्न संबद्ध शाखाओं में उनके पर्यायों पर विचार-विमर्श करना बहुत आवश्यक है क्योंकि तकनीकी शब्द निर्माण का मूलभूत सिद्धांत 'एक संकल्पना के लिए एक शब्द' है ।

आयोग ने शब्द-निर्माण के लिए बहुत व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है अर्थात् देश की जनता की भावात्मक एकता, एकतानता और भाषायी एकरूपता को सदैव ध्यान में रखा है । एक आकलन के अनुसार स्नातक स्तर पर आयोग द्वारा निर्मित विज्ञान की शब्दावली में लगभग 70 प्रतिशत शब्द संस्कृतनिष्ठ, 20 प्रतिशत अंतर्राष्ट्रीय और 10 प्रतिशत शब्द देशी भाषाओं व बोलियों के हैं । स्नातकोत्तर स्तर की शब्दावली में अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का प्रतिशत कुछ अधिक भी हो सकता है । शब्द-निर्माण की प्रक्रिया में वैज्ञानिकों और भाषाविदों दोनों की भूमिका उल्लेखनीय है ।

अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद की सामान्य समस्याएँ

- डॉ॰ नगेन्द्र

कथ्य में तथ्य तथा विचार की प्रधानता और कथन-प्रक्रिया में भाषा-शैली की ऋजुता के कारण ज्ञान के साहित्य का अनुवाद ललित साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा अधिक सरल होता है । ज्ञान के साहित्य अथवा सामान्य वाङ्मय का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करने पर अनेक प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं । उनका संक्षेप में उल्लेख और समाधान प्रस्तुत करना इस लेख का उद्देश्य है ।

अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करने के लिए चार बातों की जरूरत होती है : 1. मूल या स्रोत भाषा अंग्रेजी पर अधिकार । 2. अनुवाद की भाषा या लक्ष्य भाषा हिंदी पर अधिकार । 3. विषय का सम्यक् ज्ञान और 4. अभ्यास ! ये अनुवादक की अर्हताएँ हैं । उसके साधन उपकरण हैं - अंग्रेजी शब्द-कोश -वैब्सटर आदि, हिंदी शब्द-कोश, पारिभाषिक शब्द-कोश, अंग्रेजी-हिंदी के परिभाषा-कोश, विश्वकोश आदि ।

उपर्युक्त अर्हताओं से संपन्न व्यक्ति, जब उपलब्ध साधन-उपकरणों से संपन्न होकर अनुवाद-कार्य में संलग्न होता है तो उसके सामने समस्या आती है कि कहाँ शुरू किया जाए ? अनुवाद-कार्य में प्रवृत्त होने की सामान्यतः तीन प्रमुख विधियाँ हैं : विषय क्रम, अनुच्छेद क्रम और वाक्य क्रम ।

विषय क्रम : इस पद्धति को अपनाने वाला अनुवादक मूल निबंध अथवा उसके स्वतःपूर्ण अंश का या मूल ग्रंथ के एक अध्याय अथवा उसके एक स्वतःपूर्ण अंश का बार-बार अध्ययन-मनन करता है और प्रतिपाद्य विषय को पूरी तरह हृदयस्थ करने के बाद उसे अपनी भाषा-शैली में ढालकर प्रस्तुत कर देता है । दूसरे के विचारों को अपनी भाषा-शैली में अभिव्यक्त करने के कारण उसकी यह प्रस्तुति सहज स्वाभाविक और अनुवाद की गंध से मुक्त होती है । अतः इसकी यह विशेषता होती है कि अनुवाद 'अनुवाद-गंधी' नहीं होता । फिर भी यह प्रक्रिया निरापद नहीं है । इसमें अनेक प्रकार के दोषों की संभावना रहती है - मूल क्रम के विचार क्रम में व्यतिक्रम हो सकता है, कथन-भंगिमा के कुछ-एक अंग छूट सकते हैं, अपनी भाषा-शैली में ढालने से अनुवादक की ओर से कुछ ऐसे तथ्यों का समावेश हो सकता है जो मूल पाठ में नहीं है । इस प्रकार यहाँ मल्लिनाथ की प्रसिद्ध प्रतिज्ञा - 'नामूलं-लिख्यते किंचित्.....' के भंग हो जाने की आशंका बराबर बनी रहती है ।

अनुच्छेद क्रम : अनुवाद प्रक्रिया प्रायः इसी पद्धति का संक्षिप्त रूप है । इसमें अनुवादक एक पूरे निबंध या अध्याय को समग्र रूप में ग्रहण नहीं करता, वरन् केवल उसके एक अनुच्छेद (पैराग्राफ़) पर ध्यान केंद्रित कर अपने कार्य में प्रवृत्त होता है । यहाँ भी अनुवादक को पूरे अनुच्छेद के प्रतिपाद्य विषय का बार-बार अध्ययन-मनन कर उसे हृदयस्थ कर लेना होता है । इसके बाद ही वह अनुच्छेद की संपूर्ण विषय-वस्तु को अपनी भाषा में प्रस्तुत करता हे । अनुवाद्य विषय का आयाम छोटा होने के कारण इस प्रक्रिया में अनुवादक की स्मृति पर अपेक्षाकृत कम दबाव पड़ता है और इसमें पहली पद्धति के दोषों की संभावना प्रायः कम हो जाती है । अनुवादक अनुच्छेद के केंद्रीय विचार को ध्यान में रखकर उससे संबद्ध युक्ति, प्रमाण, दृष्टांत आदि का अधिक सरलता से आयोजन कर सकता है । फिर भी कुछ न कुछ व्यतिक्रम हो जाने की आशंका यहाँ भी रहती है क्योंकि यहाँ भी अनुवादक अंततः अपनी स्मृति या स्मरण-शक्ति पर ही निर्भर रहता है । अतः थोड़ा-बहुत क्रम-भंग हो सकता है, बलाबल का भेद हो सकता है, विशेष शब्दों की अर्थच्छाया में अंतर पड़ सकता है, मूल का कुछ अंश छूट सकता है या अनुवादक के लिए अपनी रचना-शैली का प्रयोग करने के कारण कुछ शब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य जोड़ने की बाध्यता भी हो सकती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत पद्धति में पहली पद्धति के दोष कम हो जाते हैं और अनुवाद- भाषा के स्वाभाविक तथा सुख-सरल प्रयोगजन्य गुण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं ।

वाक्य क्रम : वाक्यक्रम से अनुवाद करने की प्रक्रिया उपर्युक्त दोषों से मुक्त रहती है । यह अनुवाद की मूलानुवर्ती प्रक्रिया है । इसमें प्रबुद्ध अनुवादक उपर्युक्त दोनों पद्धतियों के दोषों का निराकरण कर सकता है। मूल पाठ के अनुसार वाक्यक्रम का अनुसरण करने से क्रम-भंग नहीं हो सकता । विशेष शब्दों की अर्थच्छाया को भी सावधानी से व्यंजित किया जा सकता है और अनुवादक को अपनी ओर से घटाने-बढ़ाने का भी कोई अवकाश नहीं मिलता । किंतु मूल के साथ निरंतर संसर्ग होने के कारण यह प्रक्रिया अनुवाद की गंध से सर्वथा मुक्त नहीं होती । फिर भी कुल मिलाकर शुद्ध और सटीक अनुवाद के लिए यही सबसे निरापद है ।

शब्द क्रम : कुछ अबोध व्यक्ति शब्द क्रम से भी अनुवाद करने का प्रयत्न करते रहे हैं और अब भी करते हैं । लेकिन इस प्रकार का अनुवाद अर्थात् शब्दानुवाद सर्वथा अशुद्ध और भ्रामक होता है । इसका कारण यही है कि भाषा की लघुतम इकाई वाक्य है, शब्द नहीं । प्रत्येक शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर ही अर्थ ग्रहण करता है जो संदर्भ से प्राप्त होता है । इसलिए शब्दानुवाद पद का प्रयोग तिरस्कार के अर्थ में किया जाता है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जब हिंदी का ज्ञान-विज्ञान अथवा व्यवहार-व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग होने लगा तो अपूर्ण ज्ञान तथा अनभ्यास के कारण शब्दानुवादजन्य तरह-तरह के दोष सामने आने लगे । हिंदी के विरोधियों ने इनका प्रचार बड़ी ही गर्मजोशी से किया ।

उपयुक्त पर्याय का चयन : अनुवादक जब अपने कार्य में प्रवृत्त होता है तो उसके सामने सबसे पहले उपयुक्त पर्याय के चयन की समस्या आती है । शब्दों को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : एक, सामान्य शब्द और दूसरे पारिभाषिक शब्द । अंग्रेजी के सामान्य शब्दों के प्रामाणिक पर्याय फ़ा॰ कामिल बुल्के तथा डॉ॰ हरदेव बाहरी आदि के द्विभाषिक कोशों में आसानी से मिल जाते हैं । अनुवादक के सामने प्रश्न आता है कि उनमें से किसका चयन करे । उदाहरण के लिए, अंग्रेजी का एक सीधा सा शब्द है फाइन (Fine) । इसके अनेक अर्थ हैं : सुंदर, अच्छा, उत्तम सुसंस्कृत, सूक्ष्म, बारीक आदि । व्यक्ति का विशेषण होने पर फाइन के लिए उपयुक्त पर्याय होगा अच्छा या सुसंस्कृत । ही इज़ ए फ़ाइन मैन - वह अच्छा आदमी है या सुसंस्कृत पुरुष है । भाषण आदि के संदर्भ में सही पर्याय होगा सुंदर : It was a fine speech । कपड़े के लिए प्रयुक्त होने पर 'बारीक' पर्याय ही ग्राह्य हो सकता है । ये तीनों पर्याय अर्थ की दृष्टि से प्रायः संबद्ध हैं । किंतु 'फाइन' का एक अर्थ होता है जुर्माना । भाषा-वैज्ञानिक जानता है कि इस अर्थ में 'फाइन' शब्द एक अन्य धातु से उत्पन्न हुआ है । किंतु सामान्य प्रयोक्ता न इस तथ्य को जानता है और न उसे इसकी आवश्यकता है । ही हैज़ टु पे फ़ाइन फ़ॉर कमिंग लेट (He has to pay fine for coming late) - देर से आने की वजह से उसे जुर्माना देना पड़ेगा ।

अपेक्षाकृत कठिन शब्दों के संदर्भ में अनुवादक को सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना पड़ता है । अंग्रेजी का एक शब्द है 'एक्सप्लॉयट' (exploit) । इसका प्रचलित अर्थ है शोषण (करना) । दी रिच हैव ऑलवेज़ एक्सप्लॉयटेड दी पुअर - अमीर लोगों ने सदा गरीबों का शोषण किया हे । लेकिन 'एक्सप्लॉयट' का एक अन्य अच्छे अर्थ में भी प्रयोग होता है । वी शुड एक्सप्लॉयट ऑल ऑवर रिसोर्सेज़ - हमें अपने सभी संसाधनों का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिए । वास्तव में यह दूसरा अर्थ पहले अर्थ का ही विस्तार या लाक्षणिक प्रयोग है । शोषण का मूल अर्थ है पूरी तरह निचोड़कर सुखा देना । पहले संदर्भ में इसका बुरे अर्थ में प्रयोग किया गया है और दूसरे में अच्छे अर्थ में । किंतु दोनों में पूरी तरह या निःशेष रूप से कार्य करने की अवधारणा निहित है । पारिभाषिक शब्द सूक्ष्म छायाभेद के कारण अपेक्षाकृत कठिन होते हैं । आज से लगभग 40 वर्ष पहले अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय निश्चित करने का कोई विशेष प्रयास नहीं हुआ । इसलिए एक ही शब्द के विभिन्न पर्यायों का मुक्त प्रयोग हो रहा था । आधुनिक युग में राज्यतंत्र का अत्यंत प्रसिद्ध शब्द रहा है 'डेमोक्रेसी' । स्वतंत्रता से पूर्व इसके लिए हिंदी में एक साथ अनेक शब्दों का प्रयोग हो रहा था : जनतंत्र, प्रजातंत्र तथा लोकतंत्र । यहाँ तक तो कोई विशेष बाधा नहीं थी । लेकिन कभी-कभी दोनों की मूलवर्ती अवधारणा की उपेक्षा कर डेमोक्रेसी और रिपब्लिक के लिए समानार्थक हिंदी शब्दों का प्रयोग कर दिया जाता था जो निश्चय ही चिंत्य था । केंद्र द्वारा स्थापित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने डेमोक्रेसी के लिए लोकतंत्र पर्याय स्थिर कर दिया है, फिर भी 'जनतंत्र' तथा 'प्रजांतत्र' शब्द भी बराबर चल रहे हैं और इसमें कोई बड़ी आपत्ति भी नहीं । लेकिन 'रिपब्लिक' के लिए 'गणतंत्र' पर्याय प्रयोग ही मान्य है ।

इसी प्रकार का एक शब्द है 'स्टेट' जो सामान्य भी है, पारिभाषिक भी । सामान्य अर्थ में, यह संज्ञा रूप में स्थिति का वाचक है और क्रिया रूप में इसका अर्थ होता है 'कहना', वर्णन करना या बयान करना । पारिभाषिक रूप में स्टेट का अर्थ है राज्य, शासन, सरकार । स्वतंत्रतापूर्वक भारत प्रांतों में विभक्त था और 1947 के बाद भी कई वर्षों तक यह व्यवस्था चलती रही, किंतु भाषा के आधार पर जब देश को विभिन्न इकाइयों में बाँटा गया तो (प्रांत) के स्थान पर स्टेट शब्द का प्रयोग होने लगा जिसका पर्याय हुआ 'राज्य' । सामान्यत: अब राज्य का ही प्रयोग हो रहा है, लेकिन संदर्भ के अनुसार कभी-कभी शासन या सरकार शब्द के प्रयोग में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं होती ।

उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि पर्याय-निर्धारण का प्रमुख और मौलिक आधार है संदर्भ । संदर्भ के द्वारा ही शुद्ध और उपयुक्त पर्याय का निर्णय संभव होता है । पर्याय-निर्धारण का दूसरा आधार है अनुवाद-भाषा की प्रकृति और प्रायोगिक स्तर ।

हिंदी की अपनी प्रकृति है । यद्यपि आधुनिक हिंदी की गद्य-शैली पर अंग्रेजी का स्पष्ट प्रभाव रहा है, फिर भी उसके वाक्य-विन्यास, शब्द-योजना, वर्ण-मैत्री आदि का पृथक् वैशिष्ट्य है । संस्कृत और अंग्रेजी से भिन्न इसका अपना मुहावरा है जो उसके स्वरूप को रेखांकित करता है । इसलिए अंग्रेज़ी के वाक्यांशों, मुहावरों और पर्यायों को भी उसकी इसी प्रकृति के अनुरूप ढालना आवश्यक होता है । प्रायोगिक स्तर से अभिप्राय है भाषिक संरचना या शैली का स्तर । यदि विषय के अनुरूप शैली शास्त्रीय है तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग ही वांछित होता है । किंतु यदि उसका विषय सामान्य जीवन-व्यवहार से संबद्ध है तो आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त है । उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के लॉ (Law), जज (Judge) तथा कोर्ट (Court) शब्दों के हिंदी में विधि, कानून, जज, न्यायाधीश, अदालत, न्यायालय आदि पर्यायों का प्रयोग मुक्त रूप से होता है । इनमें से कौन-सा पर्याय अधिक उपयुक्त है, इसका निर्णय भाषिक रचना के स्तर के आधार पर ही करना होगा । सामान्य व्यवहार तथा समाचार-पत्र आदि में क़ानून, जज, अदालत शब्दों का प्रयोग अधिक संगत है, किंतु विधि-शास्त्र आदि गंभीर विषयों के अनुवादों में विधि, न्यायाधीश, न्यायालय आदि पर्याय ही ग्राह्य हो सकते हैं ।

विशेषण-क्रियाविशेषण शब्दों के अनुवाद

विशेषण प्राय: दो प्रकार के होते हैं - भावात्मक और अभावात्मक । अंग्रेजी में अभावात्मक विशेषणों का निर्माण सामान्यत: 'अन' (un) 'इन' (in) उपसर्गों के योग से होता है । हिंदी में भी संस्कृत के प्रभाव से 'अ' और 'अन्' उपसर्ग यही कार्य सिद्ध करते हैं । 'फेअर' (fair) उचित, अनफ़ेअर (unfair) अनुचित, कंप्लीट (complete) पूर्ण, इनकंप्लीट (uncomplete) अपूर्ण । कुछ अंग्रेजी प्रयोगों के शाब्दिक हिंदी अनुवाद भी चल पड़े हैं, जैसे नॉट वेरी फार (not very far) अनति दूर, या नॉट वेरी डिफरेन्ट (not very different) अनतिमिल या नातिमिल । किंतु इस प्रकार के प्रयोग करना सामान्यत: उचित

नहीं है । इनकी संगति केवल अत्यधिक समास-शैली के साथ ही बैठ सकती है । अंग्रेजी के अनेक शब्दों का प्रयोग अच्छे-बुरे दोनों अर्थों में होता है । उदाहरण के लिए, फैन्टास्टिक (fantastic) शब्द लिया जा सकता हे । अगर इस शब्द का प्रयोग किसी की प्रशंसा में किया जाए तो सही पर्याय होगा अद्‌भुत और यदि तिरस्कार के लिए किया जाए तो सही पर्याय होगा अनर्गल, बेहूदा, बेतुका आदि। इसका निर्णय संदर्भ के अनुसार ही हो सकता है ।

अंग्रेजी के कुछ क्रिया-विशेषणों का प्रयोग प्रायः असाधारण लाक्षणिक अर्थ में किया जा सकता है : 'टेरिबली अपसेट' (terribly upset) का अनुवाद 'बेहद परेशान', 'अत्यधिक व्यग्र' हो सकता हे - 'भयानक रूप से परेशान' नहीं । जबकि विशेषण रूप में 'टेरिबल' का पर्याय 'भयानक' सर्वथा संगत होगा । जैसे, 'ही इज ए टेरिबल फैलो' (He is a terrible fellow) 'वह भयानक आदमी है ।'

अंग्रेजी के कुछ-विशेषणों के शाब्दिक अनुवाद व्याकरणिक दृष्टि से शुद्‌ध होने पर भी पूर्व-प्रचलित अर्थ से भिन्न या विपरीत अर्थ के वाचक हो जाते हैं । 'रेलेवेन्ट' (relevent) इसी प्रकार का शब्द है । इसका शाब्दिक अनुवाद 'प्रासंगिक' हिंदी में प्रयुक्त होने लगा है । व्याकरण की दृष्टि से इसका आधिकारिक के विपरीत प्रासंगिक अर्थ ही मान्य रहा है - आधिकारिक कथावस्तु, प्रासंगिक कथावस्तु : यहाँ प्रासंगिक अर्थ है प्रसंगगत । अतः 'रेलेवेन्ट' का अधिक उपयुक्त अनुवाद 'सार्थक' ही हो सकता है लेकिन अब 'प्रासंगिक' ही प्रचलित हो गया है । इसलिए उसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि व्याकरण की अपेक्षा लोक-प्रयोग की शक्ति अधिक है ।

क्रिया-पद का अनुवाद

क्रिया-पद वाक्य का मूल आधार होता है । अंग्रेजी के अनेक क्रिया-पद ऐसे हैं जिनका यथातथ्य अनुवाद करना हिंदी में कठिन हो जाता है । अंग्रेजी के दो शब्द प्रायः समानार्थक हैं : टेल (tell) और से (say) किंतु उनकी अर्थच्छाया में सूक्ष्म अंतर है । टेल (tell) में व्यक्तिगत रूप से कहने की व्यंजना है और से (say) में सामान्य रूपसे कहने की । ही टोल्ड मी (He told me) का सही अनुवाद है 'उसने मुझे बताया', जबकि ही सेड टु मी (He said to me) का अनुवाद है - 'उसने मुझसे कहा' । अंग्रेजी के कई क्रिया-पद ऐसे हैं जिनके लिए किसी निश्चित हिंदी पर्याय का प्रयोग प्रायः नहीं हो सकता - जेसे ऐसट (assert) और रिमार्क (remark) । ऐसर्ट (assert) के लिए कहीं 'ज़ोर देकर कहना' और कहीं 'आग्रह-पूर्वक कहना' पदावली का प्रयोग क्रिया जाता है । रिमार्क (remark) के लिए शब्दावली आयोग ने अभ्युक्ति पर्याय का निर्माण किया, लेकिन क्रिया-पद के रूप में संदर्भ के अनुसार कहीं प्रतिक्रिया व्यक्त करना और कहीं 'प्रत्युत्तर देना' जैसी शब्दावली का प्रयोग करना आवश्यक होता है ।

कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य

कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के अनुवाद में अनुवादक को काफी सावधानी बरतनी होती है । कर्मवाच्य का जिस तरह अंग्रेजी और संस्कृत में मुक्त प्रयोग होता है, उस तरह हिंदी में नहीं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

1. आई हैव बीन अप्सेट (I have been upset) का शाब्दिक अनुवाद है 'मुझे परेशान कर दिया गया है, लेकिन सही अनुवाद है - मैं परेशान हो गया हूँ ।'
2. दी ट्रेन हैज बीन डिलेड (The train has been delayed) का सही अनुवाद है 'रेलगाड़ी देर से आ रही है' न कि 'रेलगाड़ी देर कर दी गई है ।'
3. आई एम ऑबलाइज्ड (I am obliged) 'मैं आभारी हूँ', न कि 'मैं आभारी कर दिया गया हूँ ।'

हिंदी की इसी प्रकृति की उपेक्षा करने के कारण आकाशवाणी और दूरदर्शन से हैव बीन किल्ड (Have been killed) का बराबर गलत अनुवाद होता रहता है । टेन पर्सन्स वेअर किल्ड इन दी रायट्स (Ten persons were killed in the riots) का अनुवाद किया जाता है - 'दंगों में दस व्यक्ति मारे गए' यह तो ठीक है । लेकिन टेन पर्सन्स वेअर किल्ड इन दी ट्रेन एक्सीडेंट (Ten persons were killed in the train accident) का भी जब यही अनुवाद किया जाता है कि रेल दुर्घटना में दस व्यक्ति मारे गए, तो यह हिंदी की प्रकृति के प्रतिकूल होने से गलत है । सकर्मक क्रिया में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कर्ता का होना अनिवार्य है : दंगों में तो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कर्ता की स्थिति अनिवार्य है, किंतु दुर्घटना घटित होती है चाहे उसके मूल में किसी कर्ता का हाथ ही क्यों न हो । इसलिए उसके संदर्भ में अकर्मक क्रिया 'करना' का प्रयोग ही उचित है ।

प्रत्यक्ष और परोक्ष कथन

अंग्रेजी में प्रत्यक्ष और परोक्ष कथन के विषय में निश्चित नियम है । प्रत्यक्ष कथन का परोक्ष कथन में परिवर्तन करने पर प्रधान वाक्य के कर्ता या कर्म के पुरुष रूप और क्रिया पद के रूप के अनुसार उपवाक्य के कर्ता का पुरुष रूप और क्रिया पद का कालिक रूप परिवर्तित हो जाता है । उदाहरण के लिए - प्रत्यक्ष कथन ही सेड टु भी, 'यू आर लेट' (He said to me, "you are late") परोक्ष कथन में इस वाक्य के रूप हो जाएगा : ही टोल्ड मी दैट आइ वाज़ लेट (He told me that I was late) इसका यथावत् हिंदी अनुवाद होगा : 'उसने मुझे बताया कि मैं देर से आया था ।' इस वाक्य को पढ़कर हिंदी के पाठक को यह भ्रांति हो सकती है कि वक्ता पहले किसी समय देर से आया था, जबकि देर से तो संबोधित व्यक्ति आया है । इसलिए मूल अंग्रेजी वाक्य का सही अनुवाद होना चाहिए : 'उसने मुझे कहा कि तुम देर से आए हो ।' अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार उपवाक्य का मध्यम पुरुष यू (तुम) प्रधान उपवाक्य के कर्म के अनुसार प्रथम पुरुष में और वर्तमानकालिक क्रियापद

भूतकालिक (था) में परिवर्तित हो गया है । हिंदी में इस प्रकार का पुरुष या काल का परिवर्तन सर्वथा भ्रामक हो जाएगा ।

कहने का अभिप्राय यह है कि हिंदी मे प्रत्यक्ष कथन और परोक्ष कथन की विभाजक रेखा सर्वथा निश्चित नहीं है । प्रायः 'कि' जोड़ देने से अर्थ सिद्ध हो जाता है । फिर भी कभी-कभी इस प्रकार के अनुवाद में कुछ कठिनाई सामने आ जाती है । जैसे, ही टोल्ड मी दैट यू आर लेट इन द मीटिंग (He told me that you are late in the meeting) - इस वाक्य का अनुवाद हिंदी में भी यही होगा - उसने मुझसे कहा कि आप बैठक में देर से आए थे । यहाँ मध्यम पुरुष यू (आप) संबोधित व्यक्ति न होकर एक तीसरा व्यक्ति है जिससे संबोधित व्यक्ति बात कर रहा हे । ऐसे प्रसंगों में अनुवादक को संदर्भ के अनुसार विवेक से काम लेना चाहिए ।

मिश्रवाक्य - मिश्रवाक्य के अनुवाद की समस्या थोड़ी जटिल है । अंग्रेजी में क्रिया-पद का प्रयोग कर्म से पहले हो जाता है । इसलिए कर्म से संबद्ध विशेषण, क्रिया-विशेषण आदि उपवाक्यों की दोहरी - कभी-कभी तीसरी शृंखला आसानी से प्रधान वाक्य के साथ जुड़ जाती है । 'दिस मैनस्क्रिप्ट वाज़ डिस्कवर्ड बाई प्रो॰ कुप्पूस्वामी हू वॉज़ ए वैल नोन स्कॉलर ऑफ संस्कृत इन दि तन्जौर लाइब्रेरी ह्विच हैड द लार्जेस्ट कलेक्शन ऑफ संस्कृत वर्क्स ऐट दैट टाइम' ।

इस वाक्य का यथावत् अनुवाद होगा : इस पांडुलिपि की प्रो॰ कुप्पूस्वामी ने, जो संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान थे, तन्जौर लाइब्रेरी में, जहाँ उस समय संस्कृत ग्रंथों का सबसे बड़ा भंडार था, खोज की थी ।

ज़ाहिर है कि यह वाक्य न केवल उलझा हुआ है बल्कि हिंदी की प्रकृति के प्रतिकूल भी है क्योंकि हिंदी में क्रियापद के पहले कर्म का प्रयोग हो जाने से इस प्रकार की शृंखला नहीं बनती । उपर्युक्त वाक्य का स्वच्छ अनुवाद होगा : इस पांडुलिपि की खोज प्रो॰ कुप्पूस्वामी ने तन्जौर लाइब्रेरी में की थी । प्रो॰ कुप्पूस्वामी संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान थे और तन्जौर लाइब्रेरी में उस समय संस्कृत ग्रंथों का सबसे बड़ा भंडार था ।

मुहावरा और कहावत

मुहावरा और कहावत प्रत्येक भाषा के अपने अभिन्न अंग होते हैं, जिनका अनुवाद प्रायः नहीं हो सकता । उर्दू भाषा के 'साहबे -कलाम' इस तथ्य पर अत्यधिक बल देते हुए मुहावरे के अनुवाद या रूपांतरण के प्रयास को सर्वथा अनर्गल मानते हैं । उर्दू के प्रसिद्ध शायर फ़िराक गोरखपुरी ने मैथिलीशरण गुप्त के 'कटि टूट गई' जैसे प्रयोगों का उपहास करते हुए लिखा है कि सही मुहावरा 'कमर टूटना है ' । 'कमर' का कोई पर्याय इसमें नहीं बैठक सकता । इसमें संदेह नहीं कि यह तर्क काफ़ी हद तक संगत है, फिर भी मुहावरों के अनुवाद जाने-अनजाने होते रहते हैं । पंत जैसे भाषा-मर्मज्ञ कवि ने और छायावाद के अन्य कवियों ने भी अंग्रेजी के अनेक मुहावरों के अत्यंत सार्थक अनुवाद किए

है, जो हिंदी में प्रचलित हो गए हैं । 'कर्षक का उद्धार पुण्य इच्छा है केवल' : (पंत) यहाँ 'पुण्य इच्छा' पायस विश (Pious wish) का ही शाब्दिक अनुवाद है जिसकी संगति भाषा की प्रकृति के साथ सहज ही बैठ जाती है । गोल्डन एज (Golden age) स्वर्ण युग; ब्राइट फ्यूचर (bright future) उज्ज्वल भविष्य, गोल्डन पास्ट (Golden past) स्वर्णिम अतीत - आदि इसी प्रकार के मुहावरे हैं जिनके शब्दानुवाद हिंदी के अंग बन गए हैं । किंतु ऐसे उदाहरण प्राय: कम ही मिलते हैं और समर्थ लेखकों के आर्ष प्रयोग होने के कारण ही प्रचलित हो गए हैं । नियमत: मुहावरे का शब्दानुवाद न देकर लक्ष्यभाषा में प्रचलित समानांतर मुहावरा ही देना चाहिए । अंग्रेजी का एक सामान्य प्रयोग है - 'अपसेट' (upset) जो लक्षणा के आश्रित होने के कारण अनेकार्थक मुहावरों का रूप धारण कर लेता है । 'आई एम अपसेट' (I am upset) का अनुवाद होगा - मैं परेशान हूँ और 'माई प्रोग्राम इज़ अप्सेट (my programme is upset) का अनुवाद होगा 'मेरा कार्यक्रम अस्तव्यस्त या गड़बड़ हो गया है' । टु फील ऐट होम (to feel at home) , टु फील आउट ऑफ सॉर्ट्स (to feel out to sorts) , टु सेल इन ट्रबल्ड वाटर्स (to sail in troubled waters) जैसे अंग्रेजी मुहावरों के वाच्यार्थ ही देना अधिक संगत होता है । 'टु फील होम' का सीधा अनुवाद होगा सभी प्रकार की सुविधा होना, सहजता का अनुभव करना या किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव न करना । इसी प्रकार 'टू फील आउट ऑफ सार्ट्स' का सीधा अनुवाद है 'तबियत अच्छी न होना' या 'तबियत नासाज़ होना' और 'टु सेल इन ट्रबल्ड वाटर्स' का भाषांतर होगा 'विषम परिस्थितियों में कार्य करना' । अंग्रेज़ी के कई-एक मुहावरों के समानांतर मुहावरे हिंदी में भी प्रचलित हैं । जैसे 'टु पुट दि कार्ट बिफोर द हॉर्स' (to put the cart before the horse) के वजन का आम बोलचाल में मुहावरा है 'ब्याह पीछे सगाई' । लेकिन इस प्रकार के मुहावरे की संगति शिष्ट भाषा के साथ नहीं बैठ सकती, जबकि अंग्रेजी के मुहावरे के विषय में इस प्रकार की कोई बाधा नहीं है ।

कहावत के अनुवाद के विषय में भी यही नियम है । उसका शाब्दिक अनुवाद प्राय: ठीक नहीं रहता । कहावत का भी समानांतर हिंदी रूप ही दिया जाता सकता है । लेकिन यहाँ भी भाषिक स्तर का ध्यान रखना आवश्यक है । उदाहरण के लिए, 'ए बैड वर्क्समैन क्वैरल्स विद् हिज़ टूल्स' (A bad worksman quarrels with his tools) की समानांतर कहावत है 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा' । लेकिन यह प्रयोग भी शिष्ट भाषा के उपयुक्त नहीं है । अत: उक्त कहावत का अर्थ देना ही संगत होगा 'अनाड़ी आदमी अपना दोष दूसरे के मत्थे मढ़ देता है ।' यहाँ हिंदी की समानार्थक कहावत की बजाय शब्दानुवाद दे देना भी बुरा नहीं होगा - अनाड़ी कारीगर अपने औज़ारों को दोष देने लगता है ।

कहने का अभिप्राय यह है कि मुहावरों और कहावतों का अनुवाद करने के सामान्यत: तीन नियम हैं :

1. सही अर्थ का संप्रेषण करने वाले समानांतर मुहावरे या कहावत का प्रयोग किया जा सकता है । किंतु यदि समानांतर मुहावरा या कहावत

शिष्ट भाषा में प्रयोग करने योग्य नहीं है तो उसके स्थान पर ऐसी व्याख्यात्मक शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए जो मूल के सर्वाधिक निकट हो ।

2. समानांतर मुहावरा या कहावत न मिलने पर हिंदी की प्रकृति के अनुसार उसकी व्याख्या प्रस्तुत करना ही उपयुक्त होता है ।

3. यदि अंग्रेजी के मुहावरों का हिंदी में शब्दानुवाद प्रचलित हो गया है, तो उसका मुक्त भाव से प्रयोग किया जा सकता है ।

सफल अनुवाद की पहचान

सफल अनुवाद की सबसे पहली और अनिवार्य शर्त यह है कि उसमें मूल पाठ का यथार्थ बोध कराने की अर्थात् उसका सही-सही अर्थ व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए । यदि अनुवाद में अभिप्रेत अर्थ के विषय में किसी प्रकार की भ्रांति, विचलन या संदेह की संभावना रहती है, तो उसके अन्य सभी गुण निरर्थक हो जाते हैं । अनुवाद पढ़ने वाला हिंदी के माध्यम से मूल पाठ के अर्थ को यथावत् ग्रहण करना चाहता है और इसमें यदि किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है तो अनुवाद का उद्देश्य ही विफल हो जाता है । अर्थ की शुद्धता के साथ-साथ भाषा की शुद्धता भी अनिवार्य है । अनुवाद की भाषा हिंदी की प्रकृति के अनुकूल और उसकी शब्द-योजना, वाक्य-रचना आदि व्याकरणसम्मत होनी चाहिए । इस प्रकार शब्द-शुद्धि और अर्थ-शुद्धि सफल अनुवाद की पहली आवश्यकता है ।

दूसरा गुण है स्पष्टता । स्पष्टता से अभिप्राय यह है कि अनुवाद की भाषा पारदर्शी होनी चाहिए जिससे पाठक को अर्थ-ग्रहण करने में कठिनाई न हो । पारिभाषिक शब्दों का अर्थबोध सहज नहीं होता और उनके प्रयोग से हिंदी अनुवाद भी सामान्यतः बोधगम्य नहीं हो पाता । किंतु यह कठिनाई तो अंग्रेजी के विषय में भी है - पारिभाषिक शब्दों का अर्थ तो अंग्रेजी के पाठक को भी सहज-सुलभ नहीं होता ।

सफल अनुवाद का तीसरा गुण है भाषिक स्वच्छता । भाषिक स्वच्छता का अर्थ यह है कि वाक्य-रचना में उलझाव, निबिडता तथा दूरान्वय दोष नहीं होना चाहिए । प्रत्येक वाक्य अपने आप में पूर्ण तथा दूसरे वाक्य के साथ सहज रूप से संबद्ध होना चाहिए । लंबे वाक्य अंग्रेजी में भी वांछनीय नहीं होते, हिंदी की प्रकृति के साथ तो उनकी संगति और भी नहीं बैठती ।

अनुवाद की भाषा सुवाच्य और प्रवाहमयी होनी चाहिए । सुवाच्यता और प्रवाह उत्तम भाषा के गुण तो हैं ही, अनुवाद की भाषा के लिए ये और भी आवश्यक हैं क्योंकि इनके बिना भाषा का रूप ही नहीं बनता ।

सफल अनुवाद का अंतिम और विशिष्ट गुण यह है कि उसमें अनुवाद की गंध नहीं होनी चाहिए । इस कथन में कुछ विरोधाभास सा प्रतीत होता है, किंतु उत्तम

अनुवादक का यही गुण है । सिद्ध अनुवादक स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं पर अधिकार और निरंतर अभ्यास के बल पर इस गुण का यथाक्रम विकास कर लेता है । उसके अनुवाद को पढ़कर पाठक को ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह किसी अन्य पाठ का अनुवाद पढ़ रहा है ।

सार - संक्षेप

(i) साहित्य के दो भेद हैं : ज्ञान का साहित्य और ललित साहित्य । ज्ञान के साहित्य का अनुवाद अपेक्षाकृत सरल होता है ।

(ii) अनुवादक के लिए चार विशेषताएँ अपेक्षित हैं - मूल भाषा अंग्रेजी का सम्यक् ज्ञान, अनुवाद-भाषा हिंदी पर अधिकार, विषय का स्पष्ट ज्ञान और अभ्यास ।

(iii) अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद के साधन-उपकरण हैं : मानक अंग्रेजी कोश- वैब्स्टर, रैंडम हाउस आदि, अंग्रेजी-हिंदी कोश - कामिल बुल्के, डॉ॰ बाहरी आदि द्वारा संपादित, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्द-संग्रह तथा शब्दावलियां, अंग्रेजी तथा हिंदी में उपलब्ध परिभाषा-कोश ।

(iv) अनुवाद की प्रक्रिया : विषय-क्रम से, अनुच्छेद (पैराग्राफ) क्रम से, वाक्य-क्रम से और शब्द-क्रम से । इनमें तीसरी अर्थात् वाक्य-क्रम से अनुवाद की प्रक्रिया, आरंभ से अंत तक मूल के निकट रहने के कारण सबसे अधिक निरापद है । शब्दानुवाद अर्थात् शब्द-प्रति-शब्द क्रम से अनुवाद भ्रामक हो जाता है, अतः वह त्याज्य है ।

(v) अनुवाद-कार्य की प्रमुख समस्याएँ हैं - उपयुक्त पर्याय का चयन, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य का अनुवाद, मिश्र वाक्य का अनुवाद तथा मुहावरा-कहावत का अनुवाद ।

(vi) सफल अनुवाद की पहचान के आधार गुण हैं - शुद्धता अर्थात् अर्थ तथा भाषा की शुद्धता, भाषिक स्वच्छता, प्रवाह और सुवाच्यता तथा अनुवाद की गंध से यथासंभव मुक्त होना ।

०००००

वैज्ञानिक अनुवाद

- श्री हरीश्वर प्रसाद सिन्हा

आज का युग विज्ञान का युग है । आज विज्ञान का चतुर्मुखी विकास हो रहा है । आजकल आवागमन तथा संचार के साधन उपलब्ध हैं जिनसे वैज्ञानिक परस्पर विचार-विमर्श करते हैं और अपने कार्यों से दूसरों को अवगत कराते हैं । यदि कोई जर्मन वैज्ञानिक कोई नई खोज करे तो अन्य देशों के वैज्ञानिक उससे तभी लाभान्वित हो सकते हैं जब यह खोज उन्हें ऐसी भाषा में उपलब्ध हो जिसे वे समझ सकें । अतः एक देश में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति संबंधी साहित्य का अन्य देशों की भाषाओं में अनूदित हो जाना अति आवश्यक है ।

हम जानते हैं कि भाषा और विज्ञान का अटूट संबंध है । जहाँ विज्ञान तथ्य की खोज करता है वहीं भाषा उस तथ्य की अभिव्यक्ति करती है । अतः जब वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन-जन तक पहुँचाना हो, तब उसका स्वदेशी भाषा में अनुवाद आवश्यक होता है । मिसाल के तौर पर, कोई किसान कृषि में उपलब्ध नई खोजों का लाभ उठाकर उत्पादन तभी कर सकता है जब उसे यह ज्ञान अपनी भाषा में उपलब्ध हो सके ।

एक अच्छी मौलिक पुस्तक या लेख वही लिख सकता है जिसे विषय का अच्छा ज्ञान हो और साथ ही उस भाषा का भी ज्ञान हो जिसमें वह अपनी पुस्तक लिख रहा है । कहने का तात्पर्य यह है कि एक अच्छी मौलिक पुस्तक लिखने के लिए दो बातों का - विषय और भाषा - दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है । लोगों की धारणा यही रही है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति अनुवादक हो सकता है जिसे दो भाषाओं - अर्थात् **स्रोत भाषा** का यानी उस भाषा का, जिसमें पुस्तक, लेख आदि लिखे गए हैं और **अभिलक्ष्य भाषा** का - यानी उस भाषा का जिसमें पुस्तक, लेख आदि को अनूदित करना हो, ज्ञान हो, भले ही उसे विषय का ज्ञान हो या न हो । ऐसी ऊहापोह की स्थिति में कितने अनुवाद प्रामाणिक माने जा सकते हैं, यह एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न बना हुआ है । प्रामाणिक अनुवाद वही कर सकता है जिसे स्रोत-भाषा (जो यहाँ अंग्रेजी है) और अभिलक्ष्य भाषा (जो यहाँ हिंदी या क्षेत्रीय भाषा है) का ज्ञान तो हो, साथ ही जिसे विषय का भी अच्छा ज्ञान हो । कहने का अर्थ यह है कि जहाँ मौलिक लेखन के लिए दो बातों अर्थात् विषय और स्रोत भाषा का ज्ञान आवश्यक है वहीं अनुवाद के लिए तीन बातों अर्थात् विषय, स्रोत भाषा और अभिलक्ष्य भाषा का ज्ञान आवश्यक है और इस बात का महत्व वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में काफी अधिक है - क्योंकि भाषा में थोड़ी बहुत त्रुटि हो गई तो उसे सुधारा जा सकता है पर यदि तथ्यों का प्रस्तुतीकरण सही-सही नहीं किया गया तो काफी कुछ अनर्थ हो सकता है ।

हिंदी में साहित्य लेखन की परंपरा बहुत पुरानी है जबकि विज्ञान लेखन अपेक्षाकृत नया है । हिंदी में विज्ञान-साहित्य का अभाव है । कुछ लोग बोलचाल की भाषा में लेख प्रकाशित करते हैं, लेकिन ये लेख व्यावसायिक विज्ञान-लेखकों तक ही सीमित रहते हैं । वैज्ञानिक उपलब्धियों को अनुवाद के द्वारा प्रकाशित करने के प्रयास किए गए हैं और किए जा रहे हैं । परंतु, अनुवाद के विषय का सही प्रस्तुतीकरण संभव नहीं हो पाता है, क्योंकि प्राय: अधिकांश अनुवादकों को विषय का ज्ञान नहीं होता और उनमें इतना धैर्य भी नहीं होता कि विषय के जानकार से परामर्श लेकर विषय को सच्चाई के साथ प्रस्तुत कर सकें ।

वैज्ञानिक साहित्य को मूलत: चार वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(1) लोकप्रिय साहित्य (2) पाठ्यपुस्तकें (3) संदर्भ-साहित्य, और

(4) पत्र-पत्रिकाएं (शोध-पत्रिकाओं सहित) ।

अनुवाद करते समय इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान देना होता है कि किस वर्ग के वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करना है और किसके लिए करना है । साधारण व्यक्तियों के लिए करना है, विषय की थोड़ी-बहुत जानकारी रखने वालों के लिए करना है या विषय के मर्मज्ञों के लिए करना है । अनुवाद करते समय इस बात की ओर भी ध्यान देना आवश्यक होता है कि अनुवाद उन लोगों के लिए करना है जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़े हुए हैं या उन लोगों के लिए करना है जो हिंदी माध्यम से पढ़े हुए हैं और हिंदी माध्यम से ही पढ़ना चाहते हैं । यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि पराधीनता के वातावरण में रहने के कारण विशेष रूप से अंग्रेजी माध्यम से पढ़े लोग यथास्थितिवाद में विश्वास करने लगे हैं । उनका विचार है कि जो चल रहा है, उसे चलने दिया जाए, उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं अर्थात् अंग्रेजी भाषा से काम चल रहा है तो हिंदी या क्षेत्रीय भाषा के पचड़े में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं । उदाहरण के लिए, यदि हमें लोकप्रिय साहित्य का अनुवाद करना हो तो हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि यह साहित्य विशेषकर उन पाठकों के लिए है जो विषय के जानकार नहीं होते । इसके लिए विषय की सतही जानकारी ही काफी होती है । ये अधिक विस्तार में न तो समझ सकते हैं और न ही समझना चाहते हैं । पर, अनुवाद करते समय यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि विषय के प्रस्तुतीकरण को सरल और रोचक बनाने में विषय की गलत अभिव्यक्ति न हो जाए । यह तो हम सभी जानते हैं कि अच्छा अनुवाद वही होता है जोकि अनुवाद न लगे - बल्कि मौलिक लगे । अत: किसी लोकप्रिय पुस्तक में ऐसा उदाहरण दिया हुआ हो जो भारतीय परिवेश में ठीक न बैठता हो, तो उसे भारतीय परिवेश के अनुसार बना लेना चाहिए । मिसाल के तौर पर, यदि कोई राशि येन में दी हुई हो तो उसे यदि संभव हो सके तो, रुपए-पैसे में बदल देना चाहिए - यदि किसी का नाम हंगह्वा हो तो उसके स्थान पर कोई भी भारतीय नाम रखा जा सकता है । ऐसा करने से भाव में कोई अंतर भी नहीं आता और मौलिकता भी बनी रहती है । यही नहीं, लोकप्रिय साहित्य का

अनुवाद करते समय शब्दावली की बहुत अधिक गहनता में जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती । यह आवश्यक नहीं कि 'picture' के लिए 'चित्र' ही रखा जाए, 'figure' के लिए 'आकृति' ही रखा जाए और 'diagram' के लिए 'आरेख' ही रखा जाए । किसी भी शब्दावली का प्रयोग किया जा सकता है । इन बातों की ओर विशेष ध्यान तो पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद के समय रखना होता है ।

अब हम विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद के संबंध में चर्चा करेंगे । आप तो इस बात से परिचित हो ही चुके हैं कि अनुवाद करते समय किन-किन बातों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता होती है । फिर भी, इस संबंध में कुछ और बातों की जानकारी हो जाना अति आवश्यक है ।

पाठ्यपुस्तकों का अनुवाद करते समय शब्दावली की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है चाहे वह पाठ्यपुस्तक कक्षा 1 की हो या स्नातकोत्तर स्तर की । जो शब्दावली आप कक्षा 1 की पाठ्यपुस्तक में प्रयोग करेंगे - यह वही शब्दावली होनी चाहिए जो कि स्नातकोत्तर स्तर की पुस्तकों में दी गई हो या दी जाने वाली हो । सरलता और सहजता के पीछे पड़कर शब्दावली में फेर-बदल करने की आवश्यकता नहीं है । इससे दो लाभ होते हैं । एक तो विद्यार्थी उस तरह की परेशानी से बच जाता है जबकि वह हाई स्कूल या इंटरमीडिएट तक तो हिंदी या क्षेत्रीय भाषा में पढ़ा होता है - और स्नातक स्तर की पढ़ाई के लिए उसे अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है । इस कठिनाई से जूझने का अनुभव वही विद्यार्थी कर सकता है जिसने हाई स्कूल और इंटरमीडियेट स्तर तक हिंदी माध्यम से पढ़ाई की हो । दूसरा लाभ यह होता है कि शब्दावली की समरूपता बनी रहती है । कहने का अर्थ यह है कि यदि प्रश्न-पत्र को हल करना पड़े या किसी भी संदर्भ-पुस्तक या किसी स्तर की पुस्तक उसे पढ़नी पड़े तो उसे कोई कठिनाई न हो । ऐसी स्थिति न आ जाए कि पढ़कर आए तो वह किसी शब्दावली को और प्रश्न-पत्र आए किसी अन्य शब्दावली में । इस संबंध में इस बात की ओर भी विशेष ध्यान दिलाने की आवश्यकता है कि उसी शब्दावली का प्रयोग किया जाए जिसका निर्माण वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने किया है । शब्दावली का निर्माण करते समय शब्दावली आयोग ने इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया है कि शब्दावली का मानक स्वरूप उभर कर आए जो सर्वस्वीकृत हो ।

आयोग ने संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार ही तकनीकी शब्दावली के निर्माण के लिए संस्कृत को आधार माना है । इससे शब्दों को अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त हो गया है क्योंकि लगभग सभी भारतीय भाषाओं की शब्द संपदा का मूलाधार संस्कृत ही है । मिसाल के तौर पर, circle के लिए वृत्त और electricity के लिए विद्युत् रखा गया है जिनका स्वरूप अखिल भारतीय है । इससे लाभ यह होता है कि हिंदी क्षेत्र का कोई छात्र किसी भी हिंदी भाषी राज्य में क्यों न चला जाए, शब्दावली के संबंध में उसे किसी

परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता । साथ ही अन्य हिंदीतर भाषाओं के छात्रों को भी हिंदी की शब्दावली तथा अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली की पहचान में सरलता होती है । उदाहरण के लिए, वाक्य 'आकाश को नक्षत्र प्रकाशित करता है' में 'करता है' शब्द को छोड़कर एक शब्द भी ऐसा नहीं है, जो मलयालम भाषी के लिए अजनबी हो ।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि अनुवाद करते समय इस बात की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि पाठ्यपुस्तक का अनुवाद किनके लिए किया जा रहा है । उन लोगों के लिए जो हिंदी माध्यम से पढ़कर आए हैं या उन लोगों के लिए जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर आए हैं । यदि स्नातक स्तर की पुस्तक का अनुवाद किया जा रहा हो और उन विद्यार्थियों के लिए किया जा रहा है जो हिंदी माध्यम से पढ़कर आए हैं तो वे विद्यार्थी तो पहले से हिंदी शब्दावली से अच्छी तरह से परिचित रहते हैं पर जो विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर आए हैं उनके लिए यह शब्दावली अपरिचित होती है । अत: पुस्तक का अनुवाद करते समय पहले पहल प्रयुक्त हिंदी शब्दावली के साथ कोष्ठक में अंग्रेजी शब्द भी दे देना चाहिए और बीच-बीच में भी कहीं-कहीं पर इस प्रक्रिया को दोहराते रहना चाहिए । हाँ, विद्यार्थी या पाठक की सुविधा के लिए पाठ्य-पुस्तक में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों की हिंदी-अंग्रेजी शब्दावली की एक सूची (पुस्तक के अंत में) अवश्य दे देनी चाहिए ।

विज्ञान की किसी भी पाठ्यपुस्तक को अनुवाद की दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते हैं । पहला, परिभाषाएं और प्रमेय आदि वाला भाग, दूसरा, पाठ का विवरणात्मक भाग और तीसरा - प्रश्न, अभ्यास आदि वाला भाग ।

परिभाषाओं और प्रमेय आदि का अनुवाद ठीक उसी ढंग से करना चाहिए जिस ढंग से संविधान के अनुच्छेदों या क़ानून की धाराओं का अनुवाद किया जाता है । उदाहरण के लिए -

258(1) Notwithstanding anything in this constitution, the President may, with the consent of the Government of a State, entrust either conditionally or unconditionally to that Government or to its officers functions in relation to any matter to which the executive power of the Union extents.

258(1) इस संविधान की किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य की सरकार की सम्मति से राष्ट्रपति उस सरकार को या उसके पदाधिकारियों को ऐसे किसी विषय संबंधी कृत्य, जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, शर्तों के साथ या बिना शर्त सौंप सकेगा ।

कहने का अर्थ है कि इसके अनुवाद में किसी बात की छूट नहीं ली जा सकती । न तो कोई अंश जोड़ा जा सकता है और न ही कोई अंश हटाया जा सकता है और स्रोत-

भाषा में जिस पद्धति का या जिस शैली का प्रयोग किया गया है – अभिलक्ष्य भाषा में भी यथासंभव उसी तरह प्रस्तुतीकरण करना चाहिए। मिसाल के तौर पर, pentagon (पंचभुज) की अंग्रेजी परिभाषा है – 'A polygon having five sides' तो इसका सही हिंदी अनुवाद होगा – 'पाँच भुजाओं वाला बहुभुज'।

पाइथागोरस प्रमेय यह है : In a right triangle the square of the hypotenuse is equal to the sum of the squares of the other two sides.

हिंदी में इसका अनुवाद इस प्रकार होगा : 'एक समकोण त्रिभुज के कर्ण पर का वर्ग अन्य दो भुजाओं पर के वर्गों के योगफल के बराबर होता है'।

इसी तरह programming (क्रमादेशन) की परिभाषा यह होती है। The designing, writing and testing of programme 'क्रमादेशों की अभिकल्पना करना, लिखना और परीक्षण करना'।

पाठ्य पुस्तक का दूसरा भाग होता है विवरणात्मक भाग। यह वह भाग है जहाँ भाषा को सरल तथा प्रवाहपूर्ण और स्पष्ट बनाने के लिए अनुवादक थोड़ी बहुत छूट ले सकता है। इसके लिए वह तथ्य में कोई अंतर लाए बिना कुछ जोड़ सकता है कुछ हटा सकता है और वाक्यों को भी तोड़-मरोड़ सकता है। हाँ, पर शब्दावली के साथ वह कोई छेड़छाड़ नहीं कर सकता है। एक बात ध्यान रहे कि वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में मुहावरों आदि का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।

अब आता है तीसरा पक्ष अर्थात् प्रश्न, अभ्यास आदि वाला भाग। यह वह भाग है जिसका अनुवाद करते समय काफी सतर्कता बरतने की आवश्यकता होती है। एक तो, शब्दावली का सही-सही उपयोग करना होता है दूसरे, प्रश्न का स्पष्ट होना अत्यंत आवश्यक है। समाज विज्ञान या मानविकी के प्रश्न हों तो उनका अनुवाद इस तरह किया जाए कि प्रश्न बिल्कुल स्पष्ट हों, पर वैज्ञानिक साहित्य के, विशेष रूप से गणित, भौतिकी आदि के प्रश्नों के अनुवाद में प्रश्नों को बिल्कुल स्पष्ट कर देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रश्न को स्पष्ट करना ही विद्यार्थी के लिए उसे हल करने का एक भाग हो जाता है। कुछ प्रश्नों का अनुवाद इस तरह करना चाहिए कि वह स्पष्ट तभी लगे जब कि विद्यार्थी अपना कुछ दिमाग लगाए कि प्रश्न में क्या-क्या कहा गया है और उसे क्या ज्ञात करना है। मिसाल के तौर पर :-

A and B are firends and their ages differ by 2 years. A's father D is twice as old as A and B is twice as old as his sister C. The ages of D and C differ by 40 years. Find the ages of A and B.

A और B दो मित्र हैं और उनकी उम्र में दो वर्ष का अंतर है। A के पिता D की उम्र A की उम्र की दो गुनी है और B की उम्र अपनी बहिन C की उम्र की दो गुनी है। D और C की उम्र में 40 वर्ष का अंतर है। A और B की उम्र बताइए।

संदर्भ-ग्रंथों और शोध पत्र-पत्रिकाओं के अनुवाद के साथ भी वही प्रक्रिया अपनानी चाहिए जो कि पाठ्य-पुस्तकों के अनुवाद के साथ अपनायी जाती है ।

वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करते समय निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है :

1. स्थिरांक जैसे λ, g, log आदि, ग्रीक अक्षर δ, γ आदि, त्रिकोणमितीय फलन SinA, CosB आदि, संख्यांक 1, 2, 3 आदि, प्रतीक =, <, > आदि और चिह्न Σ आदि को इन्हीं रूपों में अपनाया जाना चाहिए । साथ ही गणितीय सूत्रों को, जैसे-

$$\frac{d^2y}{dn^2} - 5\frac{dy}{dn} + 6y = r^{4x}$$

$$n^2 - y^2 = (n - y)(n + y)$$

और रासायनिक सूत्रों को, जैसे -

$$CuO_2 + H_2 = Cu + H_2O$$

$$NaOH + HCl \text{ -- } NaCl; + H_2O$$

इन्हीं रूपों में ले लेना चाहिए, अर्थात् इन्हें हिंदी के अक्षरों या संख्यावाचक प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं करना चाहिए ।

कुछ ऐसे शब्द हैं जिन्हें विशुद्ध तकनीकी तो नहीं माना जा सकता, पर जिनका प्रयोग विज्ञान में काफी होता है, जैसे - involve, satisfy, imply, existence आदि । मिसाल के तौर पर, शब्द involve के तीन उदाहरण लीजिए ।

1. Write the function as a product of two (or more) functions involving independent variables i.e. f(x, y) = x(x) y(y)
2. Many of our day to day experiences involve diffusion of particles.
3. Let us consider specific BVP for Laplace's equation which involves the use of Forier's series.

इन तीन वाक्यों में शब्द involve के लिए अलग-अलग पर्यायों का प्रयोग करना होगा ।

एक और उदाहरण लीजिए :

This quantity satisfies the equation $(x-2)^2 - 4 = 0$

यहाँ शब्द satisfy का हिंदी रूपांतर 'संतुष्ट' किया जाता है । हालाँकि इस शब्द से पूरी संतुष्टि नहीं होती । पर, अभी तक कोई ऐसा शब्द नहीं मिला है जो इस शब्द को हटाने में सक्षम रहा हो ।

आइए अब हम कुछ ऐसे उदाहरण लें, जिस संबंध में भाषाविदों के साथ कुछ चर्चा करने की आवश्यकता पड़ती है । उदाहरण के लिए -

This shows that the root lies in the interval [a, b]

इसका हिंदी अनुवाद होगा -

इससे यह पता चलता है कि मूल अंतराल [a, b] में स्थित है ।

यहाँ ऐसा लगता है कि अंतराल ही मूल अंतराल है । पर, यदि इससे बचने के लिए अनुवाद इस तरह किया जाए -

'इससे यह पता चलता है कि अंतराल [a, b] में मूल स्थित है' तो वैज्ञानिक दृष्टि से यह सही नहीं उतरेगा क्योंकि विशेष बल शब्द मूल पर दिया गया है । राम दशरथ का पुत्र है और दशरथ का पुत्र राम है - यदि पैनी दृष्टि से देखा जाए तो दोनों वाक्यों में काफी अंतर है । इसी तरह की अनेक समस्याएँ हमारे सामने आती हैं, जैसे -

Tangent at [x0, y0] is parallel to this line.

[x0, y0]पर स्पर्शरेखा इस रेखा के समांतर है ।

इसी प्रकार to, into, onto आदि का भी प्रयोग एक अलग रूप में करना होता है । इस संबंध में आइए हम प्रतिचित्रण से संबंधित कुछ सुप्रचलित वाक्य लेते हैं और उनका सही अनुवाद देते हैं :

1. f maps x into y
   (y में x को f प्रतिचित्रित करता है)
2. f maps x to y
   (y पर x को f प्रतिचित्रित करता है)
3. f maps x onto y
   (y को x से f आच्छादित करता है)

4. x is mapped onto y
   (x से y आच्छादित है)
5. f is a map of x onto y.
   (y का x से f आच्छादक है)

ऊपर के उदाहरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि इस तरह के वाक्यों का ठीक-ठीक अनुवाद करने में वही व्यक्ति सक्षम हो सकता है जो विषय का पंडित तो हो पर साथ ही उसे भाषा पर भी अधिकार हो ।

जैसा कि ऊपर बता चुके हैं वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा बनाई गई शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए । कई स्थानों पर एक अंग्रेजी शब्द के विभिन्न अर्थों में विभिन्न पर्याय दिए गए हैं । अत: अनुवादक को एक बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है कि उसे प्रस्तुत संदर्भ के साथ किस पर्याय का प्रयोग करना चाहिए । अगर गलत पर्याय का चयन कर लिया गया तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है । उदाहरण के लिए, शब्द 'normal' लीजिए । शब्द-संग्रह में इसके छह पर्याय दिए गए हैं - (1) प्रसामान्य (2) प्राकृत (3) मानक (4) सामान्य, साधारण (5) अभिलंब और (6) नॉर्मल ।

मान लीजिए इन वाक्यों का अनुवाद करना है :

1. Find the normal acceleration of the particle.
2. Give the definition of normal distribution.

अब प्रश्न उठता है कि किस वाक्य में 'normal' का उचित पर्याय क्या होगा । विषय का जानकार तुरंत यह जान जाएगा कि पहले वाक्य में 'normal' का सही पर्याय 'अभिलंब' होगा और दूसरे वाक्य में 'प्रसामान्य' ।

इसी तरह का शब्द 'ideal' लिया जा सकता है जिसके तीन पर्याय हैं और तीनों ही गणित के हैं : (1) आदर्श (2) गुणजावली, (3) अनंतस्थ ।

आइए अंत में हम कुछ ऐसे वाक्य लेते हैं जिनके अनुवाद के संबंध में दो विचार-धाराएं हैं । ये वाक्य हैं :

1. A second meaning of statistics is plural of statistic.
2. The Latin word 'Regula falsi' means rule of false word.

एक का कहना है कि अनुवाद करते समय मूल अंश के ऐसे वाक्यों का अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं और इन्हें हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि इससे मौलिकता नष्ट होती है, पर दूसरे का कहना है कि जब अंग्रेजी में वाक्य दिया गया है तो मक्षिका पर मक्षिका रखकर ही इसका अनुवाद किया जा सकता है । मैं पहली विचारधारा का पक्षधर हूँ ।

°°°°°

हिंदी में अनुवाद की समस्याएं

- डॉ॰ भगवान देव पांडेय

साहित्य में जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव और व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाएं सहज रूप में नित्यप्रति शब्दावली और भाषा के माध्यम से व्यक्त होती हैं, लेकिन साहित्य सर्जक अपने लेखन कौशल के माध्यम से उसे एक असाधारण अर्थ देने में समर्थ होता है। शब्दों में नूतन और विशिष्ट अर्थ भरना उसकी रचना-प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है। भारत में कई परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं जिसके कारण यह एक भाषायी महाद्वीप दृष्टिगत होता है। यहाँ हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, कन्नड, तमिल, तेलुगु, मलयालम, उड़िया, बंगला, असमिया, संथाली, कोरवा, नेपाली, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, कश्मीरी आदि भाषाएं बोली जाती हैं। किसी राष्ट्र की भाषाएं पृथक्-पृथक् भले ही हों लेकिन उनके शब्द-भंडार तथा वाक्य-रचना के नियमों में एकरूपता आवश्यक होती है, जो भारतीय भाषाओं में किन्हीं न किन्हीं अंशों में परिलक्षित होती है। इसीलिए भारतीय भाषाओं में अन्य भाषाओं से अनुवाद की अपेक्षा अधिक जटिल समस्याएं नहीं हैं। अनुवादक के लिए दो भाषाओं में ध्वनि-व्यवस्था, शब्द-भंडार, रूप-रचना तथा वाक्य-रचना में भेद जितना कम होता है, अनुवाद करना उतना ही सरल होता है। शब्द-भंडार का अंतर सांस्कृतिक एवं संकल्पनात्मक विभेदों पर आधारित होता है। कभी-कभी तो ऐसी भी स्थिति आ जाती है कि सांस्कृतिक भिन्नता के कारण मूल भाषा के शब्दों के प्रतिशब्द लक्ष्य भाषा में अपेक्षित अर्थ का संप्रेषण नहीं कर पाते।

भाषाएं प्राकृतिक(नैसर्गिक) और कृत्रिम दो प्रकार की होती हैं। प्राकृतिक भाषा वह है जो स्वत: निकले और स्वाभाविक रूप से जन-सामान्य की भाषा हो। कृत्रिम भाषा विज्ञान की भाषा होती है। वह वैज्ञानिकों द्वारा गढ़ी जाती है। विज्ञान अपनी स्वतंत्र भाषा विकसित करता है। विज्ञान जितना ही सुनिश्चित होता है और उसका संप्रेषण असंदिग्ध होता है उतना ही वह शब्द को उसकी अनेकार्थता से हटाकर एकार्थ बनाता है। जितना ही विज्ञानों का विकास होगा उतने ही नए शब्दों का विकास करना होगा। विश्व में जो नई वस्तुएं आएंगी उनको प्रकट करने के लिए नए शब्द देने ही पड़ेंगे। विज्ञान में शब्द-विस्तार की क्षमता होती है। वैज्ञानिक शब्दों का चिंतन नए अर्थबोध से ही संभव है और जहाँ चिंतन घुस जाता है वहाँ स्वाभाविकता नहीं रहती।

प्रत्येक भाषा में अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने एवं शब्द-भंडार को समृद्ध करने के लिए अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात् करने की क्षमता होनी चाहिए जिससे कि प्रायोगिक उपयोगिता बनी रहे । इसलिए अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अतिरिक्त, साहित्य में उपलब्ध शब्दों को ग्रहण करके विभिन्न भारतीय भाषाओं और बोलियों में पाए जाने वाले उपयुक्त शब्दों को स्वीकार करना आवश्यक है । नए शब्दों के निर्माण के समय यह ध्यातव्य है कि शब्द की व्युत्पत्ति क्या है और उसका वर्तमान प्रयोग एवं अर्थ उपयुक्त है अथवा नहीं । कई बार तो मूल शब्दार्थ की अपेक्षा वर्तमान शब्दार्थ ही अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है ।

अनुवाद एक भाषा से प्राप्त पाठ-सामग्री को दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ-सामग्री में रूपांतरित करने की प्रक्रिया और उसकी परिणति है । लेकिन यह प्रक्रिया कठिन है । इसका कारण यह है कि लेखक के चेतना-स्तर पर जो कुछ घटित होता है वह अभिव्यंजना के स्तर तक आते आते अपना कुछ न कुछ अंश खो चुका होता है । अनुवादकों की उदासीनता भाषा के स्वरूप को विकृत कर डालती है ।

सभी जीवंत भाषाएं दूसरी भाषाओं से शब्द ग्रहण करके उन्हें आत्मसात् कर लेती हैं, पर हर भाषा में यह क्षमता अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार होती है । बलात् शब्द-प्रयोग से नई कृत्रिम भाषा बन सकती है, पर किसी भाषा का सुधार नहीं किया जा सकता ।

अनुवाद का उद्देश्य एक भाषा के विचारों को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना होता है, जिससे कि वह ऐसे लोगों की समझ में आ सके जो मूल भाषा नहीं जानते । मूल वक्तव्य अपने नए रूप में जितना ही सहज और सुबोध होगा अनुवाद उतना ही सफल कहा जाएगा । शब्द तो विचारों के परिधान-मात्र होते हैं । अतः जहाँ अनूदित शब्द से विचार का सम्यक् और सही ज्ञान नहीं हो पाएगा वहाँ अनुवाद असफल माना जाएगा । अनुवाद में प्रतिस्थापन से काम नहीं चल सकता, वरन कथ्य की भाव-प्रवणता आवश्यक होती है । शाब्दिक अनुवाद-मात्र कर देने से भाव-शमन हो जाता है । अनुवाद में अर्थ की दृष्टि से स्पष्टता, सुबोधता एवं सुनिश्चितता होनी चाहिए और शब्द ऐसे हों जिनमें अपेक्षित उर्वरता हो । किसी भी शब्द का जो भी अनुवाद किया जाए वह सार्थक होना चाहिए । नए शब्द जब भी निर्मित होंगे तब तक अपरिचित ही रहेंगे जब तक कि उनका प्रयोग निरंतर न होने लगे । नए शब्दों का निर्माण करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि शब्द का उच्चारण आसानी से किया जा सके । अनुवाद का उद्देश्य होता है किसी अन्य भाषा के साहित्य, संस्कृति का ज्ञान, अपनी भाषा के माध्यम से अपनी भाषा में कराना । हमारी भाषा के शब्दों की विशेषता यह है कि वह वस्तु का स्वरूप हमारे मस्तिष्क में बना देते हैं ।

अनुवादक अनूद्य पाठ सामग्री से संबद्ध होता है । पाठ-सामग्री के अनुसार ही उसे समस्याओं का सामना करना पड़ता है । काव्यभाषा अनुभूतियों और भावनाओं की

वाहिका होती है और विज्ञान की भाषा में बौद्धिक तथा विचारात्मक लेखन होता है, अत: उसमें स्वभावत: नियतार्थता और निश्चयार्थता होती है । वैज्ञानिक चिंतन को मूर्त रूप देकर उसे संप्रेषणीय बनाता है । अपने देश में हिंदी में जो भी वैज्ञानिक साहित्य आ रहा है वह प्रच्छन्न रूप से अनुवाद ही है । वैज्ञानिक कृतियों में पारिभाषिक शब्दावली की जितनी आवश्यकता मूल कृतिक की होती है उतनी ही अनुवादक की भी । जिस वैज्ञानिक लेखन में जितने अधिक पारिभाषिक शब्द होते हैं वहाँ उतनी ही अधिक निश्चयार्थता होती है और अनुवादक वहाँ उतना ही दृढ़ होता है । अनुवादक की दृष्टि से सबसे कठिन काव्य का अनुवाद और फिर मानिविकी विषयों का अनुवाद होता है और सबसे कम कठिन कार्य वैज्ञानिक अनुवाद होता है । अक्सर अनुवाद लक्ष्य-भाषा की प्रकृति को खंडित करके मंतव्य को दुर्बोध बना देते हैं ।

हिंदी की कई बोलियों में उत्कृष्ट साहित्य का सृजन हुआ है और हो रहा है, जिसे पूरा हिंदी प्रदेश पूर्ण रूप से नहीं समझ पाता, जिससे आगे चलकर अनुवाद की समस्या बनी रह सकती है । इसी तरह लोक साहित्य, लोकोक्तियों तथा मुहावरों के अनुवाद के लिए समस्या बनी हुई है । मानक हिंदी संपूर्ण हिंदी क्षेत्र के विचारों को अभिव्यक्ति देने में समर्थ नहीं है । इस दृष्टि से समर्थ बनाने के लिए मानक हिंदी को अपनी बोलियों से वे सभी शब्द ग्रहण करने पड़ेंगे जिनके समानार्थी शब्द उसमें नहीं हैं । कई भारतीय भाषाओं में कुछ ऐसी ध्वनियां हैं जो हिंदी में नहीं हैं, यथा - 'ळ' उड़िया, मराठी, गुजराती, तमिल में है लेकिन हिंदी में नहीं है । ऐसे ध्वनि को निकटतम ध्वनि में परिवर्तित कर देना चाहिए । इसी प्रकार वर्तनी की भी समस्या है । असमिया में 'त' का उच्चारण 'ट' तथा 'स' का 'ख' होता है । वहाँ 'सीता' का उच्चारण 'खीटा', 'रामसिंह' का 'रामखिंग' करते हैं । बंगला में - मस्को (मास्को), महरम (मुहर्रम), रिभालबार (रिवाल्वर); मराठी में झांशी (झांसी), ग्वाल्हेर (ग्वालियर), ओरिसा (उड़ीसा), जिल्हा (जिला); गुजराती में - लखनों (लखनऊ) भादरखों (भादों), दशेरा (दशेहरा (दशहरा), ब्लाऊझ (ब्लाउज) कहा जाता है । ऐसे स्थानों पर हिंदी अनुवाद में प्रचलित वर्तनी का प्रयोग उपयुक्त है । इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में वाक्य में सर्वत्र क्रिया का आना अनिवार्य नहीं है जब कि हिंदी में क्रिया का प्रयोग किया जाता है । हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्द मूलत: एक हैं, भ्रमवश इनका प्रयोग अर्थ का अनर्थ कर डालता है । यथा -

तमिल	हिंदी
अपेक्षा (प्रार्थना)	अपेक्षा (तुलना)
आदर (सहारा)	आदर (सम्मान)
अतीत (बहुत)	अतीत (बीता हुआ)

नेपाली	हिंदी
कर्मी(बढ़ई)	कर्मी (काम करने वाला)
थोक (चीज)	थोक (समूह)
अंजाम (अंदाज)	अंजाम (परिणाम)
उड़िया	**हिंदी**
उजला (धोबी)	उजला (उज्ज्वल)
रोजगार (आमदनी)	रोजगार (व्यवसाय)
गुजराती	**हिंदी**
आंचल (स्तन)	आंचल (साड़ी का छोर)
माथा (सिर)	माथा (ललाट)
कन्नड़	**हिंदी**
यजमान (पति, स्वामी)	यजमान (पुरोहित)

हिंदी में पर्यायवाची शब्द भी कई बार परेशानी खड़ी कर देते हैं । ऐसे शब्द एक ही संकल्पना के विभिन्न बिंबों को समाविष्ट करते हैं । गलत क्रम में पर्याय का स्थापन वाक्य को अनावश्यक रूप में दुरूह और जटिल बनाकर अनुवाद के लक्ष्य को विफल कर देता है । जैसे स्त्री का पयार्यवाची रमणी, वामा, कामिनी, नारी आदि, पानी का - नीर, वारि, जल, अंबु, आदि । इन शब्दों का स्थिति एवं शैली-सापेक्ष प्रयोग होता रहा है, जिससे भ्रम उत्पन्न हो जाता है । इसी तरह एक ही शब्द के कई-कई अर्थ भी दुविधा पैदा कर देते हैं, यथा - हरि, कर, हंस, सारंग आदि अनेक ऐसे शब्द हैं जो संदर्भगत ही अर्थ का द्योतन कर पाते हैं ।

सांस्कृतिक असमानता भी अनुवादक के लिए व्यवधान का कारण बनती है । प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है । इस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में जितना अधिक अंतर होता है उसके अनुवाद में उतनी ही कठिनाई होती है । उदाहरणार्थ, तमिल में 'कुत्ता' शब्द घृणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है जो हिंदी 'सुअर' शब्द का वाचक है । तमिल में कुत्ता के लिए प्रयुक्त 'नपि' का हिंदी अनुवाद 'सुअर' ही उपयुक्त होगा । इसी प्रकार तमिल में बच्चे को प्यार से 'पिल्ला' कहते हैं जिसका अर्थ हिंदी में अच्छा नहीं समझा जाता । ऐसे स्थान पर भावानुवाद करें तो अपेक्षित अर्थ नहीं निकल पाएगा । उर्दू - गरीबखाना, दौलतखाना, तारीफ़, हुजूर आदि भी इसी कोटि के शब्द हैं । इसी तरह संस्कृत

के शब्दों के लिए हिंदी में तत्सम या तद्भव शब्दों के प्रयोग में अर्थ संकोच, अर्थविस्तार तथा अर्थादेश से भी अर्थ अशुद्ध हो जाता है । संस्कृत - कोश, कोष का हिंदी में अर्थ अलग-अलग है जबकि संस्कृत में एक ही अर्थ है ।

इस प्रकार हिंदी में अनुवाद की बहुत अधिक संभावनाएं होने के बावजूद भी अत्यधिक सावधानी एवं चिंतन की आवश्यकता है जिस पर ध्यान देकर हिंदी शब्द-भंडार को और अधिक समृद्ध किया जा सकता है ।

* * * * *

हिंदी में वैज्ञानिक एंव तकनीकी साहित्य के अनुवाद की समस्याएं

- डॉ॰ हरिमोहन

विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं को अपनाए जाने की माँग कई बार उठती रही है । सभी राष्ट्रभाषाओं का सम्मान करते हुए, हम आग्रह करना चाहेंगे कि राजभाषा हिंदी में यह शिक्षा यथाशीघ्र आरंभ करने की दिशा में प्रयास होने चाहिए । लेकिन पहले इसके लिए पूरी तैयारी आवश्यक है । प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य उपलब्ध नहीं है । यह आंशिक सत्य है । फिर भी इसमें संदेह नहीं कि अभी हमारे पास हिंदी भाषा में रचित वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का उतना भंडार नहीं, जितने की वास्तव में हमें आवश्यकता है । विज्ञान एवं तकनीकी साहित्य निरंतर विकासमान हैं । क्या हमारे पास अत्याधुनिक एवं निरंतर विकसित यह साहित्य हिंदी माध्यम में उपलब्ध है ? संभवतः नहीं । इसके क्या कारण हैं ? कई कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण है : हिंदी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य के अनुवाद की समस्या । हमें इस समस्या के व्यावहारिक कारणों की गंभीरता के साथ पड़ताल करनी चाहिए और उनके निदान के प्रयास करने चाहिए । इस संदर्भ में मुख्य समस्या आती है - पारिभाषिक शब्दावली की, विषय के समुचित ज्ञान की और फिर, भाषा की विषयानुकूल वैज्ञानिकता की ।

भाषा आभ्यंतर अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है । वह हमारे आभ्यंतर के निर्माण, विकास, हमारी अस्मिता, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है । भाषा के बिना मनुष्य सर्वथा अपूर्ण है और वह अपने इतिहास तथा अपनी परंपरा से विच्छिन्न है ।

हिंदी एक सुविकसित परिनिष्ठित भाषा है । इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और इसके बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक (लगभग 22 करोड़) है । इसका अपना परिनिष्ठित व्याकरण है, जिसके द्वारा यह अनुशासित और नियंत्रित रहती है । इसमें अनेक समृद्ध बोलियां एवं विभाषाएं हैं । यह हिंदी भाषा की ताकत है । इसमें उच्च स्तर का वैविध्यपूर्ण साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है ।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी को हमारे संविधान में राजभाषा का दर्जा दिया गया तथा वर्तमान राजभाषा-नीति के अंतर्गत शासकीय कामकाज के लिए हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जा रहा है ।

देश में ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार हो रहा है, त्यों-त्यों यह माँग भी प्रबल हो रही है कि शिक्षा का माध्यम हमारी मातृभाषाएं हों । हमारे शिक्षा-नीति-नियामक इस माँग से मुंह नहीं चुरा सकते । लेकिन एक प्रश्न सभी को चिंता में डाल देता है कि किस स्तर तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में रहे ? प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा तक विशेष कठिनाई नहीं है, कठिनाई अनुभव की जाती है विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम की । तर्क यह दिया जाता है कि विज्ञान विशिष्ट ज्ञान है । इस विशिष्ट ज्ञान में विदेशी साहित्य प्रचुर मात्रा में है । साथ ही दिन प्रतिदिन इस क्षेत्र में नई-नई उपलब्धियां हो रही हैं, अन्वेषण - अनुसंधान हो रहे हैं । इन सब को हम अपनी मातृभाषाओं में तत्काल अपने विश्वविद्यालयी विद्यार्थियों - शोधार्थियों को उपलब्ध नहीं करा सकते । दूसरी ओर तर्क है कि क्या दूसरे देशों में विश्वविद्यालय स्तर की पढ़ाई उन देशों की अपनी भाषा में नहीं हो रही ? जापान, जर्मनी, फ्रांस इत्यादि देशों का उदाहरण हम दे सकते हैं, जिनमें विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान उत्कृष्ट स्तर का है । फिर हमारे यहाँ क्या कठिनाई है ?

ये दोनों बातें अपनी जगह सही हैं ।

हमारे यहाँ एक व्यावहारिक कठिनाई यह भी है कि हमारी मातृभाषाएं एक नहीं अनेक हैं । इनमें से 18 को संविधान में स्थान दिया गया है । सभी में उत्कृष्ट साहित्य मिलता है । सभी का अपना महत्व है । तब इन सभी भाषाओं का आदर करते हुए हम यह आग्रह करना चाहेंगे कि संघ की राजभाषा हिंदी को स्वीकार करें और विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिंदी को रखें । जब हम किसी अन्य विदेशी भाषा को प्रयत्नपूर्वक सीख सकते हैं, तो अपने ही देश की, अपनी मातृभाषा के निकट की, एक अपेक्षाकृत सरल भाषा को क्यों नहीं सीख सकते ?

यह सर्वविदित है कि हिंदी हमारे संघ की राजभाषा है । हमारे देश में राजभाषा की स्थिति दो प्रकार की है - प्रथम, संघीय राजभाषा, जिसे भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा कहा गया है; और दूसरी, राज्यों की भाषा । संघीय राजभाषा पूरे देश की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । यह सरकारी कामकाज की भाषा होने से सरकारी कर्मचारियों और शिक्षित वर्ग से संबंध रखती है । यह सरकारी कामकाज की भाषा भी है और जन-सामान्य के बीच शिक्षित - अशिक्षित सभी वर्गों में वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम भी है । अतः संघीय राजभाषा राष्ट्रीय समस्याओं तथा बौद्धिक स्तर को सुलझाने में सक्षम है । हमें पूरे देश के राजकाज, प्रशासनिक कामों, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति आदि के लिए एक राजभाषा को अपनाना चाहिए, ताकि इन कार्यों में एकरूपता बनी रहे । निःसंदेह यह एक राजभाषा हिंदी ही हो सकती है ।

प्रश्न उठता है कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम के लिए हिंदी अपनाए जाने में क्या कठिनाई है ? हमारे विचार से अधिसंख्य विद्वान यह मानते हैं कि हमारे पास विश्वविद्यालय-स्तर की पाठ्य-पुस्तकें हिंदी में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं

है; विशेष रूप से विज्ञान एवं तकनीकी साहित्य का अभाव है । अन्य कठिनाइयां अपनी जगह हैं (यथा - अध्यापक हिंदी माध्यम से पढ़ाने में असमर्थ हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पूरी की है, या हिंदीतर-भाषी प्रदेशों के विद्यार्थी हिंदी माध्यम से नहीं पढ़ सकते इत्यादि) । इन कठिनाइयों को हम अपनी 'असमर्थता' या अपनी 'अक्षमता' और अपनी 'अयोग्यता' क्यों नहीं मानते ? ऐसा मानकर इन्हें दूर करने के प्रयास किए जाने चाहिए । इच्छा शक्ति से हम हिंदी का पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर सकते हैं । इसके लिए प्राथमिक स्तर से ही हिंदी की शिक्षा आवश्यक है । वह भी रुचि के साथ ।

जहाँ तक पाठ्यपुस्तकों की बात है, श्रेष्ठ पाठ्यपुस्तकें विश्वविद्यालयों के सुयोग्य शिक्षकों द्वारा निरंतर तैयार की जानी चाहिए । इस काम में प्रायः अनुवाद और उससे भी अधिक पारिभाषिक शब्दावली की कठिनाई सामने आती है । पहले हम इस समस्या पर ही विचार करते हैं ।

वैज्ञानिक साहित्य ज्ञानात्मक होता है, इसलिए इसकी मूल प्रवृत्ति सूचनात्मक एवं विवेचनात्मक होती है । अपने उद्देश्य की अभिपूर्ति के लिए वैज्ञानिक साहित्य का लेखक सुनिश्चित अर्थ वाली पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करता है । संबद्ध विषय की इस विशिष्ट शब्दावली का विशेष महत्व है । इस शब्दावली का अर्थ सुनिश्चित होता है, जिसे विज्ञान का अध्येता उसी रूप में ग्रहण करता है । इस शब्दावली के प्रयोग के कारण प्रत्येक विज्ञान की अपनी भाषा होती है अतः वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य में न तो भाषा का मनचाहा प्रयोग हो सकता है और न भाषा के साथ कोई खिलवाड़ की जा सकती है । यहाँ सर्वाधिक बल तथ्य पर दिया जाता है ।

अनुवाद वस्तुतः एक भाषायी प्रक्रिया से प्राप्त परिणाम है । अनुवाद एक संबंध भी है, जो दो या दो से अधिक, किंतु भिन्न भाषाओं के पाठों के बीच होता है बशर्ते कि वे पाठ समानार्थी हों । कहने का अर्थ यह है कि मूल पाठ तथा अनूदित सामग्री में समतुल्यता होनी चाहिए । यद्यपि यह सर्वांशतः असंभव-सी बात है, लेकिन दोनो सामग्रियां अधिकतम साम्य रखती हों । यह एक कठिन योग है । संभवतः इसी तथ्य को दृष्टिपथ में रखकर हमारे प्रथम राष्ट्रपति डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद ने कहा था : 'अनुवाद एक श्रमसाध्य कला है । किसी भी भाषा के मौलिक लेखन की अपेक्षा यह अधिक कठिन है । मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि यह कार्य अत्यंत कठिन भी है और रोचक भी । जब अनुवाद तत्वज्ञान, मनोविज्ञान, कविता, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी तथा तकनीकी विषयों का हो तो वह और भी कठिन हो जाता है । इसका एक कारण यह है कि संभवतः एक भाषा में व्यक्त विचार और संकल्पनाएं दूसरी भाषा में उपलब्ध न हों । यह भी संभव है कि दूसरी भाषा की अभिव्यक्ति शैली का ज्ञान अनुवादक को इतना अधिक न हो कि वह एक भाषा से दूसरी भाषा के अनुवाद में उस भाव को निभा सके ।'

जैसा कि हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं, वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य के अनुवाद में मुख्य समस्या आती है – पारिभाषिक शब्दावली की । प्रयोग की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के होते हैं – सामान्य शब्द, अर्धपारिभाषिक और पारिभाषिक शब्द । सामान्य भाषा में प्रयुक्त शब्द फूल, घर, आदमी, सड़क आदि सामान्य शब्द हैं । जो शब्द सामान्य भाषा में तो सामान्य शब्द के रूप में प्रयुक्त होते हैं तथा विशिष्ट विषयों में पारिभाषिक शब्दों के रूप में, उन्हें अर्धपारिभाषिक शब्द कहा जाता है, जैसे 'धातु' । यह शब्द सामान्य भाषा में सोना, चाँदी, तांबा आदि धातुओं का द्यतोक है और व्याकरण में क्रिया की मूल धातु का । जो शब्द विशिष्ट विज्ञानों या विषयों में किसी सुनिश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और सामान्य भाषा में प्रायः प्रयुक्त नहीं होते, उन्हें पारिभाषिक शब्द कहा जाता है ।

अपने अनुभव, अध्ययन, अनुसंधान और निष्कर्षों पर आधारित नियमों, संकल्पनाओं आदि को दूसरों तक पहुँचाने एवं इस विशिष्ट ज्ञान को भावी पीढ़ियों के लिए हस्तांतरित करने के लिए विद्वानों ने सामान्य भाषा से पृथक् विशिष्ट भाषा की आवश्यकता अनुभव की । यह विशिष्ट शब्दावली ही पारिभाषिक शब्दावली है, जो निरंतर वृद्धि करती रही है ।

जब हम वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य के अनुवाद की ओर अग्रसर होते हैं तो इन पारिभाषिक शब्दों के प्रतिशब्द ढूंढते हैं । विश्व में अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, जर्मन आदि भाषाएं ऐसी हैं, जिनमें पारिभाषिक शब्दों का अभाव नहीं है । कारण कि इन भाषाओं के वैज्ञानिक विश्व में अग्रणी हैं । प्रायः नए वैज्ञानिक अनुसंधान इनके द्वारा संपन्न होते रहे हैं । स्वाभाविक है कि इन अनुसंधानों से संबद्ध पारिभाषिक शब्दावली इनकी भाषा में ही बनती रही है । इन भाषाओं में आधुनिक काल में वैज्ञानिक ग्रंथ-लेखन तथा अनुवाद की परंपरा पर्याप्त पुष्ट है । इस विचार से परंपरागत विज्ञान तथा आधुनिक आविष्कारों एवं अनुसंधानों के संदर्भ में ये भाषाएं पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से संपन्न हैं और इसीलिए इन भाषाओं में अनुवाद के समय पारिभाषिक शब्दावली की कोई विशेष समस्या नहीं है । हिंदी, बंगला, मराठी, गुजराती, अरबी-फारसी, तमिल-तेलुगु, मलयालम आदि भाषाएं इन भाषाओं की अपेक्षा कम संपन्न हैं, क्योंकि यहाँ इतने अधिक आविष्कार-अनुसंधान नहीं हुए । इसीलिए इन भाषाओं में अनुवाद के समय पारिभाषिक शब्दावली की विशेष समस्या रहती है । हाँ, प्राचीन ज्ञान-विज्ञान हमारे यहाँ प्रर्याप्त समृद्ध था । ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि अपनी भाषा में उन पारिभाषिक शब्दों के अनुरूप नए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया जाए । यह एक कठिन कार्य है, साथ ही यह सजगता एवं सावधानी की अपेक्षा रखता है । ऐसा नहीं कि हमारे यहाँ इस दिशा में कोई कार्य न हुआ हो, वह हुआ है और निरंतर हो रहा है । लेकिन समय के साथ-साथ प्रायः नहीं हो रहा ।

जब देश स्वतंत्र हुआ तब प्रशासन का उत्तरदायित्व ऐसे लोगों ने ग्रहण किया, जिनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी-माध्यम से हुई थी । इन लोगों को शासन का कामकाज अंग्रेजी में चलाना अधिक सुविधाजनक लगता था । अपनी सुविधा के चलते ऐसे लोगों ने न तो हिंदी (या अन्य भारतीय भाषाएं) सीखने का यत्न किया और न स्वदेशी भाषा के प्रति

आसक्ति या निष्ठा दिखाई । यही दुर्भाग्य की बात थी । समय की माँग तो थी कि स्वतंत्र भारत की अपनी एक राजभाषा हो और अखिल भारतीय स्तर पर सर्वमान्य पारिभाषिक शब्दावली इस भाषा में समृद्ध की जाए । लेकिन हुआ क्या ? संविधान में तत्कालीन विचारकों और राष्ट्रवादी मनीषियों के प्रयास से हिंदी को भारत की राजभाषा एवं संपर्क भाषा बनाए जाने की व्यवस्था तो कर दी गई, किंतु व्यवहार में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को लाने के लिए उन नेताओं अथवा अधिकारियों ने कोई उत्साह नहीं दिखाया और न अपेक्षित गति से कार्य किया । उन लोगों को भ्रम था कि हिंदी सीखने में व्यर्थ परिश्रम करना होगा । योरप में विकसित ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक विचारों से संपर्क बनाए रखने के लिए भारत में ऐसी वैज्ञानिक शब्दावली अपनाई जानी चाहिए जो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आमतौर पर स्वीकार किए गए शब्दों को अधिक से अधिक स्वीकार कर ले । इस दिशा में 1948 से ही प्रयास शुरू हो गए । विश्वविद्यालय आयोग की बैठकें हुईं । सब के ये प्रस्ताव थे कि जहाँ तक हो सके हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की पुस्तकों में अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाए । यह विचार वस्तुस्थिति से कुछ दूर था । कारण कि हमारे वे विद्वान अंग्रेजी शब्दावली को ही अंतर्राष्ट्रीय मानते रहे । जबकि वास्तविकता यह है कि मात्र अंग्रेजी की शब्दावली अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनिवार्यतः स्वीकृत नहीं थी । अतः 'अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली' की संकल्पना केवल एक आदर्श था, जिसका कोई व्यावहारिक रूप संभव नहीं था ।

तब चार प्रकार की विचारधाराएं सामने आईं -

(1) उपर्युक्त स्वीकारवादी विचारधारा ।

(2) शुद्धतावादी विचारधारा, जो संस्कृत व्याकरण तथा शब्द-संपदा के आधार पर पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की पक्षधर थी । इस दिशा में डॉ॰ रघुवीर का काम उल्लेखनीय है ।

(3) प्रयोगवादी हिंदुस्तानी धारा, जो मिल-जुले हिंदुस्तानी अथवा उर्दू के शब्द लेकर पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की पक्षधर थी । पं॰ सुंदरलाल, डॉ॰ जाकिर हुसैन, हिंदुस्तानी कल्चर सोसाइटी तथा उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद आदि के काम इसी विचारधारा के अधीन हैं ।

(4) समन्वयवादी विचारधारा अथवा मध्यवादी विचारधारा, जिसका अनुसरण प्रायः सरकारी शब्द-निर्माण संस्था ने किया ।

निश्चय ही सभी तरह की 'अतियों' से बचकर हमें समन्वयवादी दृष्टि अपनाने की आवश्यकता थी । 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' का भी यही दृष्टिकोण है - (1) सर्वप्रथम हिंदी के उपलब्ध शब्द-भंडार का उपयोग हो, (2) तत्पश्चात् हिंदी में रच-बस चुके सभी देशी, अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशी शब्दों को लिया जाए, (3)

मजबूरी में यदि किसी अप्रचलित विदेशी शब्द को हिंदी में लेना पड़े तो उसका 'अनुकूलन' कर लिया जाए, (4) अत्यंत आवश्यक होने पर विदेशी शब्दों को शुद्ध रूप में ग्रहण कर लिया जाए ।

अंततः हमारा सुझाव है कि विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी माध्यम से वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों को पढ़ाने के लिए स्तरीय साहित्य हिंदी में उपलब्ध होना चाहिए, जिसके लिए अच्छा रहे कि उनके लेखक हिंदी में ही सोचकर लिखें । सभी तरह से परिपूर्ण सरल, स्पष्ट अर्थद्योतक शब्दावली अपनाई जाए । पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण निरंतर होता रहे और यह शब्दावली, उच्चारण, अर्थ, लघुता, उर्वरता, रूप एवं प्रसार-योग्यता आदि मानकों पर खरी हो । शब्द ऐसे हों जो भारत की अन्य भाषाओं में भी अधिक से अधिक स्वीकार्य हो सकें । हिंदी में उच्च-स्तरीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों की पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों को प्रोत्साहित किया जाए । प्रसन्नता और संतोष यह है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग इस दिशा में कई वर्षों से सक्रिय है । हमारे वैज्ञानिकों और हिंदी-प्रेमियों, अनुवादकों, शिक्षकों को चाहिए कि वे आयोग से भरपूर सहयोग करें और सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि श्रेष्ठ वैज्ञानिक अनुवाद के लिए सॉफ्टवेयर विकसित किया जाए ।

• • • • •

हिंदी में वैज्ञानिक लेखन : समस्याएं, समाधान और सुझाव

- श्री प्रेम सागर

कोई भी लेखन अथवा व्याख्यान विषय-विशेष में रुचि रखने वाले संभावित पाठक अथवा श्रोता वर्ग को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किया जाता है । वैज्ञानिक लेखन को इस दृष्टि से मोटे तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है : (1) अनुसंधान एवं शोध साहित्य, (2) विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों के अध्ययन-अध्यापन के लिए लिखा गया साहित्य, तथा (3) वैज्ञानिक जानकारी को आम जनता तक पहुँचा सकने वाला लेखन । प्रस्तुत लेख में इन तीनों वर्गों के लेखन से संबंधित अनुभव एवं अन्य समस्याओं का उल्लेख करते हुए इनके सरल समाधानों की चर्चा की जाएगी । साथ ही विज्ञान-लेखकों, प्रकाशकों तथा वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग के विचारार्थ कुछ सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा ।

सर्व प्रथम मैं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा तकनीकी शब्दावली विकसित करने की दिशा में किए गए प्रयासों और उपलब्धियों की सराहना करना चाहता हूँ । लेकिन इन सराहनीय प्रयासों के बावजूद मानक अर्थात् सर्वसम्मत तकनीकी शब्दावली का अभाव, आज भी हिंदी में वैज्ञानिक लेखन की प्रमुख समस्या है । आखिर ऐसा क्यों है ?

पिछले दो तीन सौ वर्षों में विज्ञान तथा इसकी सहोदरा प्रौद्योगिकी ने अत्यंत द्रुत प्रगति की है, और यह उत्तरोतर उन्नत हो रही है । इस प्रकार अर्जित ज्ञान अंतर्राष्ट्रीय संपत्ति है । किंतु, दुर्भाग्यवश इस दौड़ में पिछड़ जाने के कारण, इसमें भारत का योगदान बहुत अधिक नहीं रहा । इस प्रकार यह अत्यंत स्वाभाविक है कि इस विस्फोटक वैज्ञानिक प्रगति से संबंधित अधिकांश शब्दावली विदेशों में गढ़ी गई है । विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति को देखते हुए यह अधिक चिंताजनक नहीं है । हिंदी जैसी उदार और समृद्ध भाषा द्वारा इस विदेशी शब्दावली को ज्यों-का-त्यों आत्मसात् कर लेने में इस लेखक को कुछ भी आपत्ति नहीं है । आयोग ने अनेक विदेशी वैज्ञानिक शब्दों का कुछ हिंदीकरण करते हुए अनेक उदाहरणों में ऐसा किया है । उदाहरणत: फोकल लेन्थ-फोकस दूरी । लेकिन जहाँ-जहाँ किसी विदेशी तकनीकी शब्द के लिए प्रचलित हिंदी पर्यायवाची पहले से उपलब्ध है वहाँ हिंदी शब्द का बहिष्कार कर विदेशी शब्द को स्वीकार करना अनावश्यक ही नहीं अनुचित और अपनी भाषा का स्वयं अपमान करना होगा । उदाहरण के तौर पर ताँबे, या जस्ते को हिंदी में कॉपर या जिंक कहने का कोई भी औचित्य नहीं है, लेकिन यूरेनियम अथवा रेडियम का विदेशी नामकरण हिंदी में स्वीकार करना निश्चित रूप से उचित है ।

अनेक विदेशी वैज्ञानिक शब्द उस समय गढ़े गए थे जब संबंधित अनुसंधान अत्यंत आरंभिक अवस्था में था । उस समय गढ़ा गया शब्द उपलब्ध सीमित ज्ञान पर ही आधारित था । आज ऐसे शब्दों से संबंधित जुड़ा हुआ ज्ञान बहुत बढ़ चुका है जिससे विद्यार्थियों को पूरी संकल्पना ग्रहण करने में सहायता मिलेगी । इस प्रकार अध्ययन-अध्यापन में सुविधा रहेगी । 'क्रोमोसोम' शब्द के लिए 'गुणसूत्र' एक बहुत अच्छा शब्द है । संक्षेप में नई शब्दावली गढ़ने के प्रयास अनेक उदाहरणों में उचित और उपयोगी हैं और कुछ अन्य उदाहरणों में निरर्थक हैं । शब्दावली आयोग का यह सिद्धांत कि हम विदेशी तकनीकी शब्दों के केवल मूल शब्द लेकर और उसके सभी व्याकरणीय परिवर्तित रूप हिंदी व्याकरण के अनुसार बनाएं, पूरी तरह तर्कसंगत हैं । इस दृष्टि से शायद आयोग को शब्दों के व्याकरणीय स्वरूप को बदल कर, नए रूप देने से संबंधित व्याकरणीय नियमों के ज्ञान को प्रसारित करना समीचीन है, क्योंकि इनकी जानकारी वैज्ञानिकों को बहुत कम होती है । वैज्ञानिक लेखन को आम तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है : शोध-लेखन, स्कूली अध्ययन-अध्यापन संबंधी साहित्य, तथा विज्ञान को आम जनता तक पहुँचा सकने वाला साहित्य । पहले वर्ग के लेखन में प्रायः लेखक अपनी बात अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज तक पहुँचाना चाहता है । दुर्भाग्य से हिंदी में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शोध-पत्रिकाएं लगभग नगण्य हैं । साथ ही भारतीय विज्ञान तथा यहाँ की वैज्ञानिक भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचने में (हर प्रयास के बावजूद) अभी समय लगेगा । अतः वर्तमान समय में शोध-लेखों को अंग्रेजी में लिखना एक विवशता है । फिर भी इस दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रथम चरण के रूप में मेरा सुझाव है कि भारत में छपने वाली समस्त शोध-पत्रिकाओं में मूल लेख तथा उसका सार-संक्षेप अंग्रेजी में होने के साथ, हिंदी में सार-संक्षेप छापना एक अनिवार्य प्रथा के रूप में अपनाया जाए । । आयोग अपने वैधानिक अधिकारों के माध्यम से, प्रकाशकों तथा लेखकों पर अपने प्रभाव के माध्यम से, तथा भारत सरकार को निरंतर ऐसी संस्तुतियां भेज कर, निश्चित रूप से इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है । इससे आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली की ग्राह्यता, लोकप्रियता और मानकता में वृद्धि के अतिरिक्त और भी अनेक लाभ होंगे । मेरे कुछ शोध-पत्र (पुराने) चेकोस्लोवाकिया की वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं । इस पत्रिका में (जो अंग्रेजी तथा चेक दोनों भाषाओं के शोधपत्र छापती हैं) यह परिपाटी मैंने स्वंय देखी है । जापान आदि देशों में छपने वाली शोधपत्रिकाओं में भी यह देखा जा सकता है ।

अब अध्ययन-अध्यापन में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक शब्दावली की चर्चा करें । इस संदर्भ में इस वास्तविकता को स्वीकारना आवश्यक है कि आज भी हमारे देश में ऐसे स्कूल हैं, जहाँ अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाती है । स्वाभाविक है कि इन स्कूलों में प्रयोग में आने वाली पुस्तकों तथा यहाँ के अध्यापन के माध्यम से शिक्षित विद्यार्थी, केवल अंग्रेजी की तकनीकी शब्दावली ही जानते हैं । विज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने में वे तब तक पूरी तरह सक्षम नहीं हो सकेंगे जब तक वे हिंदी शब्दावली तथा इसके

मूलभूत सिद्धांतों से अनभिज्ञ रहेंगे । दूसरी ओर, हिंदी माध्यम से शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थी, यदि केवल 'सूक्ष्मदर्शी' शब्द समझते हैं और 'माइक्रोस्कोप' शब्द से अनभिज्ञ हैं तो उन्हें उच्चस्तरीय वैज्ञानिक ज्ञान अर्जित करने में कठिनाई होगी और किसी-न-किसी स्तर पर उन्हें अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली भी सीखनी होगी । इन वास्तविकताओं को देखते हुए, मेरा सुझाव है कि प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षात्मक वैज्ञानिक पुस्तकों में हिंदी पर्यायवाची शब्द तथा अंग्रेजी तकनीकी शब्द दोनों ही दिए जाएं । लेखन यदि हिंदी में है तो पाठ्य-सामग्री में प्रथम प्रयोग के समय शब्द विशेष का अंग्रेजी पर्याय देवनागरी लिपि में कोष्ठक में दिया जाए । इसी प्रकार अंग्रेजी-लेखन में हिंदी पर्याय को रोमन लिपि में लिखा जाए । इस सुझाव के व्यवहार में लाने की दिशा में भी आयोग अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है ।

अंत में हम जनसाधारण के लिए वैज्ञानिक लेखन की बात करेंगे । ऐसा साहित्य विज्ञान-वृक्ष के फलों को आम जनता तक पहुँचा सकने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है । ऐसे लेखन में शब्दों की पारिभाषिक सटीकता तथा निश्चितार्थता की अपेक्षा सहज ग्राह्यता और बोधगम्यता अधिक आवश्यक है ।

इस व्याख्यान में मैंने बार-बार अंग्रेजी तकनीकी शब्दों को बिना किसी हठधर्मिता के, स्वीकार कर लेने की बात कही है । आयोग ने इस सुझाव को आमतौर पर अपनाया भी है और अपने कोशों में शब्दों के अनेक पर्याय देते समय प्रायः मूल अंग्रेजी शब्द भी स्वीकार किया है । अतः मैं अंत में लिपि-संबंधी सुझाव भी देना चाहता हूं । देवनागरी एक ऐसी लिपि है जिसमें अंग्रेजी शब्द भी आमतौर पर अपने सही उच्चारण सहित लिखे जा सकते हैं । रोमन लिपि में, जिसमें अंग्रेजी आमतौर पर लिखी जाती है, यह गुण नहीं है । उदाहरणार्थ, 'पुट' शब्द को आप 'पट' भी उच्चारित कर सकते हैं । उसी शब्द को अंग्रेजी 'शिड्यूल' पढ़ते हैं और अमरीकी 'स्केड्यूल' । देवनागरी लिपि के इस गुण का हमें पूरा लाभ उठाना चाहिए । इससे अंग्रेजी से आत्मसात् शब्दों की सामान्य ग्राह्यता को बल मिलता है ।

किंतु अंग्रेजी शब्दों को देवनागरी में लिखने के लिए लिपि में केवल एक मात्रा की कमी है । यह 'पेन' 'pen' 'मेन' 'men' ऑफसेट 'offset' जैसे शब्द को सही उच्चारण में लिखने वाली मात्रा है । फादर बुल्के के शब्दकोश में ऐसे उच्चारणों को व्यक्त करने के लिए 'ए' की मात्रा के साथ एपोस्ट्रोफी वाले कोमा का, तथा डॉ॰ बाहरी के शब्दकोश में एक अत्यंत छोटे चंद्र का उपयोग किया गया है, जो प्रायः बिंदु मात्र सा दिखता है । आयोग ने अपने कोशों में इस उच्चारण के लिए उसी 'ए' ही की मात्रा का उपयोग किया है, जिससे अंग्रेजी का शब्द offset 'ऑफसेट' उच्चारित होता है । इस ओर ध्यान दे कर लिपि में एक मानक मात्रा का समावेश करना आवश्यक है ताकि वह कलम जिससे मैंने यह लेख लिखा है 'पेन' 'pain' न हो जाए, 'pen' ही रहे ।

*****

विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा में माध्यम-परिवर्तन और उसकी विसंगतियां

- डॉ॰ शुकदेव प्रसाद

यह ठीक है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने विज्ञान के विभिन्न विषयों की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की दिशा में अथक श्रम किया है, देशभर के विभिन्न विश्वविद्यालयों में नाना विद्वानों के साथ विचार-विमर्श कर शब्द गढ़े हैं, फलस्वरूप स्नातक-स्तरीय मौलिक पुस्तकों के लेखन/अनुवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ है, फिर भी इस दिशा में अभी बहुत-सा कार्य किया जाना शेष है ।

मैं यहाँ पर संविधान में स्वीकृत सभी भारतीय भाषाओं की बात न करके मात्र हिंदी-विषयक समस्याओं की चर्चा करूँगा और कुछ ध्यानाकर्षक बिंदुओं पर प्रकाश डालूंगा । ग्रामीण और नगरांचलों के अधिकांश छात्र-छात्राओं के विद्यालयी/माध्यमिक स्तर पर पठन-पाठन का माध्यम हिंदी है । कुछेक ही विद्यालय हैं जहाँ अंग्रेजी और अंग्रेजी का अंधानुकरण व्याप्त है । कदाचित् यह उनके अस्तित्व और कृत्रिम गरिमा के लिए अपरिहार्य भी है ।

हिंदी-भाषी छात्र जब स्नातक स्तर पर पहुँचता है तो अंग्रेजी में सारी चीजें पढ़नी होती हैं, और यहाँ पर उसे तकनीकी शब्दों के पाश में उलझ जाना पड़ता है जिससे उसे मुक्ति दिलाना ही हमारा ध्येय होना चाहिए । क्या ही अच्छा हो कि स्नातक कक्षाओं में भी शिक्षा का वही माध्यम हो जिसमें छात्र ने माध्यमिक स्तर पर शिक्षा पाई हो ! फिलहाल यह तो अभी दु:स्वप्न ही है ।

5 अगस्त, 1978 को इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान संगोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण में प्रख्यात गांधीवादी वैज्ञानिक डॉ॰ आत्माराम ने इस समस्या पर विधिवत् प्रकाश डाला और कई व्यावहारिक पक्षों पर चर्चा की थी । उनके व्याख्यान के कुछ अंश यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा :

'ये सब कह रहे हैं और काफी समय से कह रहे हैं कि विज्ञान और अन्य विषयों का पठन-पाठन मातृभाषा में हो । प्रश्न है, हो कैसे ? देश के लिए विज्ञान की आवश्यकता है उसका योगदान बड़ा जरूरी है । जब विज्ञान की प्रगति की बात आती है तो विज्ञान की शिक्षा का प्रश्न आता है । परंतु ये सब समस्याएं आखिर में आकर अटक जाती हैं भाषा पर ।

'दूसरी भाषा में विज्ञान की शिक्षा पाने के लिए अड़चन पड़ती है, इसका कुछ अनुभव मुझे हुआ । बात पचास वर्ष से भी पहले की है । मैंने हिंदी में मिडिल पास करके

निजी तौर पर मैट्रीकुलेशन उर्दू व फारसी लेकर लगभग दो वर्ष अंग्रेजी पढ़कर किया था। उसके बाद इंटर में साइंस ले ली - इस ख्याल से कि उन दिनों साइंस शिक्षकों की कमी रहती थी, यदि साइंस में बी.एससी. पास कर ली तो नौकरी मिल जाएगी।

'दाखिला तो साइंस में ले लिया पर सिवा गणित के किसी दूसरे विषय को मैंने पढ़ा ही नहीं था। भौतिकी, रसायन का नाम पहले सुना नहीं था। मुझे सबसे ज्यादा दिक्कत इसलिए हुई कि क्लास में सारे लेक्चर अंग्रेजी में होते थे, उस पर नया विषय। भौतिकी के प्राध्यापक अक्सर लेक्चर में कहते थे - ग्राम ऑफ वाटर। मैं बड़े दिनों तक सोचता रहा कि 'ग्राम ऑफ वाटर', यानी 'पानी का चना', क्या चीज है ? बाद में जब एक दिन उन्होंने आर्किमिडीज का सिद्धांत समझाते हुए बीकर में पानी डाला और तोला तब मुझे पता चला, कि 'ग्राम' चना नहीं, तौल की इकाई है।

'फिर हुई छमाही परीक्षा। बड़ी हिम्मत करके परीक्षा तो दी, पर जब नतीजा आया तो बड़ी निराशा हुई। गणित में तो मेरे नंबर 'विशेषता' को भी पार कर गए थे, लेकिन भौतिकी और रसायन दोनों में दस से अधिक नंबर न मिले। अब मैं विषय बदलने के ख्याल से स्वीकृति के लिए गया तो रसायन के अध्यक्ष प्रो॰ राणे को यह बात जँची नहीं। उनकों मैंने बतलाया - अंग्रेजी में मुझे कुछ समझ में नहीं आता है। मैंने स्कूल में अंग्रेजी पढ़ी नहीं। न मालूम क्यों उन्होंने मुझे प्रो॰ फूलदेव सहाय वर्मा के सुपुर्द कर दिया। एक बार जब वर्मा जी ने रसायन विज्ञान की मूल बातें हिंदी में समझा दीं तो गाड़ी चल पड़ी। यदि प्रो॰ वर्मा का निर्देश न मिलता तो मैं फारसी या गणित ही पढ़ता।

'क्योंकि मैं खुद इस रास्ते से गुजर चुका हूँ, इसलिए उन बच्चों की दिक्कत समझ सकता हूँ जिन्हें विज्ञान ऐसी भाषा में पढ़ना पड़ता है, जो घर में बोली नहीं जाती और जो उनकी अपनी भाषा नहीं है।'

वैज्ञानिक विषयों के पठन-पाठन में माध्यम उतनी बड़ी बाधा नहीं है जितनी कि तकनीकी शब्दों की जटिलता। तकनीकी शब्दों की जटिलता में विद्यार्थी उलझ कर रह जाता है और पाठ्य-सामग्री उसकी समझ के परे हो जाती है। शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावलियां ही पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित की जानी चाहिए। लेकिन देखा गया है कि आज भी अधिकांश लेखक मनमाने ढंग से उन्हें व्यवहृत करते आ रहे हैं। पेशेवर अनुवादकों का तो कहना ही क्या ? कृषि मंत्रालय की एक वार्षिक रपट में 'लैंगिक खाद' पढ़कर लोगों का माथा चकरा गया। वस्तुतः यह 'ऑर्गैनिक मैन्युअर' का हिंदी अनुवाद था।

शब्दावलियों में एकरूपता का अभाव है। मानक शब्दावली का निर्माण और उनके संप्रयोग पर दृढ़ता से पालन करने की एक आचार-संहिता निर्मित होनी चाहिए।

एक अरसे तक डॉ॰ रघुबीर का कोश ही तकनीकी पुस्तकों के अनुवाद यानी हिंदी में मौलिक लेखन का आधार रहा है। डॉ॰ रघुवीर के कोश के आधार पर जो किताबें लिखी

गई, आज पढ़ी जाएँ तो यह सहज ग्राह्य नहीं होगा कि आज से कोई 40-50 साल पहले ऐसी गरिष्ठ भाषा लिखी जाती थी । उस समय की शब्दावली की एक झलक आपको निम्नलिखित उदाहरणों से मिलेगी :

प्रलंब जिह्वा शुकपरी	(माउंटेन केमेलियन)
छद्म मूर्च्छालु	(ओपोसम)
मक्षिका - बंधनी	(वीनस फ्लाई ट्रैप)
प्याली - पाशीय	(बटरवर्ट)
ओषजन	(ऑक्सीजन)
नत्रजन	(नाइट्रोजन)
मत्स्यगोधिका या मीन सरट	(इक्थ्योसॉर)
सिंधुगोधिका या सिंधु सरट	(प्लेसियोसॉर)
महागोधिका या दानव सरट	(डाइनोसॉर)
पृष्ठ-कंटकी	(डिमेट्रोडोन)

इन उदाहरणों से आप समझ सकते हैं कि प्रारंभिक शब्दावली में लोकप्रियता के कितने आसार थे ! ऐसी जटिल शब्दावली न तो चल सकती थी और न चली ही ।

शब्दावली-निर्माण की दिशा में फिर कुछ सार्थक प्रयास हुए । हिंदी परिषद्, प्रयाग (हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के लिए कोश का निर्माण किया डॉ॰ सत्यप्रकाश ने । नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी और विज्ञान परिषद्, प्रयाग ने कोश तैयार करवाए । अंततोगत्वा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने जब इस दिशा में प्रयास किए तो इसमें गतिशीलता आई । शब्दावलियों के मानकीकरण का प्रयास करने पर इसमें और त्वरा आ सकती है तथा लक्ष्य तक पहुँचने में हमें सहजता होगी ।

शब्दावली-निर्माण की भी अपनी विसंगतियां हैं । शब्दों में बोधगम्यता, सहजता के साथ ही अर्थ-बोध भी होना चाहिए जिससे कि वे प्रचलन में आ सके । तकनीकी शब्दों की जटिलता इस मार्ग में भारी अवरोध है । जिन लेखकों ने डिग्री स्तर की विज्ञान-विषयक पुस्तकें लिखी हैं, उन्हीं को फिर से पढ़ने को वही पुस्तकें दी जाएं तो उन्हें अपना ही लिखा हुआ समझने के लिए पारिभाषिक शब्दों के मूल अंग्रेजी शब्द देखने होंगे । वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने आयुर्विज्ञान, भौतिकी, रसायन, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, कंप्यूटरविज्ञान विषयक शब्दावलियों का निर्माण कर लिया है । फिर भी इनमें भी परिष्कार की व्यापक संभावनाएं हैं । कुछेक हिंदी पुस्तकों से, जो इन्हीं के आधार पर लिखी गई हैं अथवा अनूदित हुई हैं, कुछ अंश उद्धृत हैं, जो इस धारणा की पुष्टि करते हैं :

'प्रकाश-संश्लेषी पटलिकाओं के सतह पर फाइकोइरिथ्रिन युक्त गोलाकार तथा फाइकोसियानिन युक्त चकती आकार फाइको बीलीसोम अनुरेखीय रूप से व्यवस्थित होते

हैं । हरिताणु परिवर्धन की प्रारंभिक अवस्थाओं में प्रथम थाइलेक्वायड हरिताणु के अतिरिक्त घटक के अंतर्वेशन के रूप में उत्पन्न होता है, जबकि अनुगामी थाइलेक्वायड प्रथम निर्मित थाइलेक्वायडों के अंतर्वेशन से निर्मित प्रतीत होते हैं ।'

(शैवाल परिचय, उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1974 पृ.92)

एक अन्य पुस्तक (अनूदित) का अंश देखिए (यह अंश पेंटोक्सिलेलिज अध्याय के परिचय के रूप में दिया गया है) :

'जीवाश्म पौधे, वृद्धिज प्रकृति अज्ञात, किंतु संभवतः क्षुप अथवा अत्यंत छोटे वृक्ष । प्ररोह लंबे अथवा छोटे, छोटे प्ररोहों पर , सर्पिल विन्यास में पर्ण, तथा शीर्ष पर जननांग स्थित । स्तंभ बहुरंगी । काष्ठ अरें एक-प्रतिबद्ध । पर्ण मोटे, सरल एवं मालाकार । ।शेयविन्यास मुक्तांत (शाखा-मिलन बहुत विरल) । मादा अंग सवृंत शहतूत-सम, बीज अवृंत, अध्यावरण के बाहरी गूदेदार परत से लग्न । नर अंग एक चक्र में स्थित, अनेक शाखित बीजाणुधानीधर, जो आधार पर संयोजित होकर चक्रिका बनाते थे ।' (अनावृतबीजी की आकारिकी, ले. स्पोर्न, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 75) ।

स्वाभाविक है कि ऐसी बोझिल पुस्तकों को विद्यार्थी नकार देगा । परिणाम है कि हिंदी में मौलिक/अनूदित प्रभूत रचनाओं के बाद भी आज महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में हिंदी माध्यम से पठन-पाठन का वातावरण नहीं निर्मित हो सका - शोधपत्रों के लेखन की बात तो न के बराबर है ।

पाठ्य-पुस्तकों के लेखन में ही नहीं, कार्यालयों में भी प्रयुक्त हिंदी जटिलता का मोहपाश नहीं तोड़ सकी है । हिंदी में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्द प्रयुक्त होते हैं । लेकिन मंत्रालयों, विभागों और कार्यालयों में नियुक्त हिंदी अधिकारी-गणों ने तत्सम शब्दों को छोड़कर बाकी शब्दों का निषेध कर रखा है । इन विभागों में अंग्रेजी से हिंदी में जो अनुवाद होता है, उसमें तत्सम शब्दों की इतनी भरमार होती है कि वह अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोगों के परे हो जाता है । उदाहरण के लिए, 'बीजक' के लिए 'बिल', 'अधिशेष' के लिए 'बाकी' लिखा जा सकता है । प्रचलित शब्दों को प्रयोग में लाया जाए तो उससे भाषा की सहजता, बोधगम्यता और बढ़ेगी ही । अतः अनुवाद करते समय हमें राजभाषा-विषयक नियमों के अनुपालन में इतनी कठोरता नहीं बरतनी चाहिए । कुछ अनुवादों की बानगी देखिए :

'अब राजभाषा विभाग द्वारा गहन प्रयास शुरू कर दिए गए हैं और निरंतर प्रबोधन किया जा रहा है ।'

'कक्षाओं में आने-जाने के मार्ग-व्यय की प्रतिपूर्ति की जाती है ।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन वाक्यों को और सरल ढंग से भी लिखा जा सकता है ।

जिन शब्दों के लिए सहज और बोधगम्य शब्द गढ़ने कठिन हों, उनकी जटिलता को दूर करने के लिए हमें अंग्रेजी शब्दों को उसी रूप में प्रयुक्त करने में हिचक नहीं होनी चाहिए, जैसा कि 'ओषजन' और 'नत्रजन' को नकार कर ऑक्सीजन और नाइट्रोजन व्यवहृत हो चले हैं। अन्य शब्दों के भी बारे में हमें ऐसा ही करना होगा।

आज मीडिया ने 'जीन', डी.एन.ए. फिंगर-प्रिंट, कैटस्केन, अल्ट्रा-साउंड, एक्स-रे जैसे शब्दों को आम लोगों की जुबान पर चढ़ा दिया है। अतः शब्दावली की सुग्राह्यता के लिए हमें अपनी जिद छोड़नी होगी और अपने शब्द-भंडार में अंग्रेजी के बहुत-से शब्दों का मूल रूप में समावेश करना होगा। जरूरी नहीं कि हम 'एक्स-रे' के लिए 'क्ष-किरण' ही लिखते रहें।

प्रादेशिक हिंदी ग्रंथ अकादमियों को मात्र पुस्तकों की संख्या बढ़ाने के लिए इस कार्य में इतनी तेजी नहीं दिखानी चाहिए कि जिसका परिणाम यह हो कि अनुपयोगी पुस्तकों से गोदाम के गोदाम भर जाएँ और बिक्री-बट्टे के नाम पर उपलब्धि नगण्य हो।

अनुवाद के नाम पर अनेक संस्थाओं ने धड़ाधड़ पारिश्रमिक सुनिश्चित करके कम अनुभवी लेखक-प्राध्यापकों से इतनी किताबें तैयार कराईं कि न तो उनकी भाषा शैली/ विषय-प्रस्तुति की जाँच-पड़ताल हो सकी और न ही नियोजकों ने यह देखा कि ये तकनीकी पुस्तकें कितनी पुरानी हैं।

आजकल नित नए हो रहे नवोन्मेषों में जितनी तेजी से वृद्धि हो रही है, उससे कहीं अधिक तेजी से विभिन्न माध्यमों से ज्ञान का तीव्र प्रसार हो रहा है जिसे मानवीय ज्ञानेंद्रियां अपनी सीमाओं के कारण सहजता से समेट नहीं सकती हैं। मानव-निर्मित मशीनें अलबत्ता इन्हें समेट सकती हैं ।ऐसे में 25-30 वर्ष पुरानी पुस्तकों के अनुवाद निरर्थक हैं।

प्राध्यापन और लेखन भिन्न-भिन्न विधाएं हैं। मात्र महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों के अध्यापक ही अनुवाद/मौलिक लेखन के लिए अनुबंधित किए जाने चाहिए, इस नियम में छूट देनी होगी। कम-से-कम अनुवाद के मामले में तो इस नियम को तिलांजलि देनी ही होगी।

उपर्युक्त बिंदुओं पर गंभीरता से विचार-विमर्श हो, इन विधाओं से जुड़े बौद्धिक लोगों के बीच खुली परिचर्चा हो तो उक्त समस्या का समाधान संभव है। हाँ, पूर्व-निर्धारित सरकारी मापदंडों से रंचमात्र विक्षेप की संभावना न प्रतीत होती हो तो स्वाधीनता के पाँच दशक बाद तो क्या सदियों बाद भी हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में स्नातक/स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षण का संकल्प कभी भी संपूरित नहीं होगा। हिंदी या अन्य भाषाओं में पढ़ना-पढ़ाना मात्र सपना ही रह जाएगा।

०००००

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा क्यों ?

- श्री प्रेमानंद चंदोला

इस पृथ्वी पर जैव विकास की दीर्घकालीन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मानव या कहिए 'बुद्धिमान मानव' (विस्डम मैन) अब तक सर्वोच्च विकसित सामाजिक तथा प्रबुद्ध प्राणी है । अन्य प्राणियों के विपरीत वह बोल सकता है, पढ़ सकता है, लिख सकता है और अपने प्रगतिपरक व्यक्तित्व के उन्नयन और कार्यकलापों के विकास के लिए, सीखने की अनवरत क्रिया द्वारा, स्वयं को हर पहलू से परिपूर्ण बनाना चाहता है । इस हेतु उसने समय की ताल पर अनथक अनुसंधान और परिश्रम किया । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, विचार-विनिमय के संदर्भ में, उसने संकेत और प्रतीकों के अनंतर सुविचारित बोली, भाषा और लिपि का अविष्कार व विकास किया ताकि भौतिक जगत की सभी परिघटनाओं, प्रक्रमों और संकल्पनाओं का बोध हो और उसके भावों, विचारों और इच्छाओं की अपेक्षित अभिव्यक्ति हो ।

धीरे-धीरे सुविधानुसार और इच्छानुसार अलग-अलग समाजों, समुदायों, कबीलों, प्रजातियों, प्रभेदों आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न बोलियों अथवा उपभाषाओं, लिपियों का प्रचलन होने पर क्षेत्रीय वाक्व्यापार शुरू हो गया । शब्द भाषा की इकाई है । शब्दों के ताने-बाने से ही भाषा निर्मित होती है जो साहित्य सृजन का परम साधन है । शब्द, भाषा और साहित्य का अभिन्न संबंध है । शिक्षा और साहित्य के द्वारा ही ज्ञान का आदान- प्रदान होता है । ज्यों-ज्यों मानव उन्नति करता गया वह उत्तरोत्तर प्रबुद्ध होता गया । ज्ञानार्जन के व्यवहार-क्षेत्र में शनैःशनैः बहुआयामी साहित्य की रचना होती गई और वह विपुल परिमाण में विन्यस्त होता गया । ज्ञानार्जन के इस प्रक्रम में शिक्षा बुद्धिमान मानव के व्यक्तित्व विकास की अभिन्न मद बन गई ।

सार रूप में परिभाषित किया गया है कि - 'शिक्षा, ज्ञानार्जन की उन मिली-जुली प्रक्रियाओं का संकुल है जिसके माध्यम से मानव के शारीरिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, भावात्मक, सामाजिक आदि पक्षों का अधिकतम विकास होता है । इसी पर आधारित है हमारी पुरानी उक्ति - 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् ज्ञान मुक्ति का साधन है ।

भाषा मानव-जाति का विचार-विनिमय, अभिव्यक्ति और संचार का अनूठा साधन है । भाषायी बहुलता के साथ विश्व में अनगिनत बोलियां और लिपियां हैं । विभिन्न भूभागों, प्रदेशों, क्षेत्रों में बाजारू या बोलचाल की भाषा के भी अनेक रूप होते हैं, लेकिन साहित्य और शिक्षण की भाषा सर्वत्र कमोवेश विशुद्ध रूप वाली भाषा होती है । तभी

मानक रूप में ज्ञान-विज्ञान की पाठ्य सामग्री की सही प्रस्तुति होती है । आज विश्व में जो भाषाएं अधिक विकसित और लोकप्रिय हुई हैं वे प्रगत पारिभाषिक शब्दावली के बलबूते पर ही हुई हैं ।

शिशु का जीवन माँ के गर्भ से प्रारंभ होता है और वहीं उसका परिवर्धन और विकास भी । बच्चे की शिक्षा का शुभारंभ भी माता के गर्भ से लेकर उसकी गोदी में ही होता है । बच्चे में भाषा, शिक्षण और संस्कारों का सूत्रपात माता के रक्त-दुग्ध-संचार तथा ममता व वात्सल्य मिश्रित स्फुट वाणी के माध्यम से ही होता है । इसीलिए मातृभाषा की महत्ता है कि वह बच्चे के देह-तंत्र के क्रियाविज्ञान में रच-पच कर व्याप्त हो जाती है और उस पर अमिट छाप छोड़ती है । पितृ-प्रधान समाज में भी वस्तुतः माता ही बच्चे की सर्वप्रथम गुरु है और पिता, दादा-दादी तथा पाठशाला गुरु-माता के बाद के गुरु हैं । यह निर्विवाद वैज्ञानिक सत्य है ।

शिक्षा का उद्देश्य 'व्यक्तित्व का विकास' है न कि उसका ह्रास । व्यक्तित्व विकास की यह प्रक्रिया घर व विद्यालय के भीतर तथा बाहर के परिवेश में भी चलती रहती है । व्यक्तित्व एक व्यापक शब्द है जिसमें सामान्यतया जीवन-संबंधी सर्वांगीण विकास निहित समझा जाता है । इसमें व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, भाषिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, उदात्त, सांस्कृतिक आदि लक्षणों को समाविष्ट माना जाता है । चरित्र, स्वभाव और प्रकृति भी व्यक्तित्व के अंग हैं । व्यक्तित्व घर, पास-पड़ोस, शिक्षण संस्था, भौतिक तथा सामाजिक वातावरण आदि से प्रभावित होता है । समुदाय की समग्र जीवनचर्या को विशिष्ट अर्थ में अगर एक शब्द में प्रकट किया जाए तो वह 'संस्कृति' है । संस्कृति के साथ परंपराएं भी समान रूप से प्रवहमान होती हैं । यों तो संस्कृति शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है लेकिन शिक्षा के संदर्भ में इसका तात्पर्य उच्च-स्तरीय बौद्धिक व कलात्मक उत्कृष्टता और निजी भाषा व देश के प्रति नागरिकों के प्रेम से भी है ।

बात शिक्षण और भाषा की चल रही है । विडंबना यह है कि हम ममतामयी मातृभाषा को छोड़कर गौरांग प्रभु की भाषा अंग्रेजी के मोहपाश में फंसे हुए हैं । गुलामी के परिणामस्वरूप हम भारतीयों पर अंग्रेज शासकों की संप्रभुता से पूरे देश में अंग्रेजी भाषा व्याप गई । लॉर्ड मैकॉले द्वारा आरोपित शिक्षा-नीति का मकड़जाल भारत पर आकाश-बेल की तरह छा गया । हम अंग्रेजी के अंधमोह में ऐसे फंसे कि आज उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं । आज हम अंग्रेजों के गुलाम नहीं हैं पर अंग्रेजी के गुलाम बने हुए हैं । अंग्रेज चले गए हैं पर अंग्रेजी छोड़ गए हैं । अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है, उसका बोलबाला है । हमने अपने गौरवशाली अतीत को भुला दिया है । आज आवश्यकता है कि हम चेतते हुए अपनी निज की भाषाओं को अपनाएं अन्यथा हमारे सारे क्रियाकलाप बेमानी कहे जाएंगे ।

मातृभाषा अधिगम और अभिव्यक्ति का सहज, प्राकृतिक और मनोवैज्ञानिक माध्यम है । हर पहलू से यह शिक्षा का इष्ट और अभीष्ट माध्यम है । इसके द्वारा ज्ञान अर्जन करने में विद्यार्थी को सुगमता, सुविधा तथा सरलता का अनुभव होता है और वह रुचिपूर्वक दुरूह से दुरूह तथा क्लिष्ट से क्लिष्ट सामग्री को भी अच्छी तरह समझ लेता और प्रकट कर सकता है । सीखने की प्रक्रिया मैं महत्वपूर्ण बात है विषयवस्तु अथवा पाठ्य-सामग्री को समझना, उसे आत्मसात् करना और फिर आवश्यकतानुसार बिना अतिरिक्त श्रम के अभिव्यक्त कर पाना । अपनी भाषा में यह प्रक्रिया बड़ी सरल होती है तथा विद्यार्थी पर कोई जोर नहीं पड़ता और वह आसानी से अपनी सुगम शैली में उसे व्यक्त कर पाने में सफल रहता है ।

स्वाभाविक रूप से व्यक्ति पहले अपनी मातृभाषा में ही सोचता व चिंतन-मनन करता है और प्रस्तुतीकरण हेतु उसे फिर अन्य भाषा में ढालता है । विद्यार्थी पर अनचाहे विदेशी भाषा थोपने पर न तो वह ठीक से समझ पाता है और न अभिव्यक्त ही कर पाता है । विदेशी भाषा के माध्यम से विषय को समझने के लिए पहले शब्दावली व भाषा को समझना होता है और फिर विषय को । भाषा समझ में नहीं आएगी तो विषयवस्तु कैसे समझ में आएगी । विदेशी भाषा का अतिरिक्त भार उस पर निस्संदेह अनावश्यक दबाव डालता है और अतिरिक्त ऊर्जा-क्षय के बाद भी जब विषय-सामग्री बोधगम्य नहीं होती तो परीक्षा उत्तीर्ण करने के उद्देश्य से मजबूरी में उसे वह रट लेता है । फलस्वरूप वह अप्राकृतिकऔर अवैज्ञानिक प्रकार की तोता-रंटत (पैरट लर्निंग) शैली का सहारा लेता है । इसके अलावा उसके पास कोई चारा नहीं होता । परीक्षा पास करने के लिए वह घोटा लगाकर बिना सोचे- समझे सामग्री को ज्यों-का-त्यों दूसरी भाषा में उगल देता है ।

शिक्षण में मातृ-भाषा से वंचित रहने पर विद्यार्थी के व्यक्तित्व पर हतोत्साहित करने वाले अनेक ह्रासकारी प्रभाव पड़ते हैं । विद्यार्थी की सोचने-विचारने, चिंतन-मनन, वर्णन करने, विश्लेषण करने तथा अभिव्यंजना वाली क्षमताएं विकसित न होकर कुंठित रह जाती हैं । विदेशी भाषा के समुचित प्रकार से ग्राह्य न होने पर अनेक होनहार, मेधावी तथा कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी अपेक्षतया पिछड़ते जाते हैं और उतने सक्षम व सफल नहीं हो पाते जितना कि उन्हें होना चाहिए था । विदेशी भाषा के मारे वे माथा पीटकर भाग्य को कोसते रहते हैं ।

विचार और विश्लेषण करें तो पता चलता है कि व्यावहारिक स्तर पर अंग्रेजी माध्यम से परीक्षाएं पास करने के बाद भी आए दिन के राजकाज और व्यवहार-क्षेत्र में राज्य अथवा प्रदेश की भाषा में ही प्रशासनिक कार्य चलता है । आई.ए.एस., आई.पी.एस., थल-सेना के अधिकारी तथा अदालतों/न्यायालयों के न्यायाधीश व विभूतियां और एडेवोकेट-वकील आदि भी अपने राज्य की अथवा अपनी रेजिमेंट, पलटन या टुकड़ी की भाषा में ही वाक्-व्यापार, बोलचाल और जिरह-बहस करते हैं । उन्हें आम आदमी के संपर्क में जो

रहना पड़ता है । सिविल तथा पुलिस सेवा के प्रशासनिक अधिकारी, मैजिस्ट्रेट, पुलिस अधिकारी आदि रोजमर्रा के आम आदमी की भाषा में ही बात करते हैं । सेना की टुकड़ी के अधिकारी और कर्मचारी अपनी पल्टन की भाषा जल्दी ही सीख लेते हैं जिससे दलगत तथा बंधुता की भावना को बल मिलता है और वे भाषायी स्नेह-सूत्र में बंधकर एकात्म होकर कार्य करते हैं ।

विश्वविद्यालय स्तर तक भी मातृभाषा में ही अध्ययन-अध्यापन होना चाहिए । सभी विद्यार्थी उच्च शोध और अनुसंधान में प्रवृत्त नहीं होते । कुछ मेधावी छात्र ही स्वेच्छा से विदेशी भाषा सीखते हैं । विश्वविद्यालय के शिक्षक के रूप में वे उसके माध्यम से ज्ञान अर्जन कर उसका लाभ अपने विद्यार्थियों को दे सकते हैं । इसीलिए कुछ विश्व- विद्यालयों और विज्ञान के विषयों की परंपरा है कि बिना विदेशी भाषा सीखे और उसका प्रमाण-पत्र प्राप्त किए उन्हें पीएच.डी. की उपाधि नहीं दी जाती । इनका प्रतिशत कम ही होता है और वे कुछ अत्यंत मेधावी विद्यार्थी होते हैं जो इच्छानुसार विदेशी भाषा की ओर ललकते हैं । अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ने वाले डॉक्टर और इंजीनियर भी आम लोगों, ठेकेदारों, मिस्त्रियों, मजदूरों वगैरह से राज्य की भाषा में ही कार्य-व्यापार करते हैं । सार-रूप में यही कहेंगे कि इस प्रकार विदेशी भाषा कहाँ युक्तिसंगत प्रतीत होती है, भले ही लीक पीटी जा रही है ।

वकालत की जाती है कि भारत की प्रशासनिक भाषा और दुनिया की संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का निरंतर प्रयोग चलते रहना चाहिए । लेकिन ये लोग जानते नहीं कि राष्ट्र की उन्नति और विकास में भाषा का भी कोई महत्व है । ये सांस्कृतिक एकात्मता और परंपरा तथा संस्कृति के प्रतीक के रूप में स्वदेशी भाषा के महत्व को नजरअंदाज कर देते हैं । भाषा राष्ट्रीय जीवन का ऐसा महत्वपूर्ण पहलू है जिसका अनुभव प्रायः नहीं किया जाता । निज की भाषा राष्ट्रीय आत्मा की अभिव्यक्ति की प्रत्यक्ष वाहिका है । भाषा राष्ट्र की प्राणशक्ति है, देश की मिट्टी में प्रवाहित होने वाला रक्त है । ठीक उसी तरह जिस तरह मानव के संपूर्ण शरीर में खून बहता है । यह वह वाहिका है जिसके द्वारा राष्ट्र की आत्मा प्रकट रूप से सभी इकाइयों को प्रभावित करते हुए विकास के सोपानों को अबाध गति से पार कर सकती है ।

यह मात्र एक घटना या संयोग नहीं है कि फ्रांस, जर्मनी, जापान, इटली सरीखे विकसित तथा खुशहाल देश अपनी ही भाषा पर दृढ़ हैं, भले ही वे दुनिया की उच्चतर प्रौद्योगिकी के प्रसंग में संचार और संप्रेषण संबंधी बाधाएं महसूस करते हैं । यह इसलिए नहीं कि ये देश अंग्रेजी सरीखी आम भाषा नहीं अपना सकते । देखा जाए तो आज कंप्यूटर, उन्नत शैक्षिक उपकरणों और 'इंटरनेट' सरीखे परिष्कृत संचार-तंत्र वाली अत्याधुनिक यंत्र सामग्री से यह अपेक्षित परिवर्तन बहुत सुगम होगा । लेकिन विशिष्टता यह है कि ये देश अपने लोगों में एकता-संवर्धन, आत्मीयता और देश-प्रेम का वातावरण बनाने की दिशा में

अपनी भाषा के महत्व को भली भांति समझते हैं और देश-निर्माण के रचनात्मक प्रक्रम में निचले स्तर से लेकर ऊपर के प्रत्येक नागरिक के जुड़े रहने की आवश्यकता को सर्वोपरि मानते हैं ।

अंग्रेजी का नारा लगाने वाले केवल थोड़े से ही या कहिए लगभग 18 प्रतिशत अंग्रेजीदां लोगों के संकीर्ण विचारों, संकुचित मनोवृत्ति और निहित स्वार्थों की करामात है कि वे सक्षम स्वदेशी भाषा की स्थापना में अवरोध डालते हैं । दु:खी मन से भारी शब्दों में कहना ही पड़ेगा कि ऐसे लोग इस परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक शक्ति तथा जन संचार-माध्यमों की शक्ति का दबाव भी डालते हैं । संकेत रूप में इतना कहना पर्याप्त होगा ।

पुन: रेखांकित कर दें कि मातृ-भाषा देश-रूपी देह की प्राण शक्ति है । हर तरह से पोषित करते हुए हम यदि इसे अपनी सांस्कृतिक बंधता तथा राष्ट्रीय परंपराओं के अनुकूल रखेंगे तो यह सही मायने में राष्ट्रीय विकास की दिशा में उपयोगी साबित होगी । अत: स्कूल-कालेज से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक निरंतर अध्ययन-अध्यापन मातृभाषा के माध्यम से ही श्रेयस्कर है ।

विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी माध्यम से सामाजिक विज्ञानों के अध्यापन की समस्याएँ

- डॉ॰ जे॰ पी॰ पचौरी

सामाजिक विज्ञानों में मनुष्य के सामाजिक संबंधों, समस्याओं एवं विचारधाराओं का अध्ययन किया जाता है । यह माना जाता है कि संसार में मनुष्य के जन्म लेते ही समाज का निर्माण हो गया था तथा समाज के निर्माण के साथ ही लिखित अथवा अलिखित रूप में समाजविज्ञानों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में रहा होगा । आज भी कुछ सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाज, अंधविश्वासों एवं प्रथाओं का पालन समाज में लिखित अथवा अलिखित नियमों की अपेक्षा अधिक स्वेच्छा तथा समाजिक दबाव के कारण किया जाता है । प्राचीन काल में यही परंपराएं, रूढ़ियां, तथा धार्मिक विश्वास मनुष्य के अलिखित सामाजिक विज्ञान के रूप में प्रचलित रहे होंगे, जिन्हें धीरे-धीरे लिपि के प्रचलन के साथ मनुष्य ने लिपिबद्ध करना शुरू किया ।

आधुनिक शिक्षा के प्रचलन तथा सभ्यता के प्रसार के बाद सामाजिक वैज्ञानिकों ने सामाजिक संबंधों तथा समस्याओं एवं परंपराओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण प्रारंभ किया जिससे सामाजिक विज्ञानों के कई विशिष्ट क्षेत्रों के आधार पर अलग-अलग विधाओं का जन्म हुआ । जब मनुष्य का तकनीकी ज्ञान अधिक विकसित नहीं हुआ था, प्रेस का आविर्भाव नहीं हो पाया था और आवागमन के साधन उपलब्ध न थे तब क्षेत्रीय भाषा के आधार पर हस्तलिखित पुस्तकों का जन्म हुआ । सन् 1450 में जर्मन के वैज्ञानिक कैक्सटन ने प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार किया । टेक्नोलॉजी के विकास के फलस्वरूप राष्ट्रीय भाषाओं में प्रिंटिग प्रेस का उपयोग किया गया । एक दूसरे के संपर्क में आने के कारण एक भाषा के साहित्य का दूसरी भाषाओं में अनुवाद होने लगा । समृद्ध भाषाओं में अधिक साहित्य का सृजन हो गया इसलिए प्रत्येक भाषा-भाषी लोगों का यह प्रयास रहता है कि अपनी भाषा में साहित्य लिखकर या समृद्ध भाषाओं के साहित्य का अनुवाद कर अपने भाषा के साहित्य को समृद्ध करें ।

हिंदी भाषा का विकास

हमारा देश 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ था । हमने 26 जनवरी, 1950 को लागू अपने संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया तथा कुछ समय के लिए द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रचलन भी जारी रखा । राष्ट्रीयता के जोश में

तथा भावावेश में हमारे नेताओं ने हिंदी को राष्ट्रभाषा तो स्वीकार कर लिया, परंतु स्वयं अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त होने के कारण वे लोग स्वयं ही हृदय से इसे स्वीकार नहीं कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि संविधान लागू होने के 36 वर्षों के बाद भी हम हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं दे पाए हैं।

यद्यपि हमने हिंदी को विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया, परंतु आज भी राष्ट्रभाषा का स्थान तो दूर रहा हम हिंदी को सरकारी भाषा भी कह सकने में समर्थ नहीं हैं। उदाहरणार्थ, प्रत्येक डाकघर में हिंदी सप्ताह मनाया जाता है तथा यह निर्देश लिखे मिलते हैं कि तार हिंदी में कीजिए, परंतु वहाँ हिंदी में तार करने वाला ऑपरेटर ही नियुक्त नहीं किया जाता है। यही नहीं, हिंदी में भेजा जाने वाला तार अंग्रेजी में भेजे जाने वाले तार से विलंब में प्राप्त होता है क्योंकि उसे लंबे मार्ग से भेजा जाता है। दूसरी ओर केंद्रीय सरकार, जो हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिलाने के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदायी है, आपको प्रायः सभी पत्रों का जबाव हिंदी में नहीं दे सकती है। यही नहीं, हिंदी भाषा के सचिवालय तथा संस्कृत संस्थान जैसी संस्थाओं से भी जवाब प्रायः अंग्रेजी में ही मिलता है। ऐसी दोहरी नीति के कारण हिंदी को विश्वविद्यालयी शिक्षा का माध्यम स्वीकार करना स्वंय ही निरर्थक साबित हो जाता है। प्रसिद्ध साहित्यकार भगवतीचरण वर्मा ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' में एक स्थान पर लिखा है कि 'महान कलाकार आवेश के क्षणों में सूक्तियों में बोलते हैं। परंतु आज का महान भारतीय आवेश के क्षणों मे सूक्तियों में नहीं अपितु फर्राटेदार अंग्रेजी में बोलकर अपनी विशिष्टता जाहिर करता है।'

हिंदी तथा राष्ट्रीय एकता

भारत में क्षेत्रीय जाति-प्रजाति, धर्म तथा संप्रदाय के आधार पर विभिन्नता हमेशा विद्यमान रही है। राष्ट्रीय अखंडता तथा अपनी पहचान बनाए रखने के लिए हमने संप्रेषण के एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता महसूस की जिसे अधिकतर भारतीय बोलते और समझते हों। इस राष्ट्रीय आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए हमने 26 जनवरी, 1950 को लागू अपने संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा माना।

परंतु राजनेताओं की ढुलमुल नीति तथा उच्च शिक्षित व्यक्तियों एवं शिक्षाविदों की मानसिकता के कारण हिंदी अभी भी अपनी शैशवावस्था में है। राष्ट्रभाषा को एक राजनैतिक प्रश्न बना दिया गया है। नेहरू युग से आज तक हमारे राजनेता हमेशा कहते रहे हैं कि हिंदी को किसी पर थोपा नहीं जाएगा। यह एक गंभीर प्रश्न है कि स्वतंत्र भारत की अपनी एक ऐसी संपर्क भाषा तो होनी ही चाहिए जिसे राष्ट्र का बहुमत स्वीकार करता है। जब प्रजातंत्र में बहुमत के आधार पर सरकारें बनती-बिगड़ती हैं, तो आखिर हिंदी को राष्ट्रीय आवश्यकता मानकर हम इसे लागू करने में क्यों चूकते हैं ? परंतु यह एक राजनैतिक प्रश्न बना हुआ है।

समाज विज्ञानों में हिंदी माध्यम से पठन-पाठन में निम्नलिखित प्रमुख कठिनाइयां हैं -

1. **हिंदी माध्यम की पाठ्यपुस्तकों का अभाव**

हिंदी को हमने उच्च शिक्षा का माध्यम तो मान लिया है परंतु उच्च शिक्षा के लिए हिंदी में पुस्तकों का अभाव निरंतर बना हुआ है । लेखक गण अंग्रेजी में पुस्तक लिखकर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करना चाहते हैं तथा अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों का मूल्य अच्छा मिल जाता है जिससे हिंदी माध्यम में पाठ्य-पुस्तकों का अभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। सरकार द्वारा इसके लिए कोई सराहनीय प्रयास नहीं किए गए हैं । यद्यपि भारत सरकार द्वारा 1969 में पाँच हिंदी-भाषी राज्यों क्रमशः मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में हिंदी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना की गई जिनका दायित्व उच्च शिक्षा के लिए हिंदी माध्यम की पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध कराना है, परंतु सरकार का यह प्रयास विज्ञानों के क्षेत्र में अपर्याप्त ही है । जब तक किसी भाषा के सभी विषयों, साहित्य को समृद्ध नहीं किया जाता तब तक उसके माध्यम से शिक्षा देना देश व शिक्षा के साथ खिलवाड़ करने जैसा है ।

2. **हिंदी माध्यम की घटिया पुस्तकों का प्रचलन**

हिंदी माध्यम की पाठ्य-पुस्तकों के अभाव के कारण हिंदी में जैसी भी पुस्तक उपलब्ध हो पाती है छात्र उसी के अध्ययन के लिए बाध्य होता है । प्रायः यह देखने में आ रहा है कि कुछ व्यवसायी व्यक्तियों द्वारा हिंदी में पुस्तकें लिखी जा रही हैं, जिनका आशय केवल धन अर्जन करना है ।

कभी-कभी एक ही व्यक्ति द्वारा चार-पाँच विषयों में पुस्तकें लिखी जाती हैं । ऐसी स्थिति में या तो उसके पांडित्य का आदर करना पड़ेगा अथवा यह मानना पड़ेगा कि नकल करने की प्रवृत्ति केवल छात्रों में ही नहीं अपितु कुछ लेखकों में भी पाई जाती है । इसका परिणाम यह होता है कि जो ज्ञान उन पुस्तकों से मिल जाता है वह गलत होता है तथा छात्र अपेक्षित ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रह जाता है ।

3. **अंग्रेजी भाषा व अन्य समृद्ध भाषाओं की पुस्तकों का पर्याप्त अनुवाद न होना**

यह तो निःसंकोच मानना पड़ेगा कि पाश्चात्य साहित्य हमारे साहित्य से बहुत समृद्ध है । हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने पर हमारा यह दायित्व हो जाता है कि हम अपनी राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने का हर संभव उपाय करें । इसके लिए

आवश्यक है कि हम समृद्ध साहित्य की पुस्तकों का अनुवाद कर अपने साहित्य को समृद्ध करें। सरकार द्वारा अब तक इस संबंध में किए गए प्रयासों को नगण्य एवं चिंताजनक ही माना जा सकता है। परंतु केवल सरकार को ही दोषी मानकर हमारे कर्तव्यों की इतिश्री नहीं हो जाती है। प्रत्येक उच्च शिक्षित व्यक्ति तथा विश्वविद्यालयी प्राध्यापकों को इस दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता है। पाठ्य-पुस्तकों के मामले में प्राध्यापकों को दोष देना अनुचित न होगा क्योंकि वे स्वयं ही अंग्रेजी के मोह को नहीं छोड़ पा रहे हैं, जिससे हिंदी में अनुवाद का प्रश्न तो दूर रहा, शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान भी हमें अंग्रेजी माध्यम से ही प्राप्त हो पाता है - जो स्वदेश के लिए कम तथा विदेश के लिए ज्यादा उपयोगी माना जा सकता है। अतः विश्वविद्यालय प्राध्यापकों को यह प्रवृत्ति त्यागनी होगी। तभी हम राष्ट्रभाषा के माध्यम से पठन-पाठन में सक्षम हो सकेंगे।

4. अंग्रेजी लेखन को वरीयता

अंग्रेजी में लिखना, पढ़ना व बोलना हम आजादी के 40 वर्ष भी गौरव का विषय समझते हैं जो कि अत्यंत ही दुखदायी है। जिस देश के नागरिक अपनी राष्ट्रभाषा में पढ़ने- लिखने और बोलने में हीन भावना महसूस करें उस राष्ट्र के सुखद भविष्य की क्या कल्पना की जा सकती है। आज के स्वतंत्र भारत में भी हिंदी की बजाय अंग्रेजी की ही अधिक वरीयता है। कोई भी सरकार या गैर-सरकारी आर्थिक सहायता हिंदी माध्यम की पुस्तकों की अपेक्षा अंग्रेजी माध्यम के पुस्तकों के प्रकाशन के लिए जल्दी मिल जाती है। अधिकतर प्रकाशक भी हिंदी की बजाय अंग्रेजी में पुस्तकें छापना पसंद करते हैं। इन्हीं कारणों से आज भी सामाजिक विज्ञानों में हिंदी माध्यम की पुस्तकों का अभाव बना हुआ है।

5. हिंदी में मौलिक लेखन की कमी

सामाजिक विज्ञानों में हिंदी माध्यम से मौलिक लेखन के प्रयास भी नगण्य हैं क्योंकि उच्च स्तर पर अंग्रेजी-लेखन को वरीयता दी जाती है, इसलिए लेखक भी अंग्रेजी में लिखना ही ज्यादा पसंद करते हैं। हिंदी में मौलिक लेखन को कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा भी हतोत्साहित किया जाता है। जैसा कि पिछले दिनों देखने में आया कि कुछ शोध-छात्रों द्वारा हिंदी माध्यम से कार्य करने पर उनको तब तक उपाधि नहीं दी गई जब तक उनके द्वारा उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया गया।

6. विश्वविद्यालय प्राध्यापकों का अंग्रेजी प्रेम

विश्वविद्यालय-स्तर पर हिंदी को शिक्षा का माध्यम तो स्वीकार कर लिया गया है, परंतु सामाजिक विज्ञानों में हिंदी की पाठ्य-पुस्तकों का अभाव बना हुआ है। ऐसी स्थिति में इस कमी को पूरा करना विश्वविद्यालय प्राध्यापकों का सामाजिक,

वैज्ञानिक तथा नैतिक दायित्व है, तथा बिना उनके सार्थक सहयोग के यह कमी कभी भी पूरी नहीं हो सकती है । विश्वविद्यालयों में यह प्रवृत्ति देखने में आ रही है कि प्राध्यापकगण हिंदी माध्यम से शिक्षण भी ज्यादा पसंद नहीं करते हैं । यदि उन्हें हिंदी माध्यम से शिक्षण करना भी पड़ता है तो उनका झुकाव फिर भी अंग्रेजी की ओर बना रहता है । वर्तमान में प्राध्यापकों को अपना यह नैतिक कर्तव्य मानना चहिए कि विश्वविद्यालय शिक्षा में हिंदी माध्यम की पुस्तकों के अभाव को पूरा करना उनका ही नैतिक दायित्व है ।

7. **निम्न मानसिकता**

अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए माध्यम के रूप में किसी भाषा का होना आवश्यक है । हम सभी शिक्षाविदों की मानसिकता इतनी निम्न हो गई है कि जिस भाषा को हम बचपन से वृद्धावस्था तक हर समय बोलते हैं तथा यह जानते हुए कि हिंदी के माध्यम से हम अपनी बात को ज्यादा अच्छी प्रकार व्यक्त कर सकते हैं, फिर भी अंग्रेजी भाषा को हम अपनी उस राष्ट्रभाषा से ज्यादा श्रेष्ठ मानते हैं । यह हमारी निम्नस्तरीय मानसिकता का ही परिचायक है ।

सभी समाजवैज्ञानिक अच्छी तरह से जानते हैं कि भारत को छोड़कर अन्य जितने भी समाजवैज्ञानिक अन्य देशों में हुए हैं उन्होंने अपने विचार अपनी मातृभाषा में लिपि-बद्ध किए हैं तथा उनका अनुवाद अन्य भाषाओं में किया गया है । लेकिन भारत में स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है । इसका कारण यह नहीं है कि हिंदी में हम अपने विचारों को लिपिबद्ध नहीं कर सकते, अपितु वास्तविकता यह है कि वे हिंदी में लिखना ही नहीं चाहते हैं । अभी भी हम गुलाम मानसिकता को लेकर आगे बढ़ रहे हैं ।

सुझाव :

समाज विज्ञानों में हिंदी माध्यम से अध्यापन की कठिनाइयों को दूर करने हेतु निम्न सुझाव दिये जा रहे हैं -

1. हिंदी में पाठ्य-पुस्तकों के लेखन को सरकार, कल्याणकारी संस्थाओं तथा यू. जी.सी. द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।
2. हिंदी माध्यम की पाठ्यपुस्तकों के छापने पर प्रकाशकों को टैक्स आदि की छूट दी जानी चाहिए ।
3. सरकार द्वारा हिंदी माध्यम से लिखी जानी वाली पुस्तकों के छापने के लिए आर्थिक अनुदान का प्रावधान कर हिंदी में पुस्तकें लिखने व छपवाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।
4. सरकार द्वारा हिंदी में छपने वाली घटिया स्तर की पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन पर रोक लगाई जानी चाहिए ।

5. पेशेवर व्यक्तियों द्वारा एक साथ कई विषयों पर पुस्तकें लिखने की प्रवृत्ति को कम करने के लिए ऐसी पुस्तकों के स्तर की जाँच की जानी चाहिए ।

6. समय-समय पर गोष्ठियां आदि आयोजित कर विद्वानों को हिंदी में पुस्तकें लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

7. समाजवैज्ञानिकों व विश्वविद्यालय प्राध्यापकों को विदेशी भाषा का मोह त्याग कर राष्ट्रभाषा में मौलिक कार्य व अनुवाद का कार्य करना चाहिए क्योंकि भारत की अखंडता व एकता के लिए राष्ट्रभाषा का समृद्ध होना आवश्यक है ।

8. राष्ट्रभाषा से संबंधित संस्थाओं तथा राज्य एवं केंद्रीय सरकार को पाश्चात्य समाजविज्ञान की पुस्तकों तथा अन्य भाषाओं के मौलिक साहित्य के अनुवाद का कार्य युद्ध स्तर पर करना चाहिए ।

9. विश्वविद्यालयों एवं अन्य प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में हिंदी/अंग्रेजी माध्यमों के आधार पर मूल्यांकन में हो रहे पक्षपात को समाप्त किया जाना चाहिए ।

10. शोध-कार्यों में हिंदी, अंग्रेजी माध्यम को विवाद का विषय बनाने की बजाए राष्ट्रभाषा के माध्यम से शोध कार्य करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

11. प्रत्येक विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विषय की पुस्तकों के लेखन के लिए एक संपादक मंडल का गठन किया जाना चाहिए । स्नातक स्तर पर पूरे प्रदेश के विश्वविद्यालय को लेकर यह कार्य कराया जा सकता है ।

12. इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य विश्वविद्यालयों द्वारा स्वयं कराया जाना चाहिए ।

13. विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र विषय के अध्ययन मंडल के संयोजकों के बदलने पर, विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, पाठ्यक्रमों में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए ।

14. सरल प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रकाशित पुस्तकों पर सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए ।

15. उच्च शिक्षा में, विशेषकर समाजशास्त्र विषय में, उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त किया जाए जिनकी मानसिकता अध्यापक बनने की हो ।

16. आधुनिक पारिभाषिक शब्दावली कोश का निर्माण कराने की दिशा में उचित कार्यवाही की जाए ।

17. विश्वविद्यालयों में शोध की मौलिकता की दृष्टि से शोध की अनि
समाप्त किया जाए । इससे हिंदी भाषा में घटिया स्तर का शोध रु
मौलिकता आएगी ।

* * * * *

द्वितीय खंड

कवक-मूल (माइकोराइज़ा) का वन-रोपण में योगदान

- श्री भगवती प्रसाद चमोला,
प्रो॰ के॰जी॰ मुकर्जी एवं
प्रो॰ जी॰एस॰ पालीवाल

कवक-मूल (माइकोराइज़ा) एक विशेष प्रकार का सहजीवन है जो वन लगाने में महत्वपूर्ण योग दे सकता है । अनुसंधान तथा प्रयोगों द्वारा शनैः शनैः हम इस स्थिति पर पहुँच चुके हैं कि माइकोराइज़ा को वृक्षसंवर्धन वाली अन्योन्य प्रक्रियाओं में इस्तेमाल कर सकते हैं । वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग किया जाए तो इसे हम जैविक खाद के रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं ।

परिचय

सभी मानवीय क्रियाओं का प्राकृतिक संपदा पर व्यापक प्रभाव पड़ता है । मानव को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न वस्तुओं जैसे - खाना, कपड़ा, पानी, लकड़ी तथा पशुओं के लिए चारे की आवश्यकता होती है । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव काफी सीमा तक प्रकृति प्रदत्त निःशुल्क उपहारों पर ही आश्रित होते हैं और साथ ही न्यूनतम खर्च में अधिकतम उत्पादन अर्थात् ज्यादा आवश्यकताओं की पूर्ति हो, सभी इसी कोशिश में लगे हुए हैं । इन्हीं प्रकृति प्रदत्त निःशुल्क उपहारों में वृक्षों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । वृक्ष हमें हजारों उत्पाद प्रदान करते हैं - जैसे लकड़ी, पानी, चारा इत्यादि । आग लगने से ज्यादा पशुओं के चरने से और भूमि का अमर्यादित उपयोग करने से पर्यावरण पर भारी दबाव बना हुआ है । फिर भी पूरे विश्व में प्राकृतिक संपदा का दोहन दिनों दिन बढ़ता जा रहा है । अब कुछ समय से इस प्राकृतिक संपदा को चिरस्थायी बनाने के कार्य में कुछ प्रगति हो रही है, और विश्व भर में इस समस्या के समाधान के लिए कुछ कदम उठाने का प्रयास हो रहा है (पृथ्वी शिखर सम्मेलन, रियो, ब्राजील, 1992) । इन प्रयासों में बंजर भूमि को हरा-भरा बनाने तथा पृथ्वी की हरियाली को बढ़ाने का काम बहुत ही प्रभावशाली और प्रशंसनीय कदम है । इससे हम काफी हद तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दीर्घ काल तक कर सकते हैं । इस कार्य के मुख्य उद्देश्य हैं :

1. मृदा एवं जल संभरण से संपदा को सुरक्षित रखना,
2. वन-संपदा उत्पाद; जैसे - मृदा, वन, ईंधन तथा रेशा इत्यादि सामग्री की वृद्धि और संरक्षण ।

3. मानवीय एवं अमानवीय प्राकृतिक आवासों के निमित्त भौतिक पर्यावरण का संरक्षण । धरती पर हरियाली बनाए रखने का कार्यक्रम निम्नलिखित विशिष्ट बिंदुओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है -

1. मृदा की ऊपरी सतह में विद्यमान पौष्टिक तत्वों को, जो सरलता से वायु वेग के साथ उड़ जाते हैं, बचाने के लिए भूक्षरण का नियंत्रण करने वाले पेड़ों-झाड़ियों का संवर्धन ।

2. ईंधन एवं गृह निर्माण के लिए पर्याप्त मात्रा में विशेष प्रकार की लकड़ी का उत्पादन, फल तथा मेवों और पशु चारे के लिए पेड़ों-झाड़ियों का उत्पादन ।

3. पशुओं तथा मानवों के प्राकृतिक आवास को सुरक्षित रखना तथा जल का दीर्घकालीन संरक्षण ताकि वह पादप वृद्धि में भरपूर योग दे सके ।

4. गरीबों को आय तथा रोजगार के अवसर प्रदान करना ।

5. ग्रीन हाउस गैसों का मर्यादन ।

यद्यपि गत कई दशकों से वैज्ञानिक और कृषिविज्ञानी वनों के कटान, पेड़ों की कमी तथा जल संभरण कम होने से पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले प्रभाव पर गंभीरतापूर्वक ध्यान दे रहे हैं, परंतु अभी भी लगभग 15-20,000 हेक्टेयर भूमि का उपयोग प्रति वर्ष कृषि, उद्योगों आदि के लिए हो रहा है । परिणामस्वरूप भूमि प्राप्त करने के लिए वनों का कटान निरंतर चल रहा है ।

हमारे देश में बंजर भूमि का विशाल क्षेत्र है जिसका उपयोग हम वन लगाने में कर सकते हैं । इसके लिए कवक-मूल (माइकोराइज़ा) का उपयोग कर सकते हैं । भले ही पोषक तत्वों की कमी के साथ-साथ सूखे इलाकों में पानी की काफी कमी होती है लेकिन माइकोराइज़ा काफी सीमा तक इस कमी को पूरा करने में सहायक होते हैं । यदि ऐसी भूमि में माइकोराइज़ों की संख्या बढ़ा दी जाए तो पौधा अच्छी तरह से पनप कर परिवर्धित हो सकता है, क्योंकि सामान्यतया बंजर भूमि में बीज अंकुरित तो होते हैं परंतु पोषक तत्वों की कमी के अभाव में परिवर्धित नहीं हो पाते । माइकोराइज़ा जमीन से , विशेष रूप से फॉसफोरस का, अवशोषण कर पौधे को पहुँचाते हैं । इसके साथ थोड़ी मात्रा में जल और नाइट्रोजन भी पौधे को प्रारंभिक अवस्था में प्रदान करते हैं । इन्हीं तत्वों की सहायता से जब पौधा परिवर्धित हो जाता है तो जड़ें फैलकर कुछ सीमा तक अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने लगती हैं । इस तकनीक का मुख्य उद्देश्य है -

1. किसी भी अनुपजाऊ भूमि में स्थित माइकोराइज़ा का अध्ययन ।
2. प्रयोगशाला में माइकोराइज़ा का संवर्धन ।
3. संवर्धित माइकोराइज़ा द्वारा विशेष प्रकार के पौधों की जातियों, जिन्हें हम बहुप्रयोजन पादप जातियां कहते हैं, की पौधशाला का रोपण ।
4. पौधशाला में उगी हुई पौध को अनुपजाऊ भूमि में प्रतिरोपित करना ।
5. अनुपजाऊ भूमि में प्रतिरोपित पौधों के बारे में अध्ययन करना ।

विधि

इस तकनीकी के अंतर्गत सर्वप्रथम किसी बंजर, सूखी या अल्प नीरस भूमि से मिट्टी को लेकर प्रयोगशाला में मिट्टी में विद्यमान माइकोराइज़ा-बीजाणुओं को पृथक् किया जाता है । इन माइकोराइज़ा-बीजाणुओं की पहचान करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि इस भूमि में किस प्रकार के माइकोराइज़ा की बहुलता है । फिर इन माइकोराइज़ा-बीजाणुओं का प्रयोगशाला में संवर्धन किया जाता है । ध्यातव्य यह है कि ये माइकोराइज़ा-बीजाणु बिना आश्रय के संवर्धित नहीं होते हैं, इसलिए इन माइकोराइज़ा-बीजाणुओं को बीजों के साथ-साथ मिट्टी में बो दिया जाता है ।

जब बीच अंकुरित होते हैं तो जड़ें नीचे की ओर मिट्टी में माइकोराइज़ा-बीजाणु युक्त मिट्टी में बढ़ने लगती हैं । जब जड़ें माइकोराइज़ा-बीजाणु युक्त मिट्टी की परत से होकर गुजरती हैं तो उस अवस्था में ये माइकोराइज़ा-बीजाणु जड़ों में प्रवेश कर जाते हैं और अपना संवर्धन जड़ में करने लगते हैं । जब पौधा स्थापित हो जाता है तब इस पौधे को अनुपजाऊ या बंजर भूमि में स्थानांतरित कर दिया जाता है ।

इन माइकोराइज़ा-बीजाणु संवर्धित पौधों को कम से कम तीन माह तक पौध-शाला में रखा जाता है ताकि माइकोराइज़ा-बीजाणुओं का पर्याप्त वर्धन हो जाए । एक परियोजना के अंतर्गत अभी तक हमारे अनुसंधान दल द्वारा निम्नलिखित वृक्ष जातियों पर अनुसंधान किया जा चुका है :

1. **सुबबूल** (Leucaena leucocephala)
2. **खैर (कत्था)** (Acacia catechu)
3. **बबूल** (Acacia nilotica)
4. **सिरस** (Albizzia lebbek)
5. **काबुली कीकर** (Prosopis juliflora)

इस परियोजना के अंतर्गत हमें सुबबूल, काबुली कीकर, बबूल तथा सिरस को स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई है । ये पौधे अभी भी वन्य प्राणि बिहार, असोला में

लगे हुए हैं । वन्य प्राणि बिहार, असोला हमारी प्रयोगशाला (वनस्पतिविज्ञान विभाग) से 45 कि०मी० की दूरी पर स्थित हैं ।

यहाँ पर इस परियोजना के लिए हमें विकास विभाग, दिल्ली सरकार द्वारा 10 एकड़ भूमि आबंटित की गई है, जिसका प्रयोग हम प्रयोगात्मक भूखंड के रूप में कर रहे हैं । इस परियोजना के अंतर्गत हमें आशातीत सफलता मिली है, और एक अन्य अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत निम्नलिखित वृक्ष जातियों पर आगे की ओर अनुसंधान कार्य अग्रसर है :

1. आस्ट्रेलियन बबूल (Acacia auriculiformis)
2. कुमता (Acacia senegal)
3. सिलौन सिरस (Albizzia amara)
4. कसोद (Cassia siamea)
5. पाँगरा (Erythrina indica)
6. जैत (Sesbania aegyptiaca)
7. छोंकर (Prosopis cineraria)

पौधों की स्थापना एवं विकास के अध्ययन के लिए विभिन्न प्रकार की निम्नलिखित मृदाओं की रचना पौधशाला में की गई :

1. असोला (अनुपजाऊ) मृदा + माइकोराइज़ा
2. असोला (अनुपजाऊ) मृदा – माइकोराइज़ा
3. बगीचे की मृदा + माइकोराइज़ा
4. बगीचे की मृदा – माइकोराइज़ा

(बगीचे की मिट्टी से तात्पर्य है कि यह मिट्टी वनस्पतिविज्ञान विभाग के बगीचे से ली गई ।)

उपर्युक्त मृदाओं में पौधों की पौधशाला बनाकर पौधों के विकास का अध्ययन किया गया है । तत्पश्चात् इन पौधों को अनुपजाऊ भूमि पर रोपित किया गया । जब माइकोराइज़ा-बीजाणु पौधे की जड़ मे पहुँच जाते हैं तो जड़ के अंदर ये दो प्रकार की संरचनाएं बनाते हैं, जिन्हें हम पुटक (वेसिकिल) और कूर्चक (अरबस्क्यूल) कहते हैं । ये संरचनाएं पौधे के लिए बहुत उपयोगी होती हैं और इन्हीं रचनाओं के आधार पर हम यह समझ जाते हैं कि संवर्धन हो रहा है या नहीं । इन्हीं संरचनाओं के आधार पर इन माइकोराइज़ा बीजाणुओं को, जिन्हें हम वन लगाने के उपयोग में लाते हैं, पुटकीय (वेसिकुलर) – कूर्चकीय (अरबस्क्यूलर) माइकोराइज़ा कहते हैं ।

परिणाम :

हमारे परिणामों के फलस्वरूप अब यह स्पष्ट हो गया है कि पौधशाला में सबसे अधिक परिवर्धन और वृद्धि बगीचे की मृदा + माइकोराइज़ा (नं.3) में होती है । उसके बाद क्रमशः असोला मृदा + माइकोराइज़ा (नं.1), बगीचे की मृदा – माइकोराइज़ा (नं.4) असोला मृदा – माइकोराइज़ा (नं.2) में है । इससे यह पता चलता है कि बगीचे की मिट्टी में पहले से ही प्रचुर मात्रा में माइकोराइज़ा विद्यमान हैं तथा इस मृदा में पोषक तत्वों के साथ नमी की भी अधिकता होने से पौधे अच्छी तरह से उगते हैं, और (असोला मृदा + माइकोराइज़ा) में, जो अनुपजाऊ मिट्टी है, यदि माइकोराइज़ा की संख्या बढ़ा दी जाती है तो पौधों में वृद्धि बाकी मृदाओं की अपेक्षा अधिक है – जबकि इससे पूर्व इसी मिट्टी में पौधों की वृद्धि बहुत कम थी । इसके परिणामस्वरूप हम कह सकते हैं कि कवक–मूल (माइकोराइज़ा) काफी सीमा तक पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं ।

जब इन पौधों को प्रयोगात्मक भूखंड पर स्थानांतरित किया गया तो वहाँ पर भी हमें यही परिणाम प्राप्त हुए । सुबबूल और सिरस के पौधों में यह वृद्धि देखने पर ही साफ प्रतीत होती है ।

विवेचन

यदि इन माइकोराइज़ा–बीजाणुओं को, जो कि वन लगाने में काफी सहायक एवं लाभदायक हैं, प्रयोगशाला में संवर्धित करके कुछ विशेष प्रकार की शुद्ध खाद की रचना कर दी जाए (जिसे हम जैविक खाद भी कह सकते हैं) तो इस खाद का प्रयोग हम वन लगाने के साथ–साथ फसल की पैदावार बढ़ाने में भी कर सकते हैं, जिसका परिणाम भविष्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है । इस प्रक्रिया के लिए हमें विभिन्न स्थानों की बंजर, सूखी तथा अर्धशुष्क मिट्टी से काफी मात्रा में माइकोराइज़ा–बीजाणुओं को पृथक् कर और प्रयोगशाला में संवर्धन करके इनकी पौधशाला तैयार करके इन पौधों को पुनः उस भूमि पर लगाना पड़ेगा क्योंकि अभी हम इस अवस्था तक नहीं पहुँचे हैं कि सीधे ही इन संवर्धित माइकोराइज़ा–बीजाणुओं को लोगों को दे सकें या प्रयोग में ला सकें । इस कार्य के लिए हमारा अनुसंधान–दल कार्यरत है । इस तकनीक को हम कर्म खर्च वाली तकनीक भी कह सकते हैं क्योंकि इस तकनीक में खर्चा रासायनिक खादों की अपेक्षा कम होता है ।

आजकल रासायनिक खादें काफी महँगी होती जा रही हैं और साथ ही इनकी या इनके प्रयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति भी दिन–दिन क्षीण होती जा रही है । पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार का जैव प्रौद्योगिकी विभाग इस ओर काफी ध्यान दे रहा है और हमारे प्रगतिशील कृषक वर्ग को इसका बोध कराया जा रहा है । जब तक इस तकनीक का लाभ पूर्णरूप से कृषक वर्ग तक नहीं पहुँचता इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और आने वाले समय में हमारा यह भरसक प्रयास रहेगा कि इस तकनीक का उपयोग सभी कर सकें ।

आभार :

हम निम्नलिखित अनुदान-प्रदायी संस्थाओं के विशेष आभारी हैं, जिनकी सामयिक सहायता से हम इस अनुसंधान कार्य को करने में सफल हुए हैं तथा इन्हीं की सहायता से आगे भी क्रियाशील हैं :

1. संयुक्त राज्य अमेरिका, कृषि विभाग, दूरपूर्व क्षेत्रीय अनुसंधान कार्यालय, अमेरिकी दूतावास, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-110021.

2. जैव प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, केंद्रीय सरकार कार्यालय परिसर, नई दिल्ली - 110003

संदर्भ :

1. एनुवल रिपोर्ट ऑफ पी.एल. 480 प्रोजेक्ट ऑन 'वेसीकुलर अरबस्कुलर माइकोराइज़ल रिलेशनशिप्स ऑफ एरिड जोन्स ट्री इन इंडिया', वनस्पति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

2. मुकर्जी, के.जी. एंड डिक्सन, आर.के. 1992 माइकोराइज़ी इन रिफौरेस्टेशन इन प्रोसीडिंग्स ऑफ सिंपोजियम ऑन रिहैबिलिटेशन ऑफ ट्रॉपिकल रेन फॉरेस्ट इकोसिस्टम - रिसर्च एंड डेवलपमेंट प्रायोरिटीज, सारावाक, मलेशिया, पृष्ठ संख्या 66-82.

* * * * *

जनपद टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या एवं संसाधनों का अंतःसंबंध

- श्री सुरेश कुमार बंदूनी एवं
डॉ॰ लक्ष्मण प्रसाद सेमवाल

किसी भी क्षेत्र के संसाधन विकास में जनसंख्या-शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि जनसंख्या-शक्ति का अभाव संसाधन-विकास को अवरुद्ध करता है । इसके अभाव में बहुत से ऐसे निर्माण-कार्य संभव नहीं हो पाते, जिनमें श्रम की आवश्यकता होती है । अत: जनसंख्या को उत्पादन का एक महत्वपूर्ण एवं सक्रिय तत्व माना गया है । स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि हमेशा हानिकारक ही नहीं होती, बल्कि एक बिंदु तक तो यह वांछनीय है और केवल उस बिंदु के उपरांत ही यह वृद्धि विकास में सहायक न होकर, अवरोध में सहायक होती है । इसी तरह जनसंख्या एवं संसाधन के बीच गहरा संबंध होता है । आँकड़ों से ज्ञात होता है कि सन् 1901 से सन् 1991 के मध्य जनपद टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या-वृद्धि की दर 90.3 प्रतिशत थी । यह बढ़ती जनसंख्या तीव्र गति से संसाधनों का शोषण कर रही है और सुधार-संबंधित सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों में बाधा उत्पन्न कर रही है । अत: जहाँ एक ओर जनपद की जनसंख्या हर साल बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी ओर इस बढ़ती जनसंख्या को जीवित रखने और उनके जीवन-स्तर में सुधार एवं क्षेत्र में व्यापक रूप से फैली गरीबी दूर करने के लिए संसाधनों की मात्रा उसी अनुपात में घटती जा रही है । अत: जनपद की आर्थिक विकास की दर संतोषजनक नहीं है । इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जनपद टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या एवं संसाधनों के अंत:संबंध के विषय को अध्ययन हेतु चुना गया है ।

जनसंख्या

1. प्राकृतिक लक्षण एवं जनसंख्या वितरण -

जनपद टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या-वितरण को विभिन्न प्राकृतिक लक्षणों, पर्यावरण, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रतिरूप ने बहुत अधिक प्रभावित किया है । मुख्यत: कृषि एवं पशुपालन जैसी जीविकाओं में व्यस्त पर्वतीय समाज उन्हीं क्षेत्रों में बसा पाया जाता है जहाँ ढाल समतल या मंद एवं उपजाऊ मिट्टी युक्त हो ताकि कृषि-कार्य सुविधापूर्वक किया जा सके । इस प्रकार की आवासीय सुविधा जनपद में 15 प्रतिशत से भी कम है । गढ़वाल के अन्य जनपदों की तरह इस जनपद में भी जनसंख्या वितरण असमान है । जनपद की अधिकतम जनसंख्या जखोली विकास खंड (13.7 प्रतिशत) तथा न्यूनतम जाखणीधार (7.9 प्रतिशत) विकास खंड में मिलती है । मुख्यत:

दुर्गम, तीव्र ढाल वाले उत्तरी क्षेत्र तथा गहन वन व उष्ण जलवायु वाले दक्षिणी क्षेत्रों में जनसंख्या विरल मिलती है। इसी तरह जनसंख्या वितरण व कृषि-संसाधन की उपलब्धता में गहन अंतःसंबंध है।

2. जनसंख्या-वृद्धि एवं घनत्व -

जनपद टिहरी गढ़वाल जैसे पर्वतीय भूक्षेत्र में प्राकृतिक दुरूहताओं के कारण जनसंख्या की मात्रात्मक एवं गुणात्मक विशेषताएं मैदानों में रहने वाली जनसंख्या की अपेक्षा भिन्न प्रकृति की हैं। अति अल्प नगरीय जनसंख्या के अलावा, अधिकांश जनसंख्या छोटे-छोटे ग्रामीण समूह में दूर-दूर बिखरी हुई है। प्रकीर्ण एवं बिखरी जनसंख्या के कारण वर्तमान जनसंख्या का औसत घनत्व मात्र 131 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० है। यद्यपि यह सन् 1971 में जनपद के घनत्व (90) से अधिक है तथापि मैदानी क्षेत्र की तुलना में यह घनत्व काफी कम है। विकास खंड स्तर पर जनसंख्या घनत्व अत्यधिक असमान है, क्योंकि सर्वत्र क्षेत्र में कृषि-भूमि की उपलब्धता समान है। उदाहरण के लिए, उत्तम कृषि-भूमि हेतु प्रसिद्ध कीर्तिनगर विकास खंड में जनसंख्या घनत्व (1991) 284 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० है तो दुर्गम ढाल वाले भिलंगना विकास खंड में जनसंख्या घनत्व केवल 90 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० है (सारणी-1)।

सारणी - 1

जनपद टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या वृद्धि, घनत्व एवं साक्षरता

क्रमांक	विकास खंड	जनसंख्या वृद्धि(%)		जनसंख्या वृद्धि व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी०			साक्षरता (%)		वृद्धि
		1971	1991	1971	1991		1971	1991	
1.	जौनपुर	26.90	17.90	69	104	+35	15.6	38.9	+23.3
2.	चंबा	20.28	14.05	84	166	+82	22.8	55.9	+33.1
3.	धौलधार	24.44	11.62	152	211	+59	17.7	47.0	+29.3
4.	भिलंगना	18.98	18.90	34	49	+15	15.7	39.4	+23.7
5.	प्रताप नगर	27.81	15.23	155	229	+74	16.6	43.6	+27.0
6.	जाखणीधार	18.69	10.23	147	192	+45	15.6	44.6	+29.0
7.	जखोली	26.56	14.80	88	127	+39	17.6	45.7	+27.9
8.	देव प्रयाग	20.05	8.82	90	117	+27	17.8	47.1	+29.3
9.	कीर्तिनगर	18.75	11.73	209	284	+75	23.0	55.5	+32.5
10.	नरेंद्र नगर	31.99	26.45	148	247	+99	17.8	47.8	+30.0
	टिहरी गढ़वाल	25.30	15.13	90	131	+41	19.3	48.4	+29.1

सारणी से स्पष्ट है कि सभी विकास-खंडों में जनसंख्या-वृद्धि तीव्र गति से अनवरत जारी है और इसका दबाव संसाधनों पर भी बढ़ता जा रहा है । बढ़ती जनसंख्या और घटते संसाधन के अंतर को कम करना वर्तमान नियोजन की सर्वप्रथम माँग है ।

2. साक्षरता

शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि की उन्नति द्वारा जनसंख्या-संसाधनों का उचित प्रयोग करके उनका और अधिक विकास और संरक्षण किया जाता है । परंतु जनपद में शिक्षा-विस्तार के साथ संसाधनों का सदुपयोग होने की अपेक्षा उनका हनन ही हो रहा है, उदाहरणार्थ - शिक्षित, कुशल व जागरूक जनसंख्या का मैदानों की और सतत प्रवास । पिछले दशकों में जनपद के सभी विकास-खंडों में संतोषपूर्ण तो नहीं, लेकिन शिक्षा-स्तर में सुधार अवश्य हुआ है । सन् 1971 में जहाँ कुल 19.3 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर थी, वहीं सन् 1991 में साक्षर व्यक्तियों का प्रतिशत 48.4 हो गया । साक्षरता-वृद्धि से यद्यपि मृत्यु-दर व जन्म-दर में कमी, विवाह की उम्र में वृद्धि आदि तो अवश्य हुई है, लेकिन संसाधनों का उचित व विवेकपूर्ण उपयोग अभी भी नहीं हो पा रहा है । इसका मुख्य कारण, जैसा पहले बताया जा चुका है, शिक्षित व युवा जनसंख्या का प्रवास है ।

संसाधन

(1) वन-संसाधन

जनपद की दृश्यभूमि में वन की महत्वपूर्ण भूमिका है । लेकिन वनों के अनियमित कटान और जनसंख्या के बढ़ते घनत्व के कारण, जनपद में इनका तीव्रता से ह्रास हो रहा है । प्रशासनिक दृष्टि से जनपद के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 69 प्रतिशत पर वन है, किंतु वास्तव में अधिकांशतः वन-विहीन क्षेत्र या विरल वनों का क्षेत्र है । इस प्रकार टिहरी गढ़वाल में वन-क्षेत्र तो पर्याप्त है, लेकिन वन पर्याप्त नहीं हैं । भारतीय वन नीति के आधार पर पर्वतीय क्षेत्रों में भौगोलिक क्षेत्र के 60 प्रतिशत भाग पर वनों का विस्तार होना चाहिए, लेकिन भू-उपग्रह से प्राप्त चित्रों से पता चलता है कि जनपद में मात्र 35.9 प्रतिशत भाग पर ही वन हैं तथा उसमें से उत्तम वन केवल 20.7 प्रतिशत भाग पर ही हैं । वन-क्षेत्र में कमी के मुख्य कारण हैं - वन-भूमि को कृषि भूमि में बदलना, अवैध कटान, अति चराई, दीर्घ विकासकारी योजनाएं व सड़क-निर्माण । सारांश में जनसंख्या एवं वन-संसाधन के बीच का अंतःसंबंध ऋणात्मक रूप में बदलता जा रहा है ।

2. भूमि-संसाधन

भूमि नियोजन करने से पूर्व उस क्षेत्र-विशेष की धरातलीय स्थिति, उसमें स्थित संसाधनों की भौगोलिक सीमा, विस्तार तथा स्थिति के साथ-साथ समस्त भूमि संसाधन का

पूर्ण ज्ञान आवश्यक है । सन् 1991 के भूमि-उपयोग आँकड़ों के आधार पर ज्ञात होता है कि जनपद के कुल क्षेत्रफल का 69 प्रतिशत वन, 1.4 प्रतिशत कृषि-अयोग्य भूमि, 1.3 प्रतिशत कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि, 2.4 प्रतिशत चारागाह, 11.3 प्रतिशत कृष्य-व्यर्थ बंजर भूमि, 1.0 प्रतिशत परती भूमि, 0.11 प्रतिशत उद्यान-कृषि एवं 2.7 प्रतिशत शुद्ध बोए गए क्षेत्र के अंतर्गत है ।

सन् 1981 व 1992 के दशक में भूमि-उपयोग के बदलते प्रतिरूप को सारणी-2 में प्रस्तुत किया गया है । सन् 1981 और 1991 के बीच जनपद में 15.13 प्रतिशत जनसंख्या-वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि में चारागाह (-2.05 प्रतिशत), बागवानी (-0.10 प्रतिशत) और शुद्ध बोए गए क्षेत्र (-0.8 प्रतिशत) में न्यूनता आ गई है । जनपद में प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधनों की स्थिति बिगड़ती जा रही है और इसीलिए प्राकृतिक व्यवसाय में क्रियाशील श्रमिक भी अपने व्यवसाय से हट कर द्वितीयक व तृतीयक व्यवसाय को अपना कर अपनी जीविका अर्जन कर रहे हैं । प्रवासियों की बढ़ती संख्या तथा परती भूमि व कृष्य-व्यर्थ भूमि के अंतर्गत बढ़ता क्षेत्र इसके ज्वलंत उदाहरण हैं (सारणी-2) । इस तरह इस पर्वतीय क्षेत्र में अनेक आर्थिक, सामाजिक तथा संस्थागत जटिलताएं भूमि व कृषि-संसाधन के विकास में अवरोध उत्पन्न कर रही हैं ।

3. पशु संसाधन

जनपद में पशुपालन एक गौण व्यवसाय के रूप में कृषि का पूरक व्यवसाय है । अनुकूल प्राकृतिक पर्यावरण के होते हुए भी पशुपालन आर्थिक उत्पादन का आधार नहीं बन सकता । कृषि की भांति जनपद का पशुपालन व्यवसाय भी घटता जा रहा है । जैसे-जैसे जनपद के निवासियों का अनुपात द्वितीयक व तृतीयक व्यवसाय की ओर बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे पशुओं की संख्या और उनसे निर्मित गौण उत्पादों की संख्या भी घटती जा रही है (सारणी-3) ।

जनसंख्या एवं संसाधनों का अंतःसंबंध : कुछ सुझाव

जनपद में अनेक विकास योजनाओं के विस्तार के उपरांत भी यहाँ के निवासियों की आर्थिक स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है, बल्कि कई स्थानों पर स्थिति बिगड़ती जा रही है। अविवेकपूर्ण संसाधनों के शोषण और बढ़ती जनसंख्या पर अंकुश न लगने के कारण क्षेत्र में पारिस्थितिक असंतुलन पैदा हो गया है और इसका कुपरिणाम जनपद में ही नहीं बल्कि मैदानी क्षेत्रों में भी होगा । वनों के दोहन से जल स्रोतों पर पानी की कमी, वनोत्पादन व्यवसाय में न्यूनता, मृदा अपरदन से चारागाहों में चारे की न्यूनता व जलाऊ ईंधन का अभाव होने लगा है । इन्हीं बिगड़ती परिस्थितियों के कारण कृषक और पारिवारिक उद्योगों में कार्यरत श्रमिक अपने मूल व्यवसाय से हटकर अन्य व्यवसायों की ओर प्रवास कर रहे हैं । यदि यही दशा बनी रही व सुधार के उपाय न किए गए तो इसके कुप्रभाव

सारणी - 2

भूमि-उपयोग का बदलता स्वरूप (सन् 1981-1991) - प्रतिशत में

क्रमांक	विकास खंड	वन	कृष्य-व्यर्थ भूमि	परती भूमि	कृषि-अयोग्य भूमि	कृषि के अति-रिक्त उपयोग	चारागाह	उद्यान	शुद्ध बोया क्षेत्र
1.	जौनपुर	+1.03	+2.59	+0.47	+1.47	+0.47	-5.48	-0.13	-0.46
2.	चंबा	+0.33	+1.79	+0.91	+0.92	+0.47	-2.60	-0.38	-1.44
3.	धौलधार	+0.30	+2.44	+0.73	+0.67	+0.70	-3.27	-0.16	-1.41
4.	भिलंगना	+0.72	+0.63	+0.22	+0.38	+0.27	-0.36	-0.04	-0.35
5.	प्रताप नगर	-1.43	+2.29	+0.82	+1.05	+1.63	-1.19	-0.43	-2.77
6.	जाखणीधार	-1.23	+1.55	+0.91	+1.14	+0.92	-1.69	-0.21	-1.39
7.	जखोली	+14.90	+6.23	+1.38	+1.14	+1.22	-0.92	-0.07	+5.85
8.	देवप्रयाग	-0.46	+1.97	+1.04	+1.10	+0.56	-0.62	-0.03	-1.70
9.	कीर्तिनगर	-1.02	+1.12	+0.47	-0.64	+0.45	-0.80	-0.02	-0.85
10.	नरेंद्र नगर	+0.37	+0.45	+0.32	+0.82	+0.64	-3.08	-0.08	-1.55
	टिहरी गढ़वाल	-0.20	+1.39	+0.49	+0.93	+0.52	-2.05	-0.10	-0.78

खतरनाक पारिस्थितिक व आर्थिक असंतुलन पैदा कर, जनसंख्या एवं संसाधनों के अंतः संबंध में असंतुलन पैदा कर सकते हैं । इसलिए इन अंतःसंबंधों को सुदृढ़ बनाने हेतु कुछ सुझाव इस प्रकार हैं -

1. सर्वप्रथम स्थानीय सक्रिय श्रमिकों की समस्याओं के सुधार हेतु मानवीय दृष्टिकाणे की आवश्यकता है । आर्थिक कार्यक्रमों को तैयार करते समय इस बात की आवश्यकता है कि न तो आंचलिक मान्यताओं व मूल्यों की हत्या हो और न ही यहाँ की प्राकृतिक छटा पर आँच आए ।

सारणी - 3

सक्रिय जनसंख्या एवं पशुपालन व्यवसाय का बदलता स्वरूप (1981-1991)

क्रमांक	विकास खंड	व्यावसायिक जनसंख्या की वृद्धि			पशुपालन व्यवसाय की वृद्धि (संख्या में)	
		प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक	प्रति हजार जन-संख्या पर गायें	प्रति हजार जनसंख्या पर भैंसें
1.	जौनपुर	-6.0	+0.3	+5.7	-414	-122
2.	चंबा	-10.8	+1.0	+9.8	+52	+49
3.	धौलधार	-9.7	+0.30	+9.4	+33	+42
4.	भिलंगना	-5.6	+0.80	+4.8	-242	-33
5.	प्रताप नगर	-11.9	-4.0	+7.9	-111	+167
6.	जाखणीधार	-6.8	+0.6	+6.2	-141	+47
7.	जखोली	-9.8	+1.3	+8.1	-294	-27
8.	देव प्रयाग	-5.8	0.0	+5.8	-251	+35
9.	कीर्तिनगर	-1.02	+2.0	+8.2	-78	+36
10.	नरेंद्र नगर	-17.9	+7.5	+10.4	-133	+120
	टिहरी गढ़वाल	-9.4	+2.1	+7.3	-236	-77

2. **जनपद में अपार जलसंपदा होने पर भी प्रबंधन के अभाव में सिंचाई-योग्य भूमि भी असिंचित रह गई है । नदियों के जल का उपयोग सिंचाई-हेतु किया जा सकता है । अत: सर्वप्रथम सिंचाई-विस्तार हेतु परंपरागत सिंचाई सुविधाओं में नए तकनीकी सुधार व कृषकों को जल-प्रबंध के नए तरीकों से परिचित कराकर बहते एवं निरर्थक जल को उपयोग में लाया जा सकता है ।**

3. जनपद का अधिकांश क्षेत्र विभिन्न प्रकार की प्रजाति के फलों हेतु उपयुक्त है । अत: उद्यान-कृषि के लिए कृष्य-व्यर्थ भूमि, कृषि-अयोग्य भूमि, परती, चारागाह एवं ढालदार भूमि को उपयोग में लाया जा सकता है । इससे पर्यावरण संतुलन भी बना रहेगा और मूल निवासियों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार होगा ।

4. पशुओं से अधिक आय और उत्पादन प्राप्त करने के लिए उत्तम प्रजाति के पशुओं का पालन किया जाना चाहिए । पशुपालन को विशिष्ट स्थिति प्रदान कर इसे मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाए जाने की अति आवश्यकता है । पलायन कर रही शिक्षित युवा श्रम-शक्ति को रोककर उन्हें पशुपालन व कृषि-संबंधी उचित प्रशिक्षण देकर, दोनों व्यवसायों को उन्नत बनाया जा सकता है ।

5. कुछ वर्ष पहले तक जनपद के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग और वनों पर आधारित उद्योग आय के उन्नत साधन थे, विशेषकर सीमांत कृषकों एवं शिल्पकारों को इससे काफी मदद मिलती थी । किंतु लाभ में कमी और वनों के दोहन के परिणामस्वरूप इन उद्योगों में न्यूनता आ रही है । अत: भविष्य में इस व्यवसाय में उन्नति हो इसीलिए विद्यमान प्राकृतिक संसाधनों का उचित संरक्षण, प्रबंधन और विकास आवश्यक है । स्थानीय उत्पादित वस्तुओं के विपणन व प्रोत्साहन के लिए उचित कार्यक्रम तैयार हों ताकि मूल निवासियों को अपने व्यवसाय का पूर्ण मेहनताना प्राप्त हो सके ।

6. आर्थिक सुधार व विकास के साथ-साथ पारिस्थितिक संतुलन भी बनाए रखना अति आवश्यक है । जनपद का अधिकांश भू-भाग तीव्र ढाल वाला है जो देश की प्रमुख नदियों का उद्गम -क्षेत्र भी है । हिमालय पर्वत अभी निर्माण-अवस्था में है, जिसका भूवैज्ञानिक आधार कमजोर है । अवैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप यहाँ की भूवैज्ञानिक संरचना कमजोर हो रही है । जनसंख्या एवं संसाधन के अंत:संबंध में सुधार करते समय इस पहलू पर ध्यान देना आवश्यक है ।

7. जनपद के समुचित विकास हेतु युवा, शिक्षित व जागरूक व्यक्तियों के प्रवास पर नियंत्रण की अति आवश्यकता है ।

इसके साथ-साथ अगर जनसंख्या व संसाधन के मध्य संबंध बनाने वाले अन्य कारकों पर भी गंभीरता से ध्यान देकर उनका उचित संरक्षण एवं विकास किया जाए तो जनसंख्या व संसाधन का अंत:संबंध संतुलित दिशा में बना रहेगा ।

संदर्भ :

1. सांख्यिकीय पत्रिका, 1971, 1981, 1991 : जनपद टिहरी गढ़वाल ।

2. बंदूनी, एस०के० 198 : **इम्पैक्ट ऑफ माइग्रेशन ऑन एग्रीकल्चरल** लैन्ड यूज पैटर्न, अप्रकाशित, एम.फिल. शोध-प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

3. सेमवाल, ल.प्र. 1992 : **प्रादेशिक अर्थव्यवस्था और उसका जनपद टिहरी गढ़वाल पर प्रभाव**, अप्रकाशित पीएच.डी. शोध-प्रबंध, मेरठ विश्वविद्यालय।

4. बंदूनी एस०के० और सेमवाल ल०प्र० 1994 : 'गढ़वाल हिमालय में विकास स्तर का बदलता स्वरूप', उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, जिल्द-3, अंक1-2, पृष्ठ संख्या 33-44

हिंदी	अंग्रेजी	हिंदी	अंग्रेजी
संसाधन	resource	कृष्यव्यर्थ भूमि	cultivable waste land
अंतःसंबंध	interrelationship	पशु-संसाधन	animal resource
प्रतिरूप	pattern	प्राथमिक व्यवसाय	primary occupation
विकास-खंड	development block	द्वितीयक व्यवसाय	secondary occupation
गुणात्मक	qualitative		
मात्रात्मक	quantitative	तृतीयक व्यवसाय	tertiary occupation
प्रकीर्ण	scattered	शोषण	exploitation
जनसंख्या घनत्व	density of population	पारिस्थितिक	ecological
जनपद/जिला	district	मृदा अपरदन	soil erosion
दृश्यभूमि	landscape	पर्यावरण	environment
भू-उपग्रह	geo-satellite	प्रबंधन	management
		तकनीक	technique
भूमि संसाधन	land resource	भूवैज्ञानिक संरचना	geological structure
भूमि उपयोग	land utilization, land use	संरक्षण	conservation
		प्राकृतिक लक्षण	physical feature
उद्यान-कृषि	horticulture		
शुद्ध बोया गया क्षेत्र	net area sown		

०००००

पादप प्रतिरोध द्वारा कीट-नियंत्रण

- डॉ॰ प्रेम किशोर

कीटों के लिए पौधे भोजन, आश्रय और जनन के माध्यम हैं जब कि कीट अपनी गतिशीलता के कारण पौधों में परागण संपन्न करते हैं । साथ ही वे पराग तथा पुनः उग सकने वाले पादपों के भागों को दूसरे स्थान तक पहुँचाते हैं । कीटों के प्रकोप के प्रति पादप- अनुक्रियाओं में भिन्नताओं का अध्ययन 'पादप प्रतिरोध' है । कीटों के विरुद्ध प्रतिरोध पादप जाति का वह गुण है जिससे वह नाशक कीट की उपस्थिति में भी अच्छी वृद्धि और पैदावार देती है । पादप प्रतिरोध का मुख्य उद्देश्य 'कीट प्रतिरोधी पादप जातियों' का 'मोचन' करना है । प्रतिरोधी जातियों का नाशक कीट पर विशेष संचयी तथा दीर्घस्थायी प्रभाव होता है । कीट प्रतिरोधी जातियां कीट प्रबंधन कार्यक्रम की नींव हैं । इन्हें दूसरी कीट नियंत्रण विधियों के साथ 'उपबंध' अथवा मुख्य कीट नियंत्रण विधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । कीट प्रबंधन में कीट प्रतिरोधी जातियों के उपयोग से मुख्य नाशक कीटों के वे प्राकृतिक शत्रु सुरक्षित रहते हैं जो प्रायः कीटनाशियों के उपयोग से नष्ट हो जाते हैं, तथा पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं होता । हमारे देश में धान, ज्वार , मक्का, बाजरा, रागी, सोयाबीन, दलहन आदि फसलों तथा सब्जियों में कीट प्रतिरोधी जातियों का विकास किया जा चुका है । प्रस्तुत लेख में पादप प्रतिरोध तथा उसके विभिन्न घटकों का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

प्रस्तावना

कीटों के प्रति पादपों के प्रतिरोध (परपोषी-पादप प्रतिरोध) को पादप किस्म अथवा जाति का वह गुण कह सकते हैं जिसके द्वारा वे कीट की उपस्थिति में अच्छी वृद्धि और उपज देते हैं । प्रतिरोध प्रायः कृषि किस्मों के बीच भिन्नताओं को दर्शाता है, अतः इसे 'जातीय प्रतिरोध' अथवा 'जातीय नियंत्रण' भी कहते हैं ।[1-5]

पादपभक्षी के प्रति पादप प्रतिरोध का चयन अनजाने में ही कृषि के प्रारंभिक चरणों से ही शुरू हो गया था । कीट प्रतिरोधी पादपों के प्राकृतिक चयन की यह प्रक्रिया उस समय तक स्वाभाविक रूप से चलती रही जब तक कि मानव ने इसमें वांछित गुणों वाले पौधों को प्रोत्साहित करने के लिए सक्रिय हस्तक्षेप नहीं किया। मनचाहे उत्पाद की प्राप्ति के लिए किए गए सुधारों से उन कारकों का ह्रास हुआ जो प्रतिरोध प्रक्रिया से जुड़े थे । गेहूँ की किस्म *अन्डरहिल* में हेसियन फ्लाई *(माइटिओला डेस्ट्रक्टर)* के लिए प्रतिरोध 1785 से ज्ञात है[6] । इसे कीट पादप संबंध का सबसे अग्रिम अभिलेख माना जाता है ।

पादप प्रतिरोध का दूसरा प्राचीन उदाहरण सेब की *विंटर मेजेटिन* किस्म है जिसने लगभग 100 वर्ष पूर्व वूली एफिड (*एरियोसीमा लैनीजीरमे*) के विरुद्ध प्रतिरोध दिखाया था[7]। इसी प्रकार सेब की नॉर्दन स्पाई किस्म भी कीट से प्रभावित नहीं होती है।

कीटों के लिए पादप प्रतिरोध का उत्कृष्ट उदाहरण अंगूर की अमेरिकी किस्मों से मिलता है। ये किस्में अंगूर के कीट *फिलॉक्सेरा वाइटीफोली* के प्रति यूरोपीय किस्मों *विटिस विनिफेरा* की तुलना में बहुत अधिक प्रतिरोधी पाई गई थीं। उन्नीसवीं सदी के अंत में फ्रांस में फिलॉक्सेरा कीट के प्रकोप से अंगूर की बेलें बड़े पैमाने पर नष्ट हो गयी थीं जिससे वहाँ शराब उद्योग भारी संकट में पड़ गया था। इस समस्या का समाधान अंगूर की अमेरिकी किस्मों को अमेरिका से फ्रांस लाकर अंगूर के बागानों में लगाकर किया गया। इससे फ्रांस की गिरती हुई आर्थिक स्थिति को नया सहारा मिला।

परपोषी-पादप प्रतिरोध के क्षेत्र में मिली इन सफलताओं के उपरांत भी इस शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। पेंटर और उसके साथियों ने अमेरिका की कैन्सास स्टेट युनिवर्सिटी में सन् 1920 के उत्तरार्ध में इस संबंध में अग्रता लेकर व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया। स्नेलिंग[8] ने पादप प्रतिरोध के संबंध में 567 उल्लेखों का पुनरवलोकन किया जिससे स्पष्ट हुआ कि सन् 1920 से पहले कीटों के प्रति पादपों के प्रतिरोध संबंधी केवल 20 शोध-पत्र ही प्रकाशित हुए थे।

पेंटर[9] ने परपोषी पादप प्रतिरोध के संबंध में अपनी पुस्तक 'इन्सेक्ट रेसिस्टेन्स इन क्रॉप प्लान्ट्स' प्रकाशित कर कीट नियंत्रण में परपोषी-पादप प्रतिरोध के महत्व को दर्शाया; साथ ही इसको सुव्यवस्थित ढंग से प्रयोग में लाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसमें उस समय तक हुए परपोषी-पादप प्रतिरोध संबंधी कार्यों की विस्तृत समीक्षा की गई है। इसके अंतर्गत 1000 से भी अधिक संदर्भों का उल्लेख है तथा इसे आज भी आदर्श ग्रंथ माना जाता है।

परपोषी-पादप प्रतिरोध के प्रयासों में सन् 1960 के अंत में गति आई जब कीटनाशियों के प्रति कीटों में प्रतिरोध तथा पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न समस्याएं आईं। कीटविज्ञानी कीट नियंत्रण की ऐसी विधियां ढूंढने का प्रयत्न करने लगे जिनमें कीटनाशियों का बिल्कुल नहीं या कम से कम प्रयोग हो। परपोषी-पादप प्रतिरोध का उपयोग कीट नियंत्रण की ऐसी ही एक विधि है जिसे व्यवहार में लाने से कीटों के नियंत्रण में सफलता मिलने की बहुत अधिक आशा है, साथ ही पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं होगा। पादप-प्रतिरोध के विकास को आनुवंशिकी, पादप-जनन तथा कीटविज्ञान के विकास के साथ-साथ समझना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों से पादपों और कीटों का विकास साथ-साथ हुआ उसी प्रकार उन विज्ञानों का भी विकास हुआ जो मानव के भोजन तथा रेशों पर उनके प्रभावों का निर्धारण करते हैं। पादप-प्रजनन स्वयं में मानव द्वारा विकसित विधियों का उचित उपयोग ही है।

परपोषी-पादप प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों को उजागर करने वाली अनेक समालोचनाएं आज उपलब्ध हैं [10-16] । इनमें विभिन्न फसलों में कीटों के विरुद्ध पादप-प्रतिरोध के विकास को दर्शाया गया है । साथ ही प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों तथा प्रतिरोध की प्रकृति के संबंध में विस्तार से वर्णन किया गया है ।

परपोषी-पादप प्रतिरोध संकल्पना

परपोषी-पादप प्रतिरोध पौधे का वह गुण है जो उसे नाशक कीट के प्रकोप से बचने, उसे सहन करने अथवा उससे होने वाली क्षति से पुनः स्वस्थ हो जाने में समर्थ बनाता है जबकि उसी पर्यावरण में इस कीट द्वारा उसी जाति के अन्य पादपों को अधिक हानि पहुँचती है । यह गुण पादपों में जीव-रासायनिक अथवा आकृतिक विशेषताओं के कारण आता है तथा इससे कीटों के व्यवहार तथा चपापचय क्रियाएं प्रभावित होती हैं । पेंटर ने पादप प्रतिरोध को इस प्रकार परिभाषित किया था[9] : 'परपोषी-पादप प्रतिरोध (host plant resistance) पादप की वे वंशागत विशेषताएं (heritable qualities) हैं जिनकी आपेक्षिक मात्रा कीटों द्वारा की गयी क्षति के चरम परिमाण को प्रभावित करती हैं' । व्यावहारिक कृषि में प्रतिरोध उस अवस्था को दर्शाता है जिसमें कीट संख्या की उपस्थिति में भी पादप की एक विशेष किस्म दूसरी अन्य किस्मों की तुलना में अच्छी और अधिक उपज देती है । इससे स्पष्ट होता है कि यह विशेष किस्म कीटों द्वारा होने वाली क्षति को सहन करने में दूसरे किस्मों की अपेक्षा सक्षम है ।

बैक ने प्रतिरोध के परास को सीमित करते हुए कहा कि प्रतिरोध पादप की जाति, प्रजाति, क्लोन की अथवा व्यक्तिगत वे सामूहिक वंशागत विशेषताएं हैं जिनके द्वारा वह स्वयं को एक कीट जाति, प्रजाति, समानजीवी अथवा व्यष्टि द्वारा परपोषी की भांति उपयोग में लाने से रोकती हैं । यह परिभाषा कीट द्वारा पादप को परपोषी की भांति उपयोग में लाने से संबंधित कीट-पादप पारस्परिक क्रियाओं के क्षेत्रों को कम करती हैं तथा इसमें पादप के उस गुण का समावेश नहीं होता जिसके द्वारा वह कीटों द्वारा होने वाली क्षति से अपने को पुनः स्वस्थ बनाता है[17] । परपोषी-पादप प्रतिरोध कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ऐसी कृषिजोपजातियों अथवा कृषि किस्मों (cultivars) का विकास करना है जो कि नाशक कीट के लिए प्रतिरोधी हों, साथ ही उनमें आधारभूत सस्य गुणों का समावेश भी हो । पादप प्रतिरोध का महत्व कीट प्रबंधन व्यवस्था युक्तियों में इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ दूसरी नियंत्रण विधियों की कितनी उपलब्धता तथा उपयोगिता है । नाशक कीट के नियंत्रण के लिए पादप प्रतिरोध को अन्य विधियों के साथ आंशिक अथवा मुख्य नियंत्रण विधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है । अमेरिका में कीट प्रतिरोधी जातियों का उपयोग करके कृषकों द्वारा करोड़ों डॉलर बचाये गए हैं[18] । भारत में भी अब इस दिशा में हुए अध्ययनों से कीट प्रतिरोधी जातियों का विकास हुआ है (सारणी 1) ।

सारणी 1 – भारत में विकसित कीट प्रतिरोधी जातियां/स्रोत/कृषिजोपजातियाँ

फसल और उसके कीट	प्रतिरोधी जाति/स्रोत/कृषिजोपजातियां
धान	
तना वेधक(Scirpophaga incertulas)	रत्ना, सस्यश्री, साकेत, एम टी यू 5849, आई ई टी 3127 आई ई टी 2812
ब्राउन प्लांट हॉपर (Nilaparvata lugens)	मानसरोवर, भद्रा, ज्योति, सी ओ 42, एम टी यू 5249, आई ई टी 7575, आई ई टी 6315
गॉल मिज (Orseolia oryzae)	आई आर 36, कुंती, फाल्गुना, धान्यलक्ष्मी, सुरेखा, कुंती, फाल्गुना, शक्ति, श्यामली, आशा, राजेन्द्रधन
ह्वाइट बैक्ड प्लांट (Sogatella furcifera)	ए आर 133, आई सी 25687 टंगनेर, ऐमलबेरी
ग्रीन लीफ हॉपर (Nephotettix spp.)	आई आर 20, आई ई टी 7301, आई ईटी 7302, आई ई टी 7303, वानी
ज्वार	
तना बेधक (Chilo partellus)	ई-302, ई-303, पी-311, एस पी वी 1015 (पी जी एस 2), आई एस 2205, वी पी 53, कराड़लोकल
शूट फ्लाई (Antherigona soccata)	एम 35-1 एस पी वी 504, एस पी वी 491, आई एस 18551
मिज(Contarinia sorghicola)	डी जे 6514, ए एफ 28, आई सी एस वी 745
हेडवग(Calocris angustatus)	आई एस 17610, चेनचोलम, आई एस 17645
मक्का	
तना बेधक(Chilo partellus)	हिम 123, अगेती, कंचन, कुंदन, गंगा 4, 5, 7, और 9, गंगा सफेद, वी एल 54, सी 1, 3 और 7
गुलाबी तना बेधक (Sesamia inferens)	डीकन 101 और 102
बाजरा	
शूट फ्लाई (Antherigona aproximata)	एम एच 386, 392, 398 और 401
तना बेधक(Chilo partellus)	एम एच 392 और 398
ग्रे-वीविल (Myllocerus spp.)	एम एच 405 और 406
रागी	
गुलाबी तना बेधक (Sesamia inferens)	के एम- 1

सारणी 1 – भारत में विकसित कीट प्रतिरोधी जातियां/स्रोत/कृषिजोपजातियाँ

फसल और उसके कीट	प्रतिरोधी जाति/स्रोत/कृषिजोपजातियां
चना	
फली बेधक (Helicoverpa armigera)	आई सी सी 506, 6663, 5264 और 10667, आई सी सी वी 7, दूलिया, पी डी ई 2
अरहर	
फली बेधक (Helicoverpa armigera)	आई सी पी एल 332 और 84060, पी पी ई 45-2 एम ए 2
पॉड फ्लाई (Melanagromyza obtusa)	
मटर	
फली बेधक (Etiella zinkenella)	वोनविले, टी 6113, पी एस 410, ई सी 33860, 172 एम, 2 एस 21
लीफ माइनर (Phytomyza horticola)	पी 402, पी एस 40, टी 6113
लोबिया	
फली बेधक (Maruca testulalis)	वांसवारा, जी 20, सी 55 जी 7, सी आर 2-55, पी 1461
जैसिड (Empoasca Kerri)	जे जी 10-72, एन एस 19-4-1, सी 152
एफिड (Aphis craccivora)	पी 1473 और 1476, एम एस, 9369
ग्लेरुसिड भृंग (Maduracia obscurella)	5269
मूंग	
फली बेधक (Maruca testulalis)	जे 1, एल एम 11, पी 526 और पी 336
ह्वाइट फ्लाई (Bemisia tabaci)	एम एल 337, 5 और 325, एम एच 85-61
तना मक्खी (Ophiomyia centrosematis)	सी ओ 3
ग्लेरुसिड भृंग (M. obscurella)	जवाहर 45, गुजरात 1, पी एल एम एस 33, और 4, आर 12-16-3, एस 9

सारणी 1 – भारत में विकसित कीट प्रतिरोधी जातियां/स्रोत/कृषिजोपजातियाँ

फसल और उसके कीट	प्रतिरोधी जाति/स्रोत/कृषिजोपजातियां
उड़द	
फली बेधक (Maruca testulalis)	कलाई, कृष्णा 338-3, सी ओ 3, 4 और 5
जैसिड (E. Kerri)	सिनखेडा 1, कृष्णा, एच 70-3 यू पी वी 1
तना मक्खी (O. centrosematis)	कराइलेल, कलीकुलम, सी ओ 3, 4 और 5, पी 58, 338-3
ग्लेरुसिड भृंग (M. obscurella)	पूसा 1, कृष्णा, के जी 3, टी 9, टी 27, जी 1 एच 11
सोयाबीन	
लीफ माइनर (Aproaerema modicella)	निमसीय, पी आई 227687, पी एल 507
मूंगफली	
लीफ माइनर (Aproaerema modicella)	आई सी जी वी 86031 और 156 (M 13) डी आर एस 10, आई सी जी, 57, 156, 541, 7016, 7404 और 9883
तंबाकू की सूंडी (Spodoptera litura)	आई सी जी वी 86031, एफ डी आर एस 10
जैसिड (E. Kerri)	एन सी ए सी 2230, एम 13, आई सी जी 5043 और 5049
थ्रिप्स (Thrips palmi)	एम 13, रोबट 33-1, आई सी जी 5043 और 5044
कपास	
पिंक बोलवर्म (Pectinophora gossypiella)	जी 27, एल डी 135, लोहित, सुजाता, एम सी यू 7, अबाधिता, दिग्विजय, संगुहनियम
स्पौटेड बोलवर्म (Earias vitella)	एल 1245, संगुइनियम, जे के 119-25-54, वी सी एस 10 और 10-75
जैसिड (Amrasca biguttula biguttula)	खंडवा 2, बदनाबर, कृष्णा, एम सा यू 5, महालक्ष्मी, संगुइनियम, सुजय, एकांत

सारणी 1 – भारत में विकसित कीट प्रतिरोधी जातियां/स्रोत/कृषिजोपजातियाँ

फसल और उसके कीट	प्रतिरोधी जाति/स्रोत/कृषिजोपजातियां
ह्वाइट फ्लाई (Bemisia tabaci)	एल के 861, कंचन, अमरावती, सुप्रिया, एल पी एस 141
गन्ना	
अगोला वेधक (Scirpophaga exerptalis)	सी ओ 7224, सी ओ 67 सी ओ 1158
पर्व बेधक (Chilo sacchariphagus indicus)	सी ओ 6806, सी ओ 62175, सी ओ 975, सी ओ 77-1
स्केल (Melanaspis glomerata)	सी ओ 671, सी ओ 8014, सी ओ 62174 सी ओ 1132 सी ओ 611, सी ओ 6907
ह्वाइट फ्लाई (Aleurolobus barodensis)	सी ओ 671
सफेद लट (Holotrichia spp.)	सी ओ 6304, सी ओ 1158, सी ओ 5510
बैंगन	
तना और फल बेधक (Leucinodes orbonalis)	एस एम 68, पूसा पर्पल, डोली 5, चकलसी डोली, एस एम 67, एस एस 68
जैसिड (A. bigutulla bigutulla)	पूसा पर्पल, डोली 5 चकलसी डोली
ह्वाइट फ्लाई (B. tabaci)	पूसा पर्पल
टमाटर	
फल बेधक (H. armigera)	वी टी 1, टी 27 और 32
भिंडी	
तना और फल बेधक (E. vittela)	परकिंस लोंग ग्रीन, ए ई 57, पी एम एस 8, एस 8, पी के एक्स 9275, करनाल स्पेशल

सारणी 1 – भारत में विकसित कीट प्रतिरोधी जातियां/स्रोत/कृषिजोपजातियाँ

फसल और उसके कीट	प्रतिरोधी जाति/स्रोत/कृषिजोपजातियां
आलू	
टयूबर मॉथ (Phthormoea operculella)	क्यू वी 1A 21-29
तंबाकू	
तंबाकू की सूंडी (S. litura)	जी टी 4, डी डैब्ल्यू एफ सी
एफिड (Myzus persicae)	जमैका, क्यूबन, फ्रैन्ससंस, सुमात्रा, लिटिल रिटेन्डेन्ट
तना बैधक (Scrobipalpa haliopa)	एस वी आर 1 और 2

परपोषी पादप प्रतिरोध का उपयोग दूसरी कीट नियंत्रण विधियों के साथ उपबंध (adjunct) के रूप में किया जाता है । प्रतिरोधी कृषि किस्मों पर पीड़कनाशियों अथवा रोगाणुओं की कम मात्राओं की आवश्यकता होती है, साथ ही इनके उपयोग का अंतराल भी बढ़ जाता है । पादप प्रतिरोध को ढूंढना किसी भी फसल सुधार कार्यक्रम का अभिन्न अंग होना चाहिए, विशेषकर उन फसलों में जहाँ उत्पादन में कीटों से सार्थक क्षति होने की पूरी संभावना हो । कीट प्रतिरोधी कार्यक्रम के अंतर्गत पादप प्रजनन से पहले सभी उपलब्ध 'जर्मप्लाज्म' का मूल्यांकन 'परीक्षण (स्क्रीनिंग)' द्वारा मुख्य नाशक कीटों के विरुद्ध ग्रहणशीलता के लिए करना उपयुक्त होगा तथा उसकी तुलना आजकल उगाई जा रही कृषि किस्मों से की जानी चाहिए । इससे कीटों के प्रति अधिक ग्रहणशीलता दिखाने वाली कृषि किस्मों को छांट कर अलग कर देने में सहायता मिलेगी । कई नाशक कीटों के लिए प्रतिरोध का विकास एक साथ करना सरल नहीं है पर एक नाशक कीट के विरुद्ध पादप प्रतिरोध के विकास के समय अन्य नाशक कीटों का भी यदि ध्यान रखा जाए तो इनके प्रति अतिसंवेदनशीलता अथवा ग्रहणशीलता दर्शाने वाली किस्मों को आसानी से अलग किया जा सकता है ।

पादप प्रजनन तथा सस्य संबंधी विकास कार्यक्रमों में यह आवश्यक है कि मुख्य फसलों अथवा महत्वपूर्ण उत्पादन क्षेत्रों को समान आनुवंशिक आधार वाली कृषिजोपजातियों से न भरा जाए, चाहे आनुवंशिक आधार की आधारशिला कीट प्रतिरोधी ही क्यों न हो । पादप प्रतिरोध निम्नलिखित परिस्थितियों में लाभकारी होता है :

(i) जहाँ कीट अपने जीवन-चक्र में कुछ समय के लिए ही क्रांतिक होता है ।

(ii) जहाँ फसल कम मूल्य वाली हो ।

(iii) बड़े क्षेत्र में लगाई गई फसल के उत्पादन में कीट सीमाकारी कारक हों, तथा

(iv) जब दूसरी नियंत्रण विधियां उपलब्ध न हों (गेहूँ की हेसियन फ्लाई तथा सॉफ्लाई ऐसे ही उदाहरण हैं, जहाँ पादप प्रतिरोध मुख्य नियंत्रण विधि है) ।

कीटों द्वारा परपोषी पादपों के चयन की क्रियाविधि

कीटविज्ञानी वर्षों से यह जानने के लिए प्रयत्नशील हैं कि कीटों द्वारा परपोषी पादप का चयन कैसे किया जाता है । इस क्रियाविधि के लिए अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं । एक मतानुसार कीट उन पौधों को ढूंढते तथा उनका उपयोग करते हैं जिनसे उन्हें वे आवश्यक पोषक पदार्थ मिलते हैं और जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है । इसका अर्थ है कि विभिन्न पौधों का पोषक-मान अलग-अलग होता है, साथ ही कीटों की आवश्यकताएं भी अलग-अलग होती हैं । वे पादपों के पोषक-मान का पता लगाने में सक्षम होते हैं और पादपों का अपनी आवश्यकतानुसार विभेदन कर लेते हैं । दूसरे मतानुसार सभी पौधे सभी पादपभक्षी कीटों की वे सभी पोषण संबंधी आवश्यकताएं पूरी कर सकते हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है (जब तक वे उन पर भरण करते हैं), लेकिन विभेदन के लिए 'द्वितीयक या गौण पादप पदार्थ' आवश्यक होते हैं । ये पदार्थ *आकर्षी* (attractant), *प्रतिकर्षी* (repellent) अथवा भरण उद्दीपक (feeding stimulant), *अपमार्जक* की भांति कार्य करते हैं । अब यह स्पष्ट हो गया है कि दोनों ही सिद्धांत पूर्ण रूप से सही नहीं हैं लेकिन दोनों में से कुछ सत्यता के तत्व भी हैं (सारणी 2) ।

सारणी 2 - कीटों के व्यवहार तथा शारीरिक क्रियाओं पर पादप के रासायनिक कारकों का प्रभाव

ऐलीलोरासायनिक कारक	प्रभाव
ऐलोमोन	जो जीव इन्हें उत्पन्न करते हैं उन्हें ये अनुकूली लाभ देते हैं ।
प्रतिकर्षी	कीटों को पादप से दूर भगाते हैं ।
चलन उद्दीपक	गति को शुरू अथवा उसे तेज करते हैं ।
दमनक	छेदन को रोकते हैं ।
अपमार्जक	अंडनिक्षेपण या भरण को रोकते हैं ।

प्रतिजैविक	डिंमकों (लारवों) के विकास में व्यवधान उत्पन्न करते हैं । वयस्कों की जनन क्षमता तथा आयु काल को कम करते हैं ।
एन्टीजीनोटिक्स	सामान्य परपोषी पादप चयन-व्यवहार में व्यवधान डालते हैं ।
फेरोमोन	प्राप्त करने वाले जीवन को अनुकूली लाभ देते हैं ।
आकर्षी	कीटों को परपोषी पादप की ओर अग्रसर करते हैं ।
विरामक	गति को रोकते अथवा मंद करते हैं ।
उत्तेजक	छेदन अथवा अंडनिक्षेपण उत्पन्न करते हैं ।
भरणउद्दीपक	भरण की निरंतरता को बढ़ाते अथवा बनाए रखते हैं ।

कुछ कीटों में पादपों का चयन करने की क्रियाविधि को समझने में बहुत प्रगति हुई है जबकि दूसरे कीट किस प्रकार पौधों का चयन करते हैं, यह पता नहीं है । अब तक उपलब्ध ज्ञान से स्पष्ट है कि पादपों की रासायनिक प्रकृति कीटों द्वारा पादपों के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

पौधों के वाष्पशील रासायनिक घटक कीटों को दूर से आकर्षित अथवा प्रतिकर्षित करते हैं । पादप से कीट का संपर्क अथवा स्पर्श हो जाने पर पादप से उत्पन्न दूसरे रसायन कीट विभेदन को प्रभावित करते हैं । इसके फलस्वरूप कीट भोजन अथवा अंडनिक्षेपण के लिए उद्दीपित (प्रेरित) अथवा अपमार्जित होते हैं । पादप के रासायनिक घटकों का संतुलन ही इस बात को निर्धारित करता है कि कीट द्वारा पादपों का चयन किया जाएगा अथवा नहीं । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पोषक कारण महत्वपूर्ण नहीं हैं । पादपों के पोषक तत्वों में भी विविधता होती है, पर हर पादप कीट का परपोषी नहीं हो सकता । इसके लिए आवश्यक है कि पादप कीट को आवश्यक पोषक पदार्थ प्रदान करे और उसमें हानिकारक पदार्थों का समावेश न हो । पादपों की केवल रासायनिक संरचना ही पादपों के चयन को प्रभावित नहीं करती बल्कि भौतिक कारक, जैसे पत्तियों की बनावट और चर्मिलता, भी कीटों द्वारा पादपों के चयन को प्रभावित करते हैं । (सारणी 3)

सारणी 3 – पादपों के आकृतिक तथा भौतिक कारकों का प्रभाव

पादप कारक	कीट पर प्रभाव
कोशिका-भित्तियों का मोटा होना तथा ऊतकों की अधिक दृढ़ता	कीटों के भरण तथा अंड-निक्षेपण में अवरोध
तनों की घनता तथा संबंधित लक्षण	कीटों की भरण तथा अंडनिक्षेपण क्रियाविधियों में अवरोध, अंडों का निर्जलीकरण
क्षतिग्रस्त ऊतकों में प्रचुरोद्भवन	प्रारंभिक क्षति के बाद कीट की मृत्यु
आधारी मोम का एकत्रीकरण	उपनिवेशन तथा अंडनिक्षेपण पर प्रभाव

सिलिका की उपस्थिति	अध्यावरण में खरोचें, भरण क्रिया में अवरोध
त्वचारोम	भरण, पाचन, अंडनिक्षेपण, गति, संबंध आदि पर प्रभाव, ग्रंथिल त्वचारोमों के ऐलीलोरसायनों के विषैले प्रभाव
अतिविशिष्ट अंगों में शारीरिक परिवर्तन	उत्तरजीविता में कमी, मृत्यु आदि ।
पर्णच्छद तथा तने से बना गहरा अक्ष	अक्ष में पानी भरने से नवजात डिंभकों (लारवों) की मृत्यु
निचली पत्तियों का गिरना	नवजात लारवों को आश्रय न मिलना
सहपत्रों की संकीर्णता तथा मुड़ना	उत्तरजीविता पर प्रभाव
हस्क का कसा होना	भरण पर प्रभाव

पादप प्रतिरोध कार्यक्रम के आवश्यक घटक

पादप प्रतिरोध कार्यक्रम की स्थापना के लिए निम्नलिखित घटकों का ज्ञान आवश्यक है :

कीट का जीवन-चक्र

कीट प्रतिरोध कार्यक्रम आरंभ करने से पहले नाशक कीट के जीवन-चक्र पर जैविक तथा अजैविक कारकों के प्रभाव को जानना आवश्यक है । इसमें भरण स्वभाव संबंधी व्यवहार, अंडनिक्षेपण, गति, जनन-क्षमता तथा पर्यावरण का नाशक कीट संख्या पर प्रभाव आदि सम्मिलित हैं । ऐसे परीक्षणों की अभिकल्पना करना नाजुक स्थिति होती है जो महत्वपूर्ण विशेषकों की जैविक अभिव्यक्ति, परपोषी अथवा नाशक कीटों के लक्षणों का निवारण नहीं करते हैं । प्रायः नाशक कीट तथा परपोषी अभिक्रियाएं अपने औसत से अलग होने के आधार पर श्रेणीकृत की गई हैं । नाशक कीट की जैविकी तथा परपोषी पादप के विकास में समाकलन होता है । इसे यूरोपियन मक्का वेधक की सूंडियों के प्रथम तथा द्वितीय निरूपों (इंस्टारों) के प्रति मक्के की विभिन्न किस्मों में उपस्थित प्रतिरोध द्वारा दर्शाया जा सकता है । इस कीट के भरण का स्थान तथा भरण व्यवहार उसके तथा परपोषी के विकास की अवस्था पर निर्भर करते हैं । प्रारंभ में मक्के के पौधे की 5 से 10 पत्तियों वाली अवस्था में सूंडियां पत्तियों के चक्र पर भरण करती हैं लेकिन जैसे-जैसे सूंडियां तथा मक्का परिपक्व होते हैं सूंडियां (कीट) तना बेधक का रूप ले लेती हैं[19] ।

नाशक कीट समष्टि की उपस्थिति

कीट प्रतिरोध कार्यक्रम की सफलता के लिए नाशक कीट समष्टि की उपस्थिति आवश्यक है । यह एक समान बनी रहनी चाहिए, साथ ही इष्टतम समष्टि की पहचान के प्रयास किए जाने चाहिए । इससे जीनप्ररूपों (genotypes) के बीच विभेद करने में सहायता मिलती है । कीट की इष्टतम समष्टि का उद्देश्य अधिकतम संख्या नहीं होना चाहिए । कीट समष्टि निम्न प्रकार से प्राप्त हो सकती है :

(i) खेतों में उपस्थित कीट समष्टि का गहनता से प्रबंधन,

(ii) पादप पर प्राकृतिक रूप से नाशक कीट का पालन-पोषण जो कीट नर्सरी अथवा कीट-गृह आदि में हो सकता है, तथा

(iii) कृत्रिम रूप से नाशक कीट का पालन-पोषण करना ।

इस संबंध में '*कृत्रिम आहारों*' को विकसित करने की आवश्यकता होती है । लेपीडोप्टेरा वर्ग के कई मुख्य नाशक कीटों के पालन-पोषण के लिए इस प्रकार के आहार विकसित किए गए हैं । विभिन्न कीटों के लिए बनाए गए कृत्रिम आहारों तथा उन पर कीटों के बड़े पैमाने पर संवर्धन या पालन-पोषण के महत्व को कई वैज्ञानिकों ने विस्तार से बताया है [19-24] ।

प्रयोगशाला में कीटों के पालन-पोषण के समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पोषित समष्टि के जैविक तथा व्यावहारिक लक्षणों में प्राकृतिक रूप से उपस्थित कीट संख्या की तुलना में कोई अंतर न आने पाए । इसके लिए प्रयोगशाला में चल रहे बड़े पैमाने पर कीट अथवा उसकी विभिन्न अपरिपक्व अवस्थाओं को लेकर फिर से आरंभ करना चाहिए । इसके बाद इनकी संतति को कृत्रिम आहार पर लाना चाहिए । इससे प्रयोगशाला में संवर्धित कीट अथवा उसकी अपरिपक्व अवस्थाओं को खेत में छोड़े जाने पर उन्हें परपोषी पादप को ढूंढने में कठिनाई नहीं आएगी । इसके साथ ही कीट की जनन-क्षमता का भी ह्रास नहीं होगा ।

जर्मप्लाज्म (जननद्रव्य) तथा आनुवंशिक स्रोतों का महत्व

आनुवंशिक विविधता का पादप प्रजनन कार्यक्रम में अत्यधिक महत्व होता है । यह इस कार्यक्रम को कच्ची सामग्री प्रदान करती है । यह सामग्री जर्मप्लाज्म एकत्रण से आती है । प्रकृति में उपस्थित प्राकृतिक प्रतिरोध को प्राप्त करने के लिए पादप खोज तथा एकत्रण, विशेषकर फसल विशेष के उद्गम स्थान से पादपों का एकत्रण, वैज्ञानिकों का एक विवेकपूर्ण कार्य है । प्रकृति में एक जाति की अनेक उपजातियां होती हैं और उनका प्रतिचयन भी अपने आप में एक चुनौती है । इसी कारण अभी तक कोई जर्मप्लाज्म एकत्रण अपने में पूर्ण नहीं है । अब विभिन्न फसलों के जर्मप्लाज्म एकत्रण को विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय

तथा राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा सुरक्षित रखा जा रहा है, जिससे उनका समय-समय पर उपयोग किया जा सके ।

प्रतिरोप स्रोतों की पहचान

प्रतिरोध के स्रोतों को पहचानने के लिए परीक्षण (स्क्रीनिंग) तकनीक अपनाई जाती हैं । इस प्रक्रिया का अर्थ है प्रतिरोध ढूंढने के लिए विभिन्न पादप जातियों का कीट क्षति के संदर्भ में अवलोकन करना, जिससे पादपों में कीटों का प्रतिरोध दिखाने वाले स्रोत को पहचाना जा सके । इस तकनीक को तर्कसंगत रूप से कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित अनुक्रमों का उपयोग करना चाहिए :

(i) प्रतिरोध स्रोतों को ढूंढने के लिए अनुकूली कृषिजोपजातियों (कृषि किस्मों) का परीक्षण,

(ii) प्रविष्ट पादपों तथा विदेशी जर्मप्लाज्म में प्रतिरोध के स्रोत को ढूंढना, तथा

(iii) अनुकूली कृषिजोपजातियों की निकट संबंधी जातियों में प्रतिरोध की उपस्थिति को पहचानना ।

प्रतिरोध के स्रोत की पहचान के बाद उसे उपयोगी बनाने के लिए उपयुक्त प्रजनन विधि को अपनाया जाता है ।

आमापन तकनीकें

परपोषी पादपों में भिन्नताओं का निर्धारण एक आमापन विधि से ही संभव हो सकता है । परपोषी की अभिक्रिया में भिन्नताओं के मापन के अतिरिक्त यह महत्वपूर्ण है कि विसंगति के स्रोत और पहचाने गए विशेषक अथवा विशेषकों की वंशागति को भी आंका जाए । कीट के प्रति पादप प्रतिरोध को नाशक कीट अथवा पादप की प्रतिक्रिया अथवा दोनों का एक प्रभाव अथवा परिणाम के रूप में वर्णन किया जा सकता है । अत: प्रतिरोध का अध्ययन दो आयामों में हो सकता है : (i) परपोषी पादप में विभिन्नताएं, तथा (ii) नाशक कीट समष्टि में विभिन्नताएं ।

आमापन तकनीकों के लिए यह आवश्यक है कि जब उन्हें प्रयुक्त किया जा रहा हो तो पादपों की अवस्था एक समान हो अथवा नवोद्भिदों के परीक्षण के समय जहाँ तक संभव हो सके नवोद्भिदों की अवस्था एक सी हो । इसके साथ ही पादपों की वानस्पतिक अवस्था की तुलना बीज उत्पन्न कर रहे पादपों से नहीं की जानी चाहिए । इन तकनीकों का उपयोग पादपों की उस अवस्था पर किया जाना चाहिए जब नाशक कीट उन्हें ग्रसित कर रहा हो ।

आमापन तकनीकों में ऐसा प्रावधान होना चाहिए कि यदि वैज्ञानिक किसी घटना को देखता है तो उसका उनमें समावेश कर सके । नवोद्भिद् अवस्था के प्रतिरोध तथा अधिक परिपक्व अवस्था के प्रतिरोध के बीच सहसंबंध को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

नवोद्भिद् परीक्षण तकनीकों द्वारा बड़े पैमाने पर स्पौटेड अल्फाल्फा एफिड के प्रति प्रतिरोध दिखाने वाले स्रोतों का चयन बहुत अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है । यह एफिड अल्फाल्फा के पादपों को बढ़वार के समय प्रत्येक अवस्था में ग्रसित करता है और पादप बढ़वार की हर अवस्था में प्रतिरोध दिखाते हैं । इसके विपरीत नवोद्भिद् परीक्षण तकनीकें मक्के तथा ज्वार की पत्तियों के एफिड के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुई हैं । पादपों में प्रतिरोध का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित कसौटियों के प्रयोग का उल्लेख किया गया है [25] :

- ग्रसित कृषिजोपजातियों को देखकर मूल्यांकन करना । उदाहरण के लिए, बढ़वार का रुक जाना, फसली पादपों का खेतों में गिर जाना, विवर्णन तथा कटाई आदि अवस्थाओं के अनुसार मूल्यांकन करना ।
- प्रकोप के बाद विभिन्न अंतरालों पर बचे हुए पौधों की संख्या का निर्धारण करना ।
- प्रकोप से प्रभावित और अप्रभावित पादपों के बीच उपज में भिन्नताओं का निर्धारण करना ।
- स्वतंत्र अवसर मिलने पर कृषिजोपजातियों की ओर आकर्षित होने वाले नाशक कीटों और लारवों की संख्या का निर्धारण करना ।
- कीट जीवन-चक्र की लंबाई, समय, मर्त्यता, जनन दर अथवा निर्मोचन के मापन द्वारा कृषिजोपजातियों अथवा पादपों पर ऐसे कीट के भरण के तुलनात्मक प्रभावों का प्रक्षेपण, जिसे उन पर सीमित रखा गया हो ।
- विभिन्न कृषिजोपजातियों पर निश्चित समय तक भरण करने के बाद नाशक कीटों का भार ।
- कीटों के द्वारा दिए गए अंडों की संख्या का निर्धारण करना ।
- पौधों पर बचे हुए कीटों और उनके द्वारा उत्पन्न संतति की संख्या का निर्धारण करना ।
- कीटों द्वारा किए गए कुल भोजन की मात्रा को मापना ।
- कीटों द्वारा उपयोग में लाए गए वास्तविक भोजन की मात्रा को मापना ।
- कीट क्षति का अनुकरण तथा पुनः प्राप्ति का प्रक्षेपण ।
- मूल्यांकन की अप्रत्यक्ष विधि, जैसे एक पौधे को भूमि से खींचने में लगाए जाने वाले बल की मात्रा से जड़ क्षति को मापना ।

- ऑल्फेक्टोमीटर में पादप की पत्तियों और पुष्पों के उपयोग से आकर्षण विभव का निर्धारण ।
- कीट अनुक्रियाओं और पादपों के रासायनिक कारकों में सहसंबंध ।
- उन कीटों की वृद्धि और जनन विभव का मूल्यांकन करना जो अनेक ऐसे पादप आहारों पर भरण करते हैं जिनमें विभिन्न पादप कृषिजोप-जातियां सम्मिलित हैं ।
- आकारिकीय घटकों तथा क्षति में सहसंबंध ।

बड़ी संख्या में पादप प्रविष्टियों का कीट क्षति के विरुद्ध मूल्यांकन करने के लिए प्रथम चार कसौटियां बहुत लाभकारी होती हैं । प्रारंभिक स्क्रीनिंग कार्यक्रम में कीटों की संख्या की गणना करके आपेक्षिक[1] अनुमतांक पैमाने का प्रयोग किया जाता है । प्रतिरोध कार्यक्रम में आगे बढ़ायी जाने वाली सामग्री को प्रतिरोध की दृष्टि से शीघ्र पहचानना तथा मध्यकों और सुग्राहियों में भेद करना मूलभूत आवश्यकताएं हैं ।

प्रतिरोध अनुमतांक पैमाना

प्रतिरोध मापन के लिए बहुत समय से चले आ रहे अनुमतांक पैमाने 0 से 3 और 0 से 5 थे । उच्च संख्याएं यहाँ सुग्राहिता को व्यक्त करती हैं । इन पैमानों का परिमार्जित रूप अब 0 से 9 है । अधिकांश विशेषकों के लिए अपनाया जाने वाला यह सामान्य पैमाना अथवा सूचकमान है । वे पादप किस्में जिन्हें 3 अथवा इससे कम सूचक मान मिलता है, इच्छित अथवा जनकीय स्रोतों तथा वाणिज्य किस्म के रूप में स्वीकार्य होती हैं । ये हर प्रकार के कीट संबंधी दबावों के होते हुए भी अपनी पूर्ण जैविक क्षमताओं को दर्शाती हैं, अर्थात् प्रभावी प्रतिरोधी होती है । 4 से 6 तक सूचक मान प्राप्त करने वाली पादप किस्में मध्यक होती हैं तथा 7 से 9 सूचक मान प्राप्त करने वाली पादप किस्में सुग्राही होती हैं । कम सूचक मान उच्च प्रतिरोध को दर्शाता है ।

प्रविष्ट पादपों तथा विसंयोजी समष्टियों का इस प्रकार मूल्यांकन करना चाहिए जिससे एक पादप से दूसरे पादप को कभी भी उत्पन्न होने वाली विभिन्नताओं के आधार पर पहचाना जा सके । केवल क्षेत्रक मूल्यांकन अधिक उपयोग नहीं होता है । प्रतिरोध लक्षणों की वंशागति पर किए जाने वाले अध्ययनों में प्रवणताओं अथवा प्रतिरोध स्तरों को प्रमात्रीकृत करना बहुत क्रांतिक हो जाता है ।

प्रतिरोध-स्तर

प्रतिरोध स्रोत की पहचान के साथ ही यह जानना आवश्यक है कि सामान्य से कितनी छोटी बढ़त पादप-प्रतिरोध के विकास के लिए उपयोग में लाने वाली होगी । इस

समस्या का हल, प्रतिरोध स्रोत को व्यापारिक स्तर पर खेती योग्य बनाने के आवश्यक प्रयास तथा कीट प्रबंधन कार्यक्रम के भीतर की अनुक्रियाओं में वैयक्तिक रूप में प्राथमिक विचार द्वारा किया जा सकता है । प्रतिरोधी कृषिजोपजातियों (कृषि किस्मों) के औसतों के मूल्यांकनों में सांख्यिकी का भी उपयोग करना चाहिए । कई दशकों से वैज्ञानिक $P=0.05$ सांख्यिक स्तर को उपयोग में ला रहे हैं ।

कीट-अग्रता

किसी फसल में यदि परपोषी-पादप प्रतिरोध कार्यक्रम चलाया जाना है तो उस फसल के नाशक कीटों में से जो नाशक कीट अधिक महत्व के हैं उनके विरुद्ध यह कार्यक्रम आरंभ करना चाहिए । इसके पीछे नाशक कीटों की विभिन्न श्रेणियों का होना है जो मुख्य नाशक कीट, संभावी नाशक कीट, प्रासंगिक नाशक कीट और आकस्मिक नाशक कीट हैं ।

किसी भी नाशक कीट के विरुद्ध विकसित प्रतिरोधी वंशक्रमों (लाइनों), जातियों अथवा किस्मों का मूल्यांकन उस नाशक कीट के साथ-साथ आकस्मिक, प्रासंगिक तथा संभावी कीटों के लिए भी कर लेना चाहिए, जिससे कि अन्य कीटों के प्रति सुग्राहिता से रक्षा हो सके । बहुत-सी स्थितियों में यह देखा गया है कि विशेष आनुवंशिक तकनीकों द्वारा इच्छित परिणाम के लिए पादप में जब प्रतिरोध लक्षण प्रविष्ट करते हैं तो विशेष कीट से पौधे की रक्षा हो जाती है, पर उससे दूसरी समस्याएं भी सामने आ जाती हैं; जैसे कपास में 'फ्रीगो ब्रैक्ट' किस्म, जो प्राथमिक कीट के प्रति प्रतिरोध दिखाती है, लेकिन अन्य कीटों के लिए सुग्राही हो जाती है । अतः प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम में कीट विशेष के लिए विकसित की जाने वाली विभिन्न लाइनों तथा जातियों का विशेष कीट के साथ ही अन्य नाशक कीटों के विरुद्ध मूल्यांकन करना चाहिए । इसके उपरांत केवल उन्हीं लाइनों का निरंतर विकास हो जिनमें कीट विशेष के साथ-साथ अन्य कीटों के प्रति भी अधिक नहीं तो कम सीमा तक ही प्रतिरोध हो ।

सारांश में पादप प्रतिरोध कार्यक्रम में प्रतिरोध स्रोत की पहचान प्रमुख है । किसी फसल द्वारा खेत में दर्शाया गया प्रतिरोध एक जटिल प्रघटना है और इसके साथ पादप की रासायनिक परिस्थितियां जुड़ी होती हैं, जिनका प्रभाव कीट के व्यवहार, भरण तथा जनन पर पड़ता है । इसके लिए आवश्यक है कि प्रतिरोध के रासायनिक आधार को जानने के लिए मूल अन्वेषण किए जाएं । इस दिशा में निरंतर प्रयासों से कई महत्वपूर्ण पादप-कीट रासायनिक पारिस्थितिक सिद्धांतों का विकास हुआ है । प्रतिरोध के रासायनिक आधार को परिभाषित करने के प्रयासों में जैसे-जैसे तेजी आती जा रही है वैसे-वैसे नवीन विधियों तथा सुग्राही उपकरणों का विकास हो रहा है ।

प्रतिरोध के लिए प्रजनन कार्यक्रम तथा कीट प्रबंधन में प्रतिरोध के उपयोग का जितनी शीघ्रता से विकास हुआ है उतनी तेजी प्रतिरोधी रसायनों के पहचानने तथा कीट द्वारा परपोषी-चयन की क्रियाविधियों के ज्ञान में नहीं आई है ।

पादप प्रतिरोध कार्यक्रम का उद्देश्य कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास करना है जिससे कि नाशक कीट की उपस्थिति में भी वे अच्छी उपज दे सकें । कीट प्रतिरोधी जातियां 'कीट प्रबंधन' अथवा 'समेकित कीट नियंत्रण' कार्यक्रम की नींव है । इनका सफलतम उपयोग तब होगा जब इन्हें परंपरागत सस्य विधियों तथा जैविक नियंत्रण विधियों के साथ सहयोगी विधि की भाँति उपयोग में लाया जाए । कम आर्थिक मूल्य की फसलों - जैसें ज्वार, बाजरा तथा मोटे अनाजों में कीट प्रतिरोधी जातियों का उपयोग कीट नियंत्रण का प्रमुख साधन होगा क्योंकि इन फसलों को उगाने वाला किसान आर्थिक रूप से संपन्न नहीं है । ज्वार, बाजरा, मक्का, धान, सोयाबीन तथा कुछ दलहनी फसलों में कई मुख्य नाशक कीटों की प्रतिरोधी किस्मों का विकास हो चुका है[3, 26-28] ।

कीट प्रबंधन कार्यक्रम में कीट प्रतिरोधी जातियों के उपयोग से मुख्यनाक कीटों के उन प्राकृतिक शत्रुओं को बनाए रखने में सहायता मिलेगी जो कीटनाशियों के उपयोग से नष्ट हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त कीट प्रतिरोधी जातियों के उपयोग से पर्यावरण में संतुलन बना रहेगा तथा नाशक कीट समस्याओं में भी कमी आएगी ।

संदर्भ :

1. *जेंग एस, क्रॉप प्रोटेक्शन एंड सस्टेनेबल एग्रीकल्चर (जॉन विली एंड संस, न्यूयार्क) 1993, 228-232.*
2. *परफेक्ट टी जे, पेस्ट मैनेजमेंट एंड एन्वायरनमेंट इन 2000 (सी-ए-वी इंटरनेशनल, वेलिंगफोर्ड, ऑक्सॉन, यू.के.) 1992, 47-53.*
3. *प्रेम किशोर, एडवान्सेज इन होस्ट प्लांट रेजिस्टेन्स टु इन्सेक्ट्स में (संपादक जी एस धालीवाल एंव वी के दिलवारी (कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली) 1993, 11-150.*
4. *प्रेम किशोर एवं गहुकर आर टी, जर्नल ऑफ एन्टोमोलॉजिकल रिसर्च, 17(2)(1993) 91-98.*
5. *प्रेम किशोर एवं गहुकर आर टी, जर्नल ऑफ एन्टोमोलॉजिकल रिसर्च, 16(2)(1992) 155-162.*
6. *हेवेन्स जे एन, सोसायटी ऑफ एग्रोनोमी न्यूयार्क, ट्रान्स 1, (1972) 89-107.*
7. *डिले जी, ए गाइड टु ऑर्चर्ड एंड किचन गॉर्डव (लॉगमेन्स लंदन) 1831.*
8. *स्नेलिंग आर ओ, बोटैनिकल रिसर्च, 7 (1941) 543-586.*
9. *पेंटर आर एच, इन्सेक्ट रेजिस्टेन्स इन क्रॉप प्लांट्स (मेक्मिलन कंपनी, न्यूयार्क) 1959.*
10. *ऑक्लेयर जे एल, माल्टाइस जी वी एवं कार्टियर जे जे, कैनेडियन एन्टोमोलॉजी, 69 (1957) 457-464.*

11. पेंटर आर एच, एनुअल रिव्यू ऑफ एन्टोमोलॉजी, 3 (1958) 267-290.
12. बैक एस डी, एनुअल रिव्यू ऑफ एन्टोमोलॉजी, 10 (1965) 207-232.
13. इन्सेक्ट प्लांट इन्टरऐक्शन्स, रिपोर्ट ऑफ ए वर्क कांफ्रेन्स (नेशनल एकैडमी ऑफ साइंसेज वाशिंगटन डी. सी.) 1971.
14. मैक्सवेल एफ जी, जैन्किन्स जे ए एवं पेरोट डैब्ल्यू एल, एडवान्सेज इन एग्रोनॉमी, 24 (1973) 187-265.
15. वान एम्डन एच एफ, प्रोसीडिंग्स ऑफ सिम्पोजियम रॉयल एन्टोमोलॉजिकल सोसायटी, लंदन, 6 (1965) 215.
16. ग्लुन आर एल, स्टार्क्स के एल एवं गथरी डैब्ल्यू डी, एनुअल रिव्यू ऑफ एन्टोमोलॉजी, 20 (1975) 33-357.
17. बैक एस डी एवं लिली जे एच, आयोवा स्टेट कॉलेज जर्नल आफ साइंसेज, 23 (1959) 249-259.
18. लुगिनविल पी, यू एस डी ए प्रोडक्शन रिसर्च रिपोर्ट, 111 (1969) 14.
19. गथरी डैब्ल्यू डी, रोन ई एस, डिके एफ ई, पेशो जी आर एवं कास्टर एस डैब्ल्यू आयोवा स्टेट कॉलेज जर्नल ऑफ साइंसेज, 40 (1965) 65-83.
20. हाउस एच एल, सिंह पी एवं बेच डैब्ल्यू डैब्ल्यू कैनेडियन डिपार्टमेंट इन्फॉर्मेशन बुलेटिन रिसर्च इंस्टिट्यूट, 7 (1971) 156.
21. सिंह वीवी डेडली एच एच एवं बर्नार्ड आर एल , क्रॉप साइंस, 11 (1971) 13-16.
22. राड्रीगोज जे जी (संपादक), इन्सेक्ट एंड माइट न्यूट्रीशन (नॉर्थ हालैंड, एम्सटर्डम)1972.
23. डाड ओर एच, एनुअल रिव्यु ऑफ एन्टोमोलॉजी 18 (1973) 381-421.
24. बानडरजेंट ई एस, एनुअल रिव्यू ऑफ एन्टोमोलॉजी, 19 (1974) 139-160.
25. डाह्यास आर जी, जर्नल ऑफ एन्टोमोलॉजिकल रिसर्च, 11 (1) (1987) 115-118.
26. प्रेम किशोर, जर्नल ऑफ एन्टोमौलॉजिकल रिसर्च, 11 (1) (1987) 115-118.
27. प्रेम किशोर, जर्नल ऑफ एन्टोमौलॉजिकल रिसर्च, 16 (4) (1992) 319-321.
28. केलोडे एम बी तथा शर्मा एच सी, पैस्ट्स एंड पैस्ट मैनेजमेन्ट इन इंडिया - दी चैंजिंग सिनारिओ (संपादक : एच सी शर्मा एवं एम वी राव) (प्लांट प्रोटेक्शन एसोसियेशन ऑफ इंडिया, हैदारबाद), 1993, 229-243.

• • • • •

तथ्यों के आईने में गंगा

- डॉ॰ अजय श्रीवास्तव एवं
डॉ॰ सच्चिदानंद सिंह

हमारे पर्यावरण की महत्वपूर्ण अंग नदियाँ मानव सभ्यता के उत्थान एवं पतन की कहानी संजोये हुए हैं । विश्व की अनेक सभ्यताएँ नदियों के किनारे पल्लवित एवं पुष्पित हुई । वेदों में नदियों को 'आपो देवीः' और कहीं-कहीं 'स्वर्वती अपः' भी कहा गया है । 'स्वर्वती अपः' अर्थात् वह पानी जिसमें सूर्य का प्रकाश भरा हो । परंतु सभ्यता के विकास के साथ-साथ नदियों का मूल स्वरूप विकृत होता गया । घरेलू कूड़े-कचरे, कल-कारखानों के उच्छिष्ट व सीवर मलजल के कारण नदियों का जल अस्वास्थ्यकर एवं दुर्गंधयुक्त होता जा रहा है । हिंदू मान्यता के अनुसार लोगों के पापों को धोकर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करने वाली पतित पावनी गंगा नदी की स्थिति अत्यंत शोचनीय है । संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित दस नदियों में गंगा का उल्लेख किया गया है । गंगा की महत्ता सर्वविदित है । हमारे धर्मग्रंथों - स्कंदपुराण, बाल्मीकी रामायण, शतपथ ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, भागवत एवं ऋग्वेद में गंगा की महिमा वर्णित है । गंगा माहात्म्य को दर्शाने वाली 'गंगा लहरी' भारतीय साहित्य का अमूल्य रत्न है । भागवत में गंगा को विष्णुप्रिया कहा गया है । स्कंदपुराण में कहा गया है कि -

न माधव समो मासो न कृतेन युगं समम् ।
न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गंगया समम् ॥

(स्कंदपुराण, वैशाखमाहात्म्य 02/1)

अर्थात् गंगा समस्त तीर्थों में महान है, जिसके दर्शन से ज्ञान, ऐश्वर्य, आयु, सम्मान प्राप्त हो जाता है । स्कंदपुराण में गंगा-जल की महिमा के संबंध में यह उल्लेख मिलता है -

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ।
न वर्ज्यं तुलसी पत्रं न वर्ज्यं जाह्नवी-जलम् ॥

हमारी संस्कृति, सभ्यता, धर्म व दर्शन की केंद्र बिंदु पुण्यसलिला गंगा की व्यथा छिपी नहीं है । गंगा में 15 करोड़ की जनसंख्या अपने 17 हजार छोटे-बड़े नालों से कूड़ा-करकट व मल-जल (सीवेज) का गंदा पानी तो डालती ही है, साथ ही साथ गंगा के किनारे बसे लगभग डेढ़ लाख उद्योग अपने हानिकारक रासायनिक बहिःस्राव भी डालते हैं । गोमुखी-गंगोत्री से निकलकर ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, वाराणसी, पटना व कलकत्ता

एवं अन्य शहरों से होती हुई गंगा बंगाल की खाड़ी में मिलने के पूर्व डी.डी.टी. फैक्ट्री, चर्म उद्योग, लुगदी मिल, खाद के कारखाने, रबर उद्योग व विभिन्न रासायनिक कारखानों के अति विषैले उच्छिष्ट पदार्थों से निरंतर प्रदूषित होती जा रही है। 48 प्रथम श्रेणी के व 66 द्वितीय श्रेणी के शहर अपना अनुपचारित मल-जल (सीवेज) प्रतिदिन गंगा नदी में डालते हैं। कलकत्ता व हावड़ा औद्योगिक नगरों से गुजरने वाली गंगा की सहायक नदी के रूप में एक धारा हुगली में पृथक् होकर दामोदर नदी से मिलती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। हुगली में 150 बड़े कारखानों का कचड़ा, 8 चर्म उद्योग, 12 कपड़ा मिल, 87 जूट मिल व 4 शराब उद्योग का विषैला उच्छिष्ट नदी में मिलता है। इसके कारण इन क्षेत्रों में नदी आज गंदे नाले (सीवर) में बदल गई है। वैज्ञानिक जाँच के परिणामतः जल में हैजा, अतिसार के विषाणु, आँव आमातिसार के सिस्ट, फफूंदी, पीलिया, गैस्ट्रो विषाणु मिले हैं। तट पर शवदाह की क्रिया संपन्न होती है फलतः जल का तापमान 5-6° सेंटीग्रेड तक बढ़ता है, जिसके कारण जल से 30-35 प्रतिशत ऑक्सीजन निकल जाती है जो जल की जीवन-दायिनी शक्ति है। इस नदी का जल हावड़ा जिले में उलुबेरिया से डायमंड हारबर तक और इसके आगे के 24 परगना जिले के इलाकों में इतना अधिक प्रदूषित है कि किनारे के आस-पास के लोग इसे सिंचाई के लिए भी प्रयोग में नहीं लाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार शहरों व ग्रामीण परिक्षेत्रों की 41.9 लाख किलोलीटर गंदगी प्रतिदिन गंगा में डाली जाती है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार गंगा नदी तट पर स्थित कारखानों से 11 लाख 75 हजार टन रासायनिक अवशेष समेत कई तरह की औद्योगिक छीजन, 1965900 किलोग्राम प्रदूषणकारी अन्य पदार्थ प्रतिदिन गंगा में डाले जाते हैं। इसके साथ 11 लाख 50 हजार टन रासायनिक खाद एवं 2573 टन पीड़कनाशी (पेस्टिसाइड) के अवशेष भी जल को प्रभावित करते हैं। 300 टन लाशों की राख, 1500 टन अधजले शव तथा अनगिनत मनुष्यों व पशुओं के शव गंगा में बहाये जाते हैं। यदि गंगा तट के किनारे बसे एक लाख से भी अधिक आबादी वाले 'ए' श्रेणी के 27 नगरों का गंदा जल उपचारित कर गंगा में डाला जाए तो 84 प्रतिशत प्रदूषण रुक जाएगा। लेकिन स्थिति में कोई परिवर्तन न हुआ तो जल में घुलित कैल्सियम, सोडियम, पोटेशियम, क्लोरीन, रेडॉन, आयोडीन व बैक्टीरियोफाज की मात्रा, जिनमें जल की विषाणुओं एवं जहरीले रासायनिक पदार्थों के प्रभाव को नष्ट करने की अभूतपूर्व क्षमता रहती है, नगण्य रह जाएगी और गंगा की पवित्रता का मिथक टूट जाएगा।

वाराणसी में गंगा की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। उत्तर प्रदेश जल निगम के एक आकलन के अनुसार वाराणसी में लगभग 120 करोड़ लीटर मल-जल प्रतिदिन नदी में छोड़ा जाता है। यहाँ के मल-जल में मुख्यतः मनुष्यों एवं पशुओं का मल-मूत्र, खाद्य पदार्थों का अपशिष्ट, जली हुई लकड़ियों के अवशेष, व अन्य ठोस अपशिष्ट होते हैं। घुलित निलंबित अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थ एवं अन्य कूड़ा-कचरा भी इसमें रहता है। शहरी कूड़े-कचरे का जमाव सती घाट, अस्सी नाला तथा तेलिया घाट पर होता है।

औद्योगिक अपशिष्ट व शहरी गंदगी क्षेत्र में विद्यमान मलजल बहुत-से छोटे-बड़े नालों द्वारा नदी में छोड़ दिए जाते हैं। इनमें नरायनपुर नाला, लक्ष्मनीया नाला, बलुआ घाट का नाला, कुटिया नाला, अस्सी नाला, शिवाला घाट का नाला, हरिश्चंद्र घाट का नाला, मुख्य नाला (सीवर) व वरुणा(नाला) नदी मुख्य हैं।

इस नगर में तीन औद्योगिक क्षेत्र डीजल रेलवे इंजन कारखाना, मंडुवाडीह, औद्योगिक परिसर, लहरतारा तथा औद्योगिक क्षेत्र रामनगर हैं। डीजल रेलवे इंजन कारखाने का लगभग 40 लाख लीटर तेलयुक्त रासायनिक कचरा अस्सी नाला के द्वारा गंगा में मिलता है। लहरतारा औद्योगिक क्षेत्र में स्थित इकाइयों के अपशिष्ट निकटस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में छोड़ दिए जाते हैं एवं रामनगर स्थित बंसत पेपर मिल व औद्योगिक क्षेत्र में स्थित 35 छोटे-बड़े कारखानों का बहिःस्राव घुरहा नाला के द्वारा गंगा में डाला जाता है। औद्योगिक अपशिष्टों द्वारा विषाक्त धातुएँ जल एवं अवसाद में पहुँचती हैं। वाराणसी के सुदूर क्षेत्रों से भी शव लाकर यहाँ जलाए जाते हैं, क्योंकि श्रद्धालु हिंदुओं में मान्यता है कि वाराणसी में शव के दाह-संस्कार से मोक्ष की प्राप्ति होती है। नदी तट पर स्थित दो प्रमुख श्मशान घाट - मणिकर्णिका घाट व हरिश्चंद्र घाट पर प्रतिदिन सैकड़ों शवों का दाह-संस्कार होता है। शवों के जलने से निकलने वाले धुएँ में विद्यमान तत्व हवा में मिलते हैं जो वायुमंडलीय आर्द्रता के कारण भारी होकर जल व अवसाद में मिलते हैं। इसके अतिरक्त अधजली लाशें व जल में प्रवाहित शव गंदगी फैलाते हैं। फलतः क्षेत्र का अवसाद व जल प्रदूषित होता है। तालिका-1 में वाराणसी (गंगा) के श्मशान घाटों के अवसाद में भारी धातुओं की मात्रा दर्शाई गई है। क्षेत्र के चयनित नमूनों का परमाण्वीय अवशोषण स्पेक्ट्रममिति (एटॉमिक एब्जार्प्सन स्पेक्ट्रोमीटर) आई एल जैरेल ऐश माडल-11 विधि से विश्लेषण किया गया (सिंह व मेहरोत्रा, 90)। लेखक द्वय के द्वारा किए गए शोध अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि हरिश्चंद्र घाट क्षेत्र में तीन धातुओं - कॉपर, कोबाल्ट तथा जिंक की मात्राएँ क्रमशः 82, 26 तथा 120 पी.पी.एम. हैं जो औसत शेल मान (टुरेकियन एव वेडेपॉल, 1961) से अधिक हैं। इन धातुओं का औसत शेल मान क्रमशः 45, 19 व 95 पी.पी.एम. है। यह इंगित करना आवश्यक है कि तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य कोई आधार - यथा, गंगा अवसाद में भारी धातुओं की विद्यमानता के कोई मूल आँकड़े उपलब्ध नहीं है अतः औसत शेल मान से क्षेत्र के अवसादों में विद्यमान भारी धातुओं की मात्रा की तुलना की गयी है। यहाँ के अवसाद में जैविक पदार्थ 0.164 प्रतिशत, कार्बेनेट 8 प्रतिशत तथा मृत्तिका खनिज 16 प्रतिशत है। अन्य धातुओं - लेड, निकेल एवं क्रोमियम की मात्रा क्रमशः <10, 38 व 46, पी.पी.एम. है जो औसत शेल मान (क्रमशः 20, 68 व 90) से कम है। मणिकर्णिका घाट क्षेत्र में क्रोमियम, जिंक तथा यूरेनियम की मात्रा क्रमशः 96,99 तथा 4.8 पी.पी.एम. है जो औसत शेल मान (90, 95 तथा 3.7 पी.पी.एम.) से अधिक है। यहाँ कॉपर, लेड, निकेल, कोबाल्ट की मात्रा क्रमशः 30, <10, 51 व 10 पी.पी.एम. है जो औसत शेल मान से कम है। इस घाट के निकट भी एक गंदा नाला नदी में मिलता है तथा यहाँ के अवसाद में कार्बोनेट की मात्रा 18 प्रतिशत है।

तालिका - 1

वाराणसी (गंगा) के श्मशान-घाटों के अवसाद में भारी धातुओं की मात्रा (सभी धातुओं के मान पी.पी.एम. में है केवल मर्करी का मान पी.पी.बी. में)

भारी धातुएँ	हरिश्चंद्र घाट के निकट	हरिश्चंद्र घाट	मणिकर्णिका घाट	हरिश्चंद्र घाट विपरीत	मणिकर्णिका घाट विपरीत	औसत शेल मान (टुरेकियन एवं वेडेपाल, 1961
कॉपर	40	82	30	<10	10	45
लेड	10	<10	<10	<10	<10	20
निकेल	20	38	51	20	10	68
कोबाल्ट	10	26	10	<10	<10	19
क्रोमियम	70	46	96	30	15	90
जिंक	–	120	99	–	63	95
यूरेनियम	–	3.7	4.8	–	3.8	3.7
वैनेडियम	30	–	–	25	<10	130
इट्रियम	60	–	–	20	–	–
बेरियम	450	–	–	750	150	580
स्कैंडियम	<10	–	–	10	–	–
मर्करी	250	–	–	70	140	400
जैविक पदार्थ (प्रतिशत)	–	0.164	–	–	7	–
कार्बोनेट (प्रतिशत)	–	8	18	–	7	–

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हरिश्चंद्र घाट तथा मणिकर्णिका घाट क्षेत्र के अवसाद में धातुओं का सांद्रण बढ़ रहा है । ये भारी धातुएँ विभिन्न भौतिक रासायनिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप अवसाद से जल में जा सकती है । जल में इन धातुओं की मात्रा देहली-मान से अधिक होने पर वह आविषालु हो जाता है जो मानव के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालता है और कभी-कभी घातक भी हो सकता है । इसके अतिरिक्त नरायनपुर में रैपुरिया घाट तथा रामनगर-स्थित कुठिया घाट पर भी प्रतिदिन 10 से 15 शव जलाए जाते हैं । जानवरों, साधुओं, बच्चों तथा सांप के काटने से मृत लोगों के शवों को जलाने की प्रथा नहीं है अतः ऐसे शव नदी जल में प्रवाहित किए जाते हैं । ये शव धीरे-धीरे सड़ जाते हैं, फलतः जल प्रदूषित होता है ।

क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशियों का प्रयोग फसलों का उत्पादन बढ़ाने एवं कीट-पंतगों की वृद्धि को रोकने हेतु किया जाता है । पिछले दशकों में इसका प्रयोग बढ़ा है । इनके अत्यधिक प्रयोग से विषैले पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है । नदी के तटीय क्षेत्रों में रैपुरिया से कुंडा घाट, बनपुरवा से अस्सी नाला पूर्व तथा मुख्य सीवर से सरायमोहना गांव तक कृषि -योग्य भूमि में इनका प्रयोग उपज में वृद्धि हेतु किया जा रहा है । साबुन एवं प्रक्षालकों में प्रयुक्त रसायन विशेषकर फॉस्फेट से नदी जल में शैवालों की मात्रा में वृद्धि हो रही है । ये जल में घुलित ऑक्सीजन (डी.ओ.) की मात्रा कम करते हैं । इसके अतिरक्त शैवालों के मरने से प्राप्त अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थ जल में रह जाते हैं एवं जल से अवसाद में बैठते हैं ।

लेखकद्वय ने पटना में गंगा के सर्वेक्षण के दौरान पाया कि नदी के दाएँ तट पर स्थित 17 नाले इस शहर की गंदगी को नदी में डाल रहे हैं - ये नाले विभिन्न घाटों पर स्थित हैं । राजापुर घाट एवं अंताघाट के नालों से आने वाले गंदे पानी से नदी का तटीय जल कई मीटर तक काला दिखाई पड़ रहा है । बासघाट तथा गुलाबीघाट पर स्थित विद्युत् शवदाहगृह निर्मित होने के बावजूद भी शवों को घाट पर ही जलाया जाता है । पटना मेडिकल कालेज के पीछे स्थित हास्पिटल घाट पर कई लावारिश लाशें दुर्गंध फैलाती रहती हैं । कपड़ा धोने का कार्य हर घाट पर चल रहा है लेकिन तारघाट एवं नारघाट पर धोबी लोग यह कार्य विशेष रूप से कर रहे हैं । इन घाटों के अवसादीय नमूनों का परीक्षण प्रयोगशाला में किया जा रहा है । भागलपुर व मुँगेर में भी गंगा नदी के प्रदूषण की स्थिति चिंतनीय है । मुँगेर में, जहाँ डीजल लोकोमोटिव कारखाना है, हजारों लीटर तैलीय पदार्थ व हानिकारक रासायनिक पदार्थ प्रतिदिन नदी में छोड़ दिए जाते हैं । अनुमानतः 20 लाख लीटर रासायनिक पदार्थ यहाँ गंगा में प्रतिवर्ष डाला जाता है । गंगा में प्रतिदिन सहस्रों लोग स्नान करते हैं । विशेष पर्वों पर यह संख्या लाखों तक पहुँच जाती है । नहाने और कपड़ा धोने में साबुन एवं प्रक्षालकों का प्रयोग किया जाता है जो सीधे गंगा में जाता है । ऊपर वर्णित प्रदूषकों के अलावा क्षेत्र-सीमा के निकटवर्ती भागों में खनन-कार्य के परिणामस्वरूप बहुत से अपशिष्ट तथा उत्सर्जन सीधे ही वायु से प्रवाहित होकर गंगा में चले जाते हैं

अथवा रिसकर भौम जल को प्रदूषित करते हैं। वायुमंडल में व्याप्त बहुत-सी अशुद्धियाँ भी विशेषकर वर्षा-जल के साथ मिलकर जलधारा मे प्रवेश कर जाती हैं।

मिर्जापुर क्षेत्र में 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या के लिए मल-जल निकास प्रणाली नहीं है। पुरानी पद्धति वाले हाथ उठाऊ शौचालय ही हैं, जिसे ट्रैक्टर, ट्रॉली, हाथगाड़ी एवं अन्य साधनों से निस्तारित करते हैं। शहरी मल-जल के निस्तारण के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं है। शहर में स्थित विभिन्न औद्योगिक उपक्रमों यथा कालीन, ऊन वस्त्रोद्योग, एलुमीनियम, अलौह धातुएँ व रंगरोगन के कारखानों द्वारा उच्छिष्ट व अपशिष्ट नदी में डाले जाते हैं। छोटे, मझोले व बड़े उद्योग और साथ ही अपंजीकृत उद्यमों की संख्या सैकड़ों में है, जिनसे निःसृत प्रदूषक यथा, तैलीय पदार्थ, ग्रीज, अम्ल, लौह के टुकड़े और अन्य पदार्थ नदी में छोड़े जाते हैं। क्षेत्र के कृषि भूमि में फास्फोरस व नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग बहुतायत में होता है। उर्वरकों के प्रयोग से पोषक पदार्थ जलीय तंत्र में प्रवेश कर जाता है, जो जलीय पौधों, शैवाल/काई(एल्गी), पादप प्लवक (फाइटोप्लाँक्टन) की अति वृद्धि करता है। फलतः जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। जल में रहने वाले विभिन्न प्रकार के जीव प्रभावित होते हैं तथा अवसाद दलदलों और कच्छ में परिवर्तित हो जाता है। औरगैनोक्लोरीन जीवनाशी का उपयोग कृषि-क्षेत्र में मुख्य रूप से होता है। यह जीवनाशी अन्य जीवनाशियों की अपेक्षा अधिक हानिकारक है। यह सुस्पष्ट है कि जीवनाशियों की न्यून मात्रा भी जलीय जीव-जंतुओं को नष्ट करने हेतु पर्याप्त है। क्षेत्र में शवों का दाह-संस्कार चौबे घाट पर होता है। मृत पशुओं के चमड़े उतारने का कार्य कचहरी घाट पर होता है। इसी घाट पर सरकारी अस्पताल का उच्छिष्ट नदी में मिलता है। क्षेत्र में मुख्य नाले हैं - चुरुवा नाला, खंदवा का नाला, नारघाट का नाला, सुंदर घाट का नाला, ओलियर घाट का नाला, और बिसुंदरपुर नाला - जिनमें ओलियर घाट व नारघाट का नाला मुख्य हैं, जिनके द्वारा शहरी मलजल का 70 प्रतिशत भाग नदी में गिरता है। खंदवा नाला शहर के ऊपरी भाग से निकल कर नदी में मिलता है। इसका प्रदूषित जल उन घाटों से होकर बहता है, जहाँ प्रतिदिन अनेकों लोग स्नान करते हैं। सड़कों के किनारे बने नालों से भी अपशिष्ट नदी में मिलता है, जिनमें सिल्टीकरण स्तर नाले की ऊँचाई के शून्य से 50 प्रतिशत तक पाया गया है। कहीं-कहीं यह शत प्रतिशत है। तीन मुख्य नालों के बहाव व जैव ऑक्सीजन डिमांड (बी.ओ.डी.) तालिका-2 में वर्णित हैं।

तालिका - 2

मिर्जापुर क्षेत्र के तीन प्रमुख नालों के औसत बहाव और बी.ओ.डी. की मात्रा

नाले	औसत बहाव (लीटर/मिनट)	जैव ऑक्सीजन डिमांड-बी.ओ.डी. (मिलीग्राम/लीटर में)
खंदवा नाला	2,020	153
नारघाट नाला	950	202
ओलियर घाट नाला	1,320	162

यह विदित है कि पेय जल में बी.ओ.डी. की अधिकतम मात्रा 2 मिलीग्राम/लीटर होनी चाहिए एवं स्नान के लिए 3 मिलीग्राम/लीटर । उपर्युक्त तालिका में बी.ओ.डी. की अधिकतम मात्रा क्षेत्र में प्रदूषण की भयवाह स्थिति को रेखांकित करती है । मिर्जापुर में गंगा-जल की गुणवत्ता 'डी' श्रेणी में आती है ।

क्षेत्र में कार्बनिक प्रदूषण के संकेतक का माध्य-सांद्रण निम्नवत् है :

तालिका - 3

कार्बनिक प्रदूषण के संकेतक का माध्य-सांद्रण - विभिन्न मौसमों में

अभिलाक्षणिक	घुलित ऑक्सीजन (मिलीग्राम/लीटर)			बी.ओ.डी. (मिलीग्राम/ ली.)			संपूर्ण कोलीफॉर्म बैक्टीरिया(एम.पी.एन) 100 मिलीलीटर		
	प०म०	शी०	ग्री०	प०म०	शी०	ग्री०	प०म०	शी०	ग्री०
मान	8.22	10.40	7.01	7.20	6.15	6.72	26.740	40.792	8,610

प०म० (पश्च-मानसून : अक्तूबर-नवंबर)
शी० (शीतऋतु : दिसंबर-फरवरी)
ग्री० (ग्रीष्मऋतु : मार्च - जून)
एम.पी.एन. (अधिकतम मान्य संख्या)

तालिका 4 में मिर्जापुर (गंगा) के अवसादीय नमूनों में ज्ञात लेश धातुएँ कॉपर, लेड, जिंक, निकेल, कोबाल्ट, क्रोमियम की मात्रा दर्शायी गयी है । अवसादीय नमूनों का विश्लेषण परमाण्वीय अवशोषण स्पेक्ट्रममिति विधि से किया गया (श्रीवास्तव व अन्य, 1993) ।

तालिका - 4

मिर्जापुर गंगा अवसाद में उपस्थित भारी धातुओं की मात्रा

क्रम सं. एवं प्रतिदर्श संख्यां	प्रतिदर्श की स्थिति	भारी धातुएँ (पी.पी.एम.)					
		कॉपर	कोबाल्ट	लेड	निकेल	क्रोमियम	जिंक
1. एम.1	बगीचा घाट से अग्रबहाव की दिशा में	90	12	47	14	129	110
2. एम.2	ओलियर घाट से अग्रबहाव की दिशा में	931	6	226	24	123	717
3. एम.3	ओलियर घाट	56	9	19	9	138	94
4. एम.4	कचहरी घाट से अग्रबहाव की दिशा में	169	9	47	11	131	280
5. एम.5	फतुआ घाट	61	12	37	15	–	69
6. एम.6	पिपरा डाँड	37	18	28	18	98	80
7. एम.7	बगीचा घाट विपरीत	40	6	14	9	45	41
8. एम.8	पक्का घाट विपरीत	48	–	19	6	46	44
9. एम.9	फतुआ घाट विपरीत	51	20	37	17	50	75
10.एम.10	बिसुंदरपुर घाट	31	15	23	12	45	53
11.एम.11	पिपराडाँड घाट विपरीत	56	12	28	9	42	73
औसत शेल मान (टुरेकियन व वेडेपॉल, 1961)		45	19	20	68	90	95

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कॉपर की मात्रा 31-931, कोबाल्ट 6-20, लेड 14-226, निकेल 6-24, क्रोमियम 42-138, व जिंक 41-717 पी.पी.एम. तक परिलक्षित होती है । अवसादी प्रतिदर्शों में कॉपर, लेड, निकेल, व जिंक की अधिकतम मात्रा औलियर घाट के निकट पाई गई जो औसत शेल मान से क्रमशः 21, 11, 1.5 व 7.5 गुना अधिक है । क्रोमियम की अधिकतम मात्रा उसी स्थान (ओलियर घाट) पर ज्ञात हुई । इस घाट पर 'नियारिया' समुदाय द्वारा अलौह धातुओं को धोने का कार्य संपन्न होता है, जिनकी संख्या सैकड़ों में है । फलतः नदी जल व अवसाद में उच्छिष्टों के जमाव से उपयुक्त भारी धातुओं का सांद्रण बढ़ता है । उल्लेखनीय है कि जलीय तंत्र में होने वाली भौतिक-रासायनिक, जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप भारी धातुओं का जल से अवसाद में और अवसाद से जल में आदान-प्रदान हो सकता है । मुख्य प्रक्रियाएँ हैं - जलीय माध्यम में लवणीय सांद्रता में वृद्धि, रेडॉक्स स्थिति में परिवर्तन, पी.एच. में कमी, एवं जीवाणुओं की क्रिया (फास्टनर व विटमॉन, 1979) । अतः तटीय अवसाद में विद्यमान भारी धातुओं का जल में जाना संभव है । जिससे जल में इन धातुओं की मात्रा में वृद्धि होगी और वह अधिक हानिकारक हो जाएगा । अवसाद-प्रदूषण मुख्यतः अनपघटनी (नॉनडिग्रेडेबल) कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायनों के निक्षेपण के परिणामस्वरूप होता है । अवसाद से जल में प्रवेश हुई भारी धातुओं का जैव भू-रासायनिक चक्र द्वारा मनुष्य में प्रवेश संभव है ।

गंगा की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व० राजीव गांधी ने अपनी अध्यक्षता में 16 फरवरी, 1985 को 'केंद्रीय गंगा प्राधिकरण' की स्थापना की । इस प्राधिकरण की योजना 'गंगा कार्य योजना' (गंगा ऐक्शन प्लान) के अंतर्गत गंगा जल शुद्धीकरण हेतु अनेक कदम उठाए गए हैं , यथा नदी के जल में गिरने के पूर्व मल-जल के परिशोधन हेतु संयंत्रों की स्थापना व सीवेज को दूसरी दिशा में मोड़कर खेतों में पहुँचाने का कार्य ताकि गंगा में गंदा मल-जल मिलकर पाइप लाइनों के द्वारा शोधन संयंत्रों तक न पहुँच सके और ठोस अपशिष्ट को खाद के रूप में प्रयोग में लाया जा सके । 'गंगा ऐक्शन प्लान' द्वारा नदी में प्रवाहित होने वाले 9000 लाख घन मीटर प्रति सेकंड गंदे पानी को ऊर्जा के साधन के रूप में परिवर्तित करने हेतु अनेक स्थानों पर दिशा बदलने का प्रस्ताव है । इसके अंतर्गत मुख्य स्कीमों में वर्ज्य जल का अवरोधन और दिशा-परिवर्तन, सीवेज उपचार संयंत्र, अल्प-लागत स्वच्छता, विद्युत् शवदाह गृह एवं नदी तटाग्र सुविधाओं का विकास करना शामिल है । 2525 कि.मी. लंबी इस नदी के शुद्धीकरण की महती योजना के इस सदी के अंत तक पूरा होने की आशा है । इस महत्वाकांक्षी योजना को मूर्त रूप देने के लिए ब्रिटेन, फ्रांस व हालैंड और विश्व बैंक से सहयोग लिया जा रहा है । जलीय माध्यम में अवसाद प्रदूषण दूर करने के लिए कुछ उपाय सुझाए गए हैं, यथा नदी-तल का तलमार्जन करना, अप्रवेश्य पदार्थों द्वारा ढकना, प्राकृतिक एवं रासायनिक ऊर्णन, विजलन और स्थिरीकरण, रासायनिक यौगिकीकरण आदि । इन उपायों से जल का एवं साथ ही

अवसाद का प्रदूषण पर्याप्त सीमा तक कम हो सकेगा । सरकारी कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं से ही हम 'विश्वपावनी' व 'लोकमाता' के रूप में प्रतिष्ठित गंगा के जल को अमृत-तुल्य नहीं बना सकते हैं । बिना जनचेतना व सहयोग के इन कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध है । आवश्यकता इस बात की है कि हम सभी 'माँ गंगे' के प्रति संवेदनशील हों और इसे प्रदूषण-मुक्त बनाए रखने के लिए संकल्प करें ।

कृतज्ञता ज्ञापन :

लेखकद्वय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जिसने उन्हें 'रिसर्च एसोसिएटशिप' प्रदान की । विभागाध्यक्ष, भूविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रति भी आभारी हैं, जिन्होंने प्रयोगशाला सुविधा प्रदान की ।

संदर्भ :

1. *टुरेकियन, के.के. एंड वेडेपाल, के.एच., 1961 : डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ दी एलीमेन्ट्स इन सम मेजर यूनिट्स ऑफ द अर्थ्स क्रस्ट,* ***बुलेटिन जियॉलॉजिकल सोसाइटी अमेरिका,*** 72, 175-192

2. फास्टनर, यु. एंड विटमॉन, जी.टी.डब्लू, 1979; वर्धित द्वितीय संस्करण, 1983 : **मेटल पोल्यूशन इन द एक्वाटिक इन्वायरनमेंट** । *स्प्रिंगर-वरलॉग, बरलिन हाइडेलबर्ग, न्यूयार्क, 1.486 ।*

3. *श्रीवास्तव, अजय: मेहरोत्रा, एम.एन. एंड तिवारी, आर.एन. 1993 : स्टडी ऑफ पॉल्यूशन ऑफ दी रिवर गंगा इन दी मिरजापुर रीजन इंडिया एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन सेडीमेंट्स ।* ***इंटरनेशनल जर्नल इन्वायरनमेंटल स्टडीज,*** *43, 201-208 ।*

4. *सिंह, सच्चिदानन्द; मेहरोत्रा, एम.एन. 1990 : वाराणसी के श्मशान घाटों के अवसाद का अध्ययन,* ***विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका,*** *33,3, 151-159 ।*

राजस्थान रत्न तथा आभूषण उद्योग : एक रत्नवैज्ञानिक अध्ययन

- डॉ॰ शेखर वाशिष्ठ

राजस्थान में मिर्जा राजा रामसिंह द्वारा सन् 1667 में स्थापित रत्नकारी उद्योग जिसे अब 325 वर्षों का दीर्घकालीन अनुभव हो चला है, सन् 1727 में स्थापित जयपुर शहर से पहले का है । इस उद्योग की जड़ें किस गहराई तक जयपुर के प्रत्येक हिस्से में फैल चुकी है, इसका अनुमान तो सिर्फ इसी बात से लग सकता है कि लगभग 1,00,000 लोग इस उद्योग से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि जयपुर में कार्यरत व्यक्तियों में हर आठवाँ व्यक्ति इस व्यवसाय से जुड़ा है । 61,000 पूर्णकालिक कारीगर है । रत्नकारी उद्योग अधिकांशतः पुश्तैनी है, जिसमें कई घरों में तीन- तीन पीढ़ियाँ एक साथ कार्य कर रही हैं । महिलाएँ भी किसी से पीछे नही हैं । छोटे बच्चों से लेकर वयोवृद्ध अनुभवी रत्नशिल्पी भी इस उद्योग में कार्यरत हैं । यों तो सभी जातियों के लोग रत्नकारी उद्योग में कार्य करते हैं लेकिन रत्नकारी में मुसलमानों ने विशेष दक्षता हासिल की है । इन कारीगरों का प्रशिक्षण अधिकांशतः पुश्तैनी है तथा रत्नकारी उन्हें विरासत में मिलती है । कारीगरों का अधिकांश वर्ग अनपढ़ है । नई पीढ़ी के थोड़े बहुत रत्नशिल्पी रत्नकारी संबंधी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं । सामान्यतया रत्नकारी उद्योग जयपुर में ही केंद्रित है । स्वर्ण तथा प्लैटिनम के आभूषणों का कार्य जयपुर, प्रतापगढ़, बीकानेर में होता है । नाथद्वारा चाँदी के आभूषणों के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ के बने हुए आभूषण अमेरिका, कुवैत, चैकोस्लोवाकिया, स्पेन, जापान और दुबई में अत्यधिक पंसद किए जाते हैं । इमिटेशन ज्वैलरी और जर्मन सिल्वर ज्वैलरी के लिए जयपुर और उदयपुर का अपना स्थान है । राजस्थान से अमेरिका, इंगलैंड, इटली, फ्रांस, रूस और स्विट्जरलैंड को इमिटेशन ज्वैलरी का निर्यात किया जाता है । अर्धमूल्यवान व बहुमूल्यवान रत्नों के लिए जयपुर विश्व की प्रमुख रत्नमंडियों में से एक है । यहाँ से विश्वभर को अर्धमूल्यवान व बहुमूल्यवान रत्न निर्यात किए जाते हैं । भारत से निर्यात किए जा रहे हीरा, पन्ना, माणक, नीलम, मोती, तामड़ा, बैरूज, तुरमली, फिरोजा, कटहैला, जबरजद, लाजवर्द आदि बहुमूल्य तथा अर्ध-बहुमूल्य रत्नों तथा आभूषणों का 55 से 60 प्रतिशत निर्यात अकेले जयपुर करता है । भारत से हीरे, बहुमूल्य तथा अर्धबहुमूल्य रत्न, मोती, स्वर्ण, ज्वैलरी, इमिटेशन ज्वैलरी, कृत्रिम रत्नों आदि का निर्यात किया जाता है । रत्न तथा आभूषण उद्योग की प्रगति का अनुमान इस बात से लग सकता है कि भारत के निर्यात मानचित्र में रत्न तथा आभूषण उद्योग का स्थान सबसे ऊपर है ।

परिभाषा की दृष्टि से रत्नविज्ञान में पत्थर के फूलों यानी रत्न खनिजों के गुणों एवं उनकी प्राप्ति और अनुकूलन विधियों का अध्ययन किया जाता है । कृत्रिम रत्नों का भी अध्ययन इसमें शामिल है । 'रत्न' कहलाए जाने के उपयुक्त खनिजों में पाँच गुण होने आवश्यक हैं - 1. सौंदर्य 2. टिकाऊपन 3. दुर्लभता 4. फैशन, 5. वहनीयता । इन पाँच गुणों पर खरे उतरने वाले खनिजों को 'रत्न' की संज्ञा दी गई है । दरअसल रत्न एक प्रकार से पुष्प या फूल है जो कभी मुरझाता नहीं । इसका चित्ताकर्षक रंग और आभा कभी मंद नहीं पड़ती और ये बरबस मन को मोह लेते हैं । रत्नों में लगभग 90 प्रतिशत खनिज होते हैं । विश्वभर में 2,000 से अधिक खनिजों के बारे में जानकारी मिलती है । इसमें से लगभग 120 खनिजों को 'रत्न' कहलाने का दर्जा मिला है । व्यापार-क्षेत्र में आमतौर पर लगभग 20 रत्न खनिज देखने में आते हैं । जैविक रत्नों में मोती, मूंगा, अंबर, जैट, हाथीदांत अपना विशेष स्थान रखते हैं ।

प्राचीन ग्रंथों में 84 रत्नों के बारे में वर्णन मिलता है, लेकिन ज्योतिष विद्वानों के अनुसार केवल 'नौरत्न' हमारे जीवन में प्रमुख स्थान रखते हैं । ये नव रत्न इस प्रकार हैं - माणक (रूबी), मूंगा (कोरल), पन्ना (एमरल्ड), हीरा (डायमंड), सफेद या पीला पुखराज (ह्वाइट या यलो सैफायर), मोती (पर्ल), नीलम (ब्लू सैफायर), गोमेदक (जिरकन) और लहसूनिया (क्राइसोबेरिल कैट्स आई) । इन रत्नों का प्रयोग ग्रहों की शांति, औषधि तथा शारीरिक रूप-सज्जा के रूप में किया जाता है ।

प्राचीन अंधविश्वासों और विशेष किस्म के जादुई प्रभाव से भरपूर रत्नों में - हीरा, नीलम, लोडस्टोन, हरे रंग का जैस्पर, फिरोजा, अंबर आदि विशेष स्थान रखते हैं । लड़ाई-झगड़े व पारिवारिक कलह को रोकने के लिए 'लोडस्टोन' का प्रयोग किया जाता है । शर्तिया मुकदमे जीतने के लिए हैमेटाइट धारण किया जाता है । पुराने जमाने में भरपूर व अच्छे अनाज की फसलों के लिए हल्के रंग के जैस्पर को खेत में गाड़ दिया जाता था । किसी भी प्रकार की दुर्घटना से बचने के लिए फिरोजा रामबाण अस्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है । बच्चों को 'ज़हर के प्रभाव से मुक्त' रखने के लिए अंबर के ताबीज बच्चों के गले में बांधने की प्रथा रोम में मिलती है । युद्ध में शर्तिया जीत प्राप्त करने के लिए सेनापति को हीरे की अंगूठी पहनाकर युद्धस्थल में भेजने की घटनाएँ भी इतिहास में मिलती हैं । 'प्यार भरे और सूफी जीवन' व्यतीत करने के लिए माणक पहनने का परामर्श आज भी दिया जाता हे । मद्यपान से अरुचि पैदा करने वाले कटहैला रत्न का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है । बैंगनी और पीले रंग की धारियों के अद्भूत मिश्रण वाला वशिष्ठाइट नामक रत्न दांपत्य जीवन के सुखों को प्रदान करने वाला माना जाता है ।

पाश्चात्य देशों में जन्मतिथियों के अनुसार रत्न धारण करने का रिवाज है, जिन्हें हम जन्म-दिवस पत्थर (बर्थस्टोन) कहते हैं । जनवरी माह में जन्मे व्यक्तियों के लिए तामड़ा (गारनेट) शुभ माना गया है । इसी प्रकार फरवरी में जन्मे व्यक्तियों के लिए कटहैला

(एमीथिस्ट), मार्च के लिए बैरूज (एक्वामेरिन), पितोनिया (ब्लडस्टोन), अप्रेल के लिए हीरा, मई के लिए पन्ना, जून के लिए मोती, चंद्रकांतमणि तथा एलेक्जेंड्राइट, जुलाई के लिए माणक, अगस्त के लिए जबरजद (पेरीडोट) तथा सर्डआनेक्स, सितंबर के लिए नीलम, अक्तूबर के लिए ओपल तथा गुलाबी तुरमली, नवंबर के लिए टोपाज, सिटरीन और पोला पुखराज तथा दिसंबर में जन्मे व्यक्तियों के लिए फिरोजा (टरक्वाइज) तथा गोमेदक बर्थस्टोन के रूप में माना जाता है ।

पाश्चात्य देशों में जन्म-समय के अनुसार भी रत्न धारण करने का प्रचलन है । सुबह, दोपहर, रात को विभिन्न समयों में जन्मे व्यक्ति विभिन्न प्रकार के रत्न पहनते हैं ।

यदि किसी व्यक्ति के पास इतना धन नहीं है कि वह असली (प्राकृतिक) रत्न खरीद सके तो उनकी लालसा की पूर्ति के लिए पाश्चात्य जगत् के ज्वैलरों ने 'कृत्रिम रत्नों' को भी जन्म दिवस पत्थर के रूप में मान्यता दी हुई है । जनवरी, फरवरी, जून, अक्तूबर, और नवंबर माह में जन्मे व्यक्तियों के लिए कृत्रिम कुरंदम शुभ माना गया है । मार्च, अप्रैल, मई, अगस्त और दिसंबर में जन्मे व्यक्तियों के लिए कृत्रिम स्पाइनल पहनने का परामर्श दिया जाता है । कृत्रिम माणक को जुलाई में जन्मे व्यक्ति पहन सकते हैं । सितंबर में जन्मे व्यक्तियों के लिए कृत्रिम पुखराज, मई के लिए कृत्रिम पन्ना और जून में जन्मे व्यक्तियों के लिए कल्चर्ड मोती पहनना शुभ बताया गया है ।

हमारे देश में ग्रहों की स्थिति और राशियों के अनुसार रत्न पहनने का प्रचलन है । उनके ग्रह-स्वामी के अनुरूप रत्न पहनने का परामर्श दिया जाता है ।

आयुर्वेद-विज्ञान के पृष्ठ पलटकर देखें तो पता चलता है कि रत्नों का औषधि के रूप में भी प्रयोग सदियों से किया जाता रहा है । माणक की पिष्टी और भस्म रक्तवर्धक, वायुनाशक एवं उदर रोगों में लाभकारी होती है । शरीर में कैल्शियम की कमी से उत्पन्न रोगों के निदान के लिए मोती का प्रयोग किया जाता है । गिरते हुए गर्भ को रोकने के लिए मूंगे की राख को केवड़े या गुलाबजल में घिसकर गर्भवती महिला के पेट पर लेप करने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है । पन्ने की चटनी का उपयोग हृदय की धड़कन, वातव्याधि, मिर्गी, बेहोशी और रक्तचाप में किया जाता है । पन्ने की भस्म गुर्दे और जिगर की बीमारी और बहुमूत्रता की शिकायत को दूर करती है । कफ, वात, पित्त, पांडु तथा क्षय रोगों से छुटकारा और भूख और पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिए गोमेद की भस्म का उपयोग किया जाता है । हीरे की भस्म के सेवन से क्षय, प्रमेह, कैंसर, पांडु और पेट के रोगों से मुक्ति मिल सकती है । नपुसंकता दूर करने के लिए हीरे की भस्म अमोघ औषधि सिद्ध हुई है ।

भूविज्ञान की दृष्टि से रत्न तीनों ही प्रकार की शिलाओं में मिलते हैं । आग्नेय शिलाओं के अंतर्गत क्षारीय शिलाओं में हीरा, तामड़ा, ओलिवीन प्रमुख रूप से पाए जाते हैं । पेग्मेटाइट में मिलने वाले रत्नों में तुरमली, पुखराज, स्फटिक, बेरिल, स्पोड्यूमीन

प्रमुख स्थान रखते हैं । उत्तरकालीन निक्षेपों में हीरा, माणक, नीलम, अंबर, स्फटिक, कटहैला, बेरिल, जेडाइट, क्राइसोबेरिल पाए जाते हैं । पानी के अंदर तलछट निक्षेपों में स्फटिक, ओपल, फिरोजा, मैलेकाइट के भंडार मिलते हैं । परिवर्तित शिलाओं में लेपिस - लैजुली, नीलम, माणक, पन्ना, स्पाइनल और शिस्ट तथा नाइस शिलाओं में क्राइसोबेरिल, जेड, पन्ना और तामड़ा आदि के प्रमुख भंडार होते हैं । जलोढ़-निक्षेप, जिनसे हीरा जैसा बहुमूल्य रत्न तथा अन्य दूसरे रत्न प्राप्त होते हैं, रत्नों के उद्‌गम-स्थानों में बड़े महत्वपूर्ण हैं । जेडाइट, नेफ्राइट, स्टोरालाइट आदि रत्न शिस्ट तथा नाइस शिलाओं में मिलते हैं ।

राजस्थान रत्न भंडारों की दृष्टि से रत्नों का संग्रहालय है । यहाँ पर लगभग तीस प्रकार के रत्न-खनिजों के भंडार हैं । इनमें पन्ना, माणक, तामड़ा, स्फटिक, बैरूज, हैलीडोर, कटहैला, एगेट, जैसपर, टोपाज, एपराइट, फ्लोराइट आदि रत्नों के प्रमुख भंडार हैं । नवीनतम अनुसंधानों से पता चला है कि चित्तौड़गढ़ के विभिन्न क्षेत्रों में हीरे के भंडार मिलने की संभावना है ।

सुंदर हरे रंग के चमकदार पारदर्शक पन्ना (एमरल्ड) की उदयपुर से अजमेर के बीच लगभग 185 किलोमीटर लंबी बेल्ट है । कालगुमान, तीखी, गामगुड़ा, मुहाभी, बुवानी, राजगढ़ आदि में पन्ने की खानें है । यहाँ पर पन्ना पुरा-रायली काल की परावर्तित उत्तरक्षारीय शिलाओं में पाया जाता है । ये पुरा अरावली काल की पट्‌टीदार जटिल नाइस शिलाओं से बनी हैं । लाल और बैंगनी रंग का तामड़ा (गारनेट) उदयपुर से टोंक के बीच लगभग 250 किलोमीटर लंबी बेल्ट में मिलता है । टोंक जिले में ग्यारह किलोमीटर लंबी बेल्ट, जो उत्तर दक्षिण पश्चिम से उत्तर दक्षिण में कल्याणपुरा और राजमहल के बीच स्थित है, तामड़ा का भरपूर भंडार है । अजमेर, भीलवाड़ा (गंगापुर तहसील), उदयपुर और टोंक जिलों में भी तामड़ा के प्रमुख भंडार हैं ।

हरीतिमा लिए हल्के नीले रंग के बैरूज (एक्वामेरिन) और पीले रंग के हैलीडोर रत्न के प्रमुख भंडार टोंक जिले में टोडा रायसिंह, बागरी, हमीरपुर, बहोरिया, बिलासपुर, हनोतिया, रामपुरा, बोटुंडा आदि स्थानों में पाए जाते हैं । टोडा रायसिंह के उत्तर बोटुंडा में बैरूज अच्छी किस्म का मिलता है । हल्के लाल रंग का पुखराज टोंक जिले में जुआली और हनोतिया में मिले हैं । रंगहीन, सफेद, नीले, हरे और बैगनी रंग के फ्लोराइट के भंडार जयपुर, सीकर, डूंगरपुर और जालौर में पाए गए हैं । बैंगनी रंग से ओतप्रोत कटहैला रत्न के भंडार झुँझनू, किशनगढ़ (अजमेर) निवाई (टोंक) सवाई माधोपुर और जयपुर जिले में है ।

सिरोही में टोपाज के भंडारों का पता चला है । एगेट और जैस्पर, जोधपुर जिले में मिलते हैं । जयपुर और उदयपुर मैं मरगंज (एवेंच्युरिन) पाया जाता है । बढ़िया किस्म का एवेंच्युरिन सीकर जिले के खांडेला में मिलता है । क्राइसोबेरिल के किशनगढ़ (अजमेर) में भंडार हैं । आर्थोक्लेज फेल्सपार के भंडार अजमेर, पाली, अलवर, जयपुर, उदयपुर और सीकर में मिलते हैं । हेसोनाइट गारनेट के भंडार टोंक में हैं । कायेनाइट के भंडार डूंगरपुर

और अजमेर में स्थित है । निवाई (टोंक) और हतूना (जयपुर) में बिल्लौर (रॉक क्रिस्टल) के भंडार हैं । उदयपुर और भीलवाड़ा सर्पेंटीन रत्न के लिए प्रसिद्ध है । टुरमलीन के भंडार अजमेर और भीलवाड़ा में मिले हैं । बेरिल के भंडार भीलवाड़ा, अजमेर, और जयपुर में हैं । अलवर, अजमेर, झुँझनू, नागौर, पाली, सीकर, सिरोही, उदयपुर में जिप्सम रत्न खनिज के भंडार है । फिरोजा, लैपिस लैजूली, और ओपल अल्प मात्रा में अजमेर के श्रीनगर, शेखावटी क्षेत्र, नागपहाड़ की पहाड़ियों और सीकर जिले के रामगढ़ में प्राप्त हुए हैं । हरे रंग के एपाटाइट रत्न के भंडार टोंक और उदयपुर जिले में मिले हैं । इन रत्न भंडारों के अतिरिक्त गुलाबी स्फटिक (रोज क्वार्ट्ज), धुनेला, एपीडोट आदि के भी भंडार राजस्थान में मिलते हैं । नवीनतम अनुसंधानों से पता चला है कि झालावाड़ जिले के अकलेरा और कोटा के बीच तथा चितौड़गढ़ में 'हीरेयुक्त कांगलोमरेट' के मिलने की संभावना है । इस क्षेत्र में सर्वेक्षण कार्य चल रहा है ।

विज्ञान के नवीनतम अनुसंधानों ने रत्नविज्ञान के क्षेत्र में कृत्रिम रत्न को उत्पन्न कर वस्तुतः एक क्रांति को जन्म दिया है । सर्वप्रथम 1902 में ऑगस्ट वेरन्युइल नामक वैज्ञानिक ने फ्लेम फ्यूजन विधि से सफलतापूर्वक कृत्रिम माणक तथा कृत्रिम कुरंदम तैयार किया था । विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ इस विधि में बहुत-से परिवर्तन और सुधार हुए । अन्य उत्पादन-विधियां विकसित की गईं । फ्लक्स मेल्ट विधि, चॅक्रोलास्की पुलिंग विधि, हाइड्रोथरमल विधि और स्कल मैल्टिंग आदि विधियां कृत्रिम रत्नों का उत्पादन करने की आधुनिक विधियां हैं । कृत्रिम माणक, पन्ना और ऐलेक्जेंड्राइट का निर्माण फ्लक्स मैल्ट विधि से किया जाता है । चक्रोलास्की पुलिंग विधि द्वारा 'जी जी जी' येग, कृत्रिम गुलाबी व रंगहीन पुखराज और हाइड्रोथरमल विधि से कृत्रिम स्फटिक, पन्ना और माणक का निर्माण किया जाता है । 'क्यूबिक जिरकोनिया' जिससे हीरे का धोखा हो सकता है, स्कल मैल्टिंग विधि से उत्पादित होता है ।

सन् 1955 में सबसे पहले अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी ने 'कृत्रिम हीरा' उत्पादित करके रत्न जगत् में तहलका मचा दिया । बहुमूल्य रत्न जैसे माणक, नीलम, पन्ना आदि का मूल्य बहुत अधिक होने की वजह से उनके खरीदने की क्षमता आम जनता में नहीं होती । दरअसल आम जनता की लालसा की पूर्ति के लिए ये कृत्रिम रत्न 'कोहिनूर' सिद्ध हुए । ऐसे कृत्रिम रत्नों में क्यूबिक जिरकोनिया, 'जी जी जी' (गेदोलिनियम गैलियम गारनेट), स्ट्रोन्शियम टाइटनेट, येग (यिट्रियम एलुमिनियम गारनेट), संश्लिष्ट माणक, नीलम, पन्ना, स्पाइनल और फिरोजा प्रमुख हैं । इन्हीं 'कृत्रिम रत्नों' की उपस्थिति ने रत्न-व्यवसाय को एक नया मोड़ दिया । विज्ञान के इस नए प्रयोग ने विश्व की प्रमुख रत्न मंडियों में एक नई और गंभीर समस्या को जन्म दिया । रत्नों की खरीद-फरोख्त करने वाले बड़े व्यापारी भी धनराशि खर्च करते इस पेशोपेश में पड़ गए कि अमुक रत्न प्राकृतिक है या कृत्रिम । समस्या का समाधान भी विज्ञान ने खोज निकाला-रत्नों के वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा, और इस तरह जन्म हुआ रत्न-परीक्षण प्रयोगशालाओं का ।

रत्न-परीक्षण के लिए रत्नविशेष के भौतिक और प्रकाशिकीय गुणों का तथा सूक्ष्मदर्शीय अध्ययन आवश्यक है । भौतिक गुणों में रत्न के वर्ण या रंग, पारदर्शिता, आकृति, कठोरता, चीर या विभंग, भाजन या विदलन, कस, आसक्ति, मंडलन, बहुरूपता, कूटरूपता, आपेक्षिक घनत्व, द्युति, चकासा (लुमिनिसेंस), तारकत्व, झिलमिलाना, प्रकाश पारगम्यता, प्रतिदीप्ति और स्फुरदीप्ति आदि गुणों का अध्ययन किया जाता है । कुछ रत्नों की पहचान में चुंबकत्व, विद्युत् और रेडियोऐक्टिविटी का विशेष महत्व है । रत्नों के चरमकोण, परावर्तन, दुहरावर्तन, वर्तनांक, प्लवरंग-द्विवर्णिक, त्रिवर्णिक, अभिस्पंदन, एक-अक्षीय आकृति, द्विअक्षीय आकृति, अक्षीयकोण, प्रकाशिक चिह्न, शोषण स्पेक्ट्रम प्रकाशिकीय गुणों का अध्ययन रत्नों की पहचान के लिए महत्वपूर्ण होते हैं । रत्नों की आतंरिक संरचना और इसमें पाए जाने वाले विभिन्न प्राकृतिक व कृत्रिम अंतर्वेशों का सूक्ष्म अध्ययन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से किया जाता है ।

रत्नों के भौतिक, रासायनिक और प्रकाशिकीय गुणों का अध्ययन आमतौर पर जैमोलाइट माइक्रोस्कोप, रिफ्रेक्टोमीटर, पोलारिस्कोप, डायमंडस्कोप, आपेक्षिक घनत्व भार द्रव, अल्ट्रावायलेट लैंप, कलर मास्टर सोडियम लाइट आदि विभिन्न प्रकार के यंत्रों से किया जाता है । रत्नों की पहचान के बारे में पूरी तरह से संतुष्ट होने के लिए कभी-कभी कुछ अन्य यंत्रों का प्रयोग करना पड़ता है । इनमें थर्मल रिऐक्शन टेस्टर, हार्डनेस पेंसिल, चैल्सा फिल्टर आदि प्रमुख हैं । मोती की जांच के लिए एक्सरे-रेडियोग्राफी का प्रयोग किया जाता है ।

रत्नों का भार अंकित करने के लिए चार तरह की इकाइयों का प्रचलन है - (1) कैरेट, (2) ग्रेन, (3) ग्राम (4) पैनीवेट । इन इकाइयों के अतिरिक्त कुछ रत्न आकार के अनुसार बिकते है । एक कैरट 200 मिलीग्राम के बराबर होता है । इसे मैट्रिक कैरट भी कहते हैं । सामान्यतः रत्न का मूल्य भार की वृद्धि के साथ प्रति कैरट बढ़ जाता है । अधिकांशतः मोती 'ग्रेन' में तोले जाते हैं । एक मोती ग्रेन का भार ग्राम के बीसवें (0.05 ग्राम) भाग और एक ट्रायग्रेन0.648 ग्राम के बराबर होता है । एक पेनीवेट14 ग्रेन या 1.56 ग्राम के बराबर होता है । मैलेकाइट, ऐमीथिस्ट, लैपिस लेजुली आदि रत्न ग्राम की इकाइयों में तोले जोते हैं । जयपुर स्थित रत्न आभूषण निर्यात संवर्धन परिषद् (वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रायोजित) की रत्न परीक्षण प्रयोगशाला सर्वप्रथम 1972 में स्थापित की गई थी । विश्व प्रसिद्ध रत्नवैज्ञानिक बी.डैब्ल्यू. ऐन्डरसन के निर्देशन में प्रयोगशाला को अत्याधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों से सुसज्जित किया गया था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि रत्न का सिलसिलेवार वैज्ञानिक ढंग से परीक्षण किया जाए तो हर किस्म के रत्न की पहचान की जा सकती है ।

°°°°°

ग्रीन हाउस में बेमौसम खीरा उत्पादन

- डॉ० पीतम चंद्र,
श्री टी०ए० मोरे,
श्री अभय कुमार श्रीवास्तव

भारतवर्ष की जलवायु में किसी विशेष सब्जी या फल को साल भर नहीं उगाया जा सकता है, किंतु उनकी माँग बाजारों में साल भर रहती है जिसकी आपूर्ति अन्य क्षेत्रों से की जाती है । इनकी उपलब्धता, सुचारु रूप से वर्ष भर बनाए रखने के लिए 'ग्रीन हाउस' उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं । ग्रीन हाउस प्लास्टिक अथवा शीशे से ढके ऐसे घर होते हैं जिनमें वातावरण को पौधों की आवश्यकतानुसार नियंत्रित किया जा सकता है । प्रस्तुत पत्र में ग्रीन हाउस के अंदर बेमौसम खीरा उत्पादन की पद्धति पर प्रकाश डाला गया है । साथ ही ग्रीन-हाउस की संरचना, वातावरण नियंत्रण और ग्रीन हाउस के संभावित उपयोग का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

2. परिचय

ग्रीन हाउस प्लास्टिक अथवा शीशे से ढके ऐसे घर होते हैं, जिनमें फसलों की आवश्यकता के अनुरूप वातावरण को नियंत्रित किया जा सकता है । इनका आकार इतना बड़ा होता है कि इनमें व्यक्ति कृषि कार्य सरलता से कर सकता है । इनका ढांचा लकड़ी, बांस, इस्पात या किसी अन्य सुलभ पदार्थ का होता है । इसका ढांचा इतना सुदृढ होना चाहिए कि यह तेज हवा, वर्षा या हिमपात को सहन करने में समर्थ हो । इस ढांचे पर प्लास्टिक या शीशे का आवरण चढ़ा दिया जाता है । सामान्यतः एक विशेष प्रकार की पॉलीथीन, जो कि पराबैंगनी किरणों से स्थिरीकृत होती है, का उपयोग आवरण बनाने में होता है । यह पॉलीथीन 700 से 800 गेज़ मोटी होती है जो लगभग दो वर्षों तक प्रयोग में लाई जा सकती है । ऐसी पॉलीथीन हमारे देश में आसानी से उपलब्ध है । इसके अलावा दूसरे प्लास्टिक पदार्थ, जैसे - पी.वी.सी.; ई.वी.ए.; फाइबर ग्लास; प्लैक्सी ग्लास अथवा पॉलीकार्बेनेट आदि भी प्रयोग में लाए जा सकते हैं ।

ग्रीन हाउस में वातावरण को आवश्यकता के अनुसार नियंत्रित किया जा सकता है जिनमें तापमान, आर्द्रता और प्रकाश मुख्य हैं । कार्बन डाइऑक्साइड, मिट्टी और पोषक तत्वों के स्तर को नियंत्रित करना भी संभव है । अत्याधुनिक ग्रीन हाउसों में वातावरण नियंत्रण के लिए अभिकलित्रों (कंप्यूटरों) की सहायता भी उपयोगी सिद्ध हुई है ।

ग्रीन हाउसों में वांछनीय वातावरण उत्पन्न करने में काफी धन की आवश्यकता पड़ती है, अतः इनमें ऐसी ही फसलें उगाना लाभकारी है जिनसे अधिक आय हो । यही कारण है कि इनमें अनाज की फसलें नहीं उगाई जातीं ।

आरंभ में ग्रीन हाउसों का उपयोग ठंडी जलवायु वाले देशों में ही सीमित था किंतु कालांतर में इनका उपयोग गर्म रेतीले और अतिवृष्टि वाले क्षेत्रों में भी किया जाने लगा । वातानुकूलन की सुविधा के कारण न केवल फसलें उगाना ही संभव हो सका है बल्कि इनकी उत्पादकता सामान्य उत्पादकता की तुलना में, कई गुना बढ़ाना भी संभव हो सका है । उदाहरण के लिए, ग्रीन हाउस में खीरे की पैदावार 1500 से 2000 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हो सकती है । एक अनुमान के अनुसार एक हेक्टेयर के दसवें हिस्से में लगभग 15000 से 2000 रुपए का शुद्ध लाभ, वर्ष भर में, कमाया जा सकता है । आज विश्व के लगभग 50 देशों में ग्रीन हाउस व्यावसायिक खेती के काम आ रहे हैं ।

हमारा देश जलवायु विषमता का देश है । अतः हमारे देश में ग्रीन हाउसों में कृषि पद्धति के उपयोग और विकास की अच्छी संभावनाएं हैं । भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशों में, जहाँ भारी वर्षा वाले क्षेत्र हैं, इस पद्धति का उपयोग करके अधिक सब्जियां और फल उगाए जा सकते हैं । देश के ठंडे उत्तरी क्षेत्र में ग्रीन हाउस पद्धति से वर्ष भर निर्यात-योग्य उत्कृष्ट फलों का उत्पादन किया जा सकता है । देश के शहरी क्षेत्रों मे जहाँ साल भर सब्जियों का प्रयोग होता है, बेमौसमी सब्जियों का उत्पादन करके अधिक आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त ग्रीन हाउसों का उपयोग पौधशालाओं के रूप में भी किया जा सकता है । ग्रीन हाउसों में वातावरण नियंत्रण की सुविधा के कारण पौधों, विशेषकर नाजुक और मूल्यवान पौधों, का विकास सुचारु रूप से करना सरल है और इस कारण पौधे का रखरखाव और प्रबंधन सुगमता से किया जा सकता है ।

3. ग्रीन हाउस में खीरा-उत्पादन की प्रणाली

खीरा एक महत्वपूर्ण शाकीय फसल है जिसका प्रयोग साल भर किया जाता है । किंतु इसका उत्पादन पूरे उत्तरी भारत में कम तापमान के कारण वर्ष भर करना संभव नहीं है । उत्तरी भारत में ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के मात्र 20-25 दिन ही फल धारण करने के लिए उपलब्ध होते हैं । अतः वर्ष के शेष समय में खीरे का उत्पादन संभव हो सकता है जो परंपरागत पद्धति से संभव नहीं है ।

इस बेमौसम खीरा उत्पादन की प्रणाली के अनुसंधान में जिस ग्रीन हाउस का प्रयोग हुआ, उसका भूक्षेत्र 5 मी. x 18 मी. था तथा अधिकतम ऊँचाई 2.5 मी. थी । इसका ढांचा जस्तीकृत इस्पात नलिकाओं से बनाया गया और इस पर 200 माइक्रॉन की पराबैंगनी स्थिरीकृत पॉलीथीन का आवरण चढ़ाया गया था । ग्रीन हाउस में तापमान

नियंत्रण के लिए, थर्मोस्टैट नियंत्रित ऊष्मन और वाष्प शीतलन प्रणालियां भी लगायी गईं। अनुसंधान के आधार पर विकसित की गई खीरा उत्पादन प्रणाली का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है :-

(क) प्रजाति चयन :

बीज रहित 'एफ 1' संकर प्रजाति के बीज सर्वोत्तम हैं। यदि ये उपलब्ध नहां हैं तो अन्य प्रजाति, जैसे कि - पॉयन्सेट प्रजाति के बीज भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं जोकि किसी अन्य प्रजाति के बीजों से ज्यादा बेहतर सिद्ध हुए हैं।

(ख) बीज रोपण :

हर स्थान पर कम से कम दो बीज रोपित किए जाने चाहिए। अंकुरण के बाद, जब पौधे स्थापित हो जाएँ तो विरलीकरण किया जाना चाहिए ताकि एक स्थान पर सिर्फ एक पौधा ही पनप सके। तीन सप्ताह तक समय की बचत के लिए पौधों को छोटी पॉलीथीन-थैलियों (10 से.मी. x 7 से.मी.) में उगाया जा सकता है। जब पौधे कुछ बड़े हो जाएँ और उनमें 2-4 वास्तविक पत्तियां आ जाएँ, तो उन्हें उचित दूरियों पर रोपित किया जाता है। यदि पौधे मर रहे हों तो 2 प्रतिशत कैप्टाफ से पौधों को छिड़काव द्वारा भिगो देना चाहिए।

(ग) कटाई-छँटाई :

ग्रीन हाउस में, खीरे के फसल की कटाई-छँटाई के लिए विभिन्न पद्धतियां अपनाई जा सकती हैं जो पौधों के बीच रखी गई दूरियों पर निर्भर करती हैं। एक प्रयास में जब पौधों के बीच की दूरी 60 से.मी. x 60 से.मी. थी, सभी पौधों की प्राथमिक शाखाओं को दो पर्वसंधियों के बाद छाँटने पर बड़े अच्छे परिणाम मिले। पौधों की छंटाई ज्यादा से ज्यादा 10 दिनों के अंतराल पर की जानी चाहिए।

(घ) पौधों के बीच की दूरी :

ग्रीन हाउस में स्थान का समुचित उपयोग किसी फसल की उत्पादकता को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है। अनुसंधान प्रयासों में पाया गया कि 60 से.मी. x 60 से.मी. की दूरी रखने पर उत्पादकता सर्वाधिक थी। अन्य देशों में यह दूरी और भी अधिक रखी जाती है।

(ङ) लतारोहण (ट्रेनिंग) :

लतारोहण का मुख्य ध्येय यह है कि ग्रीन हाउस में पनप रहे सभी पौधों को सूर्य का प्रकाश समुचित रूप से उपलब्ध हो सके ताकि पत्तियों में प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया सुचारु रूप से संपन्न हो । लतारोहण की कई प्रणालियां है; जैसे कि - 'V' (अंग्रेजी वर्णमाला का अक्षर) आकृति डोरी, वितान प्रणाली (कैनोपी सिस्टम) या ऊर्ध्वाधर डोरी । इसके लिए नाइलॉन या पॉलीप्रोपाइलीन से बनी डोरियां प्रयुक्त की जाती हैं ।

(च) उत्पादकता को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का स्तर :

ग्रीन हाउस में खीरा उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक और उनके अपेक्षित स्तर का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है :

तापमान :

(अ) सर्वोत्तम विकास और उत्पादकता के लिए 26-27 डिग्री.से. का तापमान उपयुक्त है । अधिकतम तापमान 30-32 डि.से. से ऊपर नहीं होना चाहिए जब कि न्यूनतम तापमान 20 डि.से. तक हो सकता है । सर्दियों में अधिकतम 25 डि.से. और न्यूनतम 10 डि.से. का तापमान खीरा उत्पादन के लिए पर्याप्त है ।

(आ) **आर्द्रता :** ग्रीन हाउस में सापेक्ष आर्द्रता 70 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए । अधिक आर्द्रता पर्ण रोगों को आमंत्रित करती है ।

(इ) **कार्बन डाईऑक्साइड :** यदि ग्रीन हाउस में कार्बन डाईऑक्साइड का स्तर बढ़ाने की सुविधा हो तो इसकी सांद्रता 1000 अंश प्रति दस लाख अंश (पार्ट्स पर मिलियन) तक रखनी चाहिए । सामान्य वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता 300 अंश प्रति दस लाख अंश होती है । परीक्षणों से पता चला है कि कार्बन डाईऑक्साइड का स्तर बढ़ाने से उत्पादकता में अधिकतम 50 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है ।

(ई) **प्रकाश :** खीरे की पौध को केवल 1/4 सूर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है । प्रकीर्ण प्रकाश को सीधे प्रकाश की तुलना में प्राथमिकता देनी चाहिए ।

(उ) **पोषक तत्व :** प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन, पोटाश और गंधक की शुरुआती खुराक निम्नलिखित प्रकार से है :-

नाइट्रोजन	=	100 कि.ग्रा.
पोटाश	=	50 कि.ग्रा.
गंधक	=	50 कि.ग्रा.

यूरिया की पूरक खुराक को चरणों में, 4 ग्राम प्रति पौधे की दर से दिया जाना चाहिए । उपरोक्त पोषक तत्वों की मात्रा अधिक भी हो सकती है, जो कि खीरे की प्रजाति और फसल की कुल अवधि पर निर्भर करती है ।

(छ) परागण :

यदि एकलिंगी प्रजाति, जैसे कि पॉयनसेट, उगाई जा रही हो तो परागण सुबह के समय हाथ से किया जाना चाहिए । यदि बीज-रहित प्रजाति, जैसे कि एफ । प्रजाति उगाई जा रही हो तो परागण करने की आवश्यकता नहीं होती । हाथ द्वारा परागण कराने का उचित समय सुबह 8 से 10 बजे तक होता है ।

(ज) फसल की तुड़ाई :

चार से पाँच दिनों के अंतराल पर निरंतर फलों की तुड़ाई की जानी चाहिए और फलों को पौधों पर अतिपरिपक्व होने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए । इससे उत्पादकता में गिरावट आने की संभावना होती है । खीरे का प्रति हेक्टेयर उत्पादन लगभग 175 से 200 टन होता है ।

(झ) रोग नियंत्रण :

ग्रीन हाउस में पौधों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है । कुछ सामान्य रोग, उनके कारकों तथा रोकथाम के लिए रसायनों का विवरण अधोलिखित है :

(अ)	चूर्णरूपी मिल्ड्यू	:	बौवेस्टीन (2 ग्राम प्रति लीटर का विलयन) का छिड़काव
(आ)	डाउनी मिल्ड्यू	:	डाइथेन एम-45 का छिड़काव
(इ)	जड़-गांठ कृमि	:	भाप द्वारा शुद्धीकरण
(ई)	जीवाणविक मूर्च्छा	:	उपयुक्त कीटाणुनाशक
(उ)	विषाणु	:	विषाणु-प्रतिरोधी प्रजाति का उपयोग
(ऊ)	श्वेत मक्खी	:	(1) थेमिक '10 जी' का 15-30 प्रति 1000 वर्ग फुट दर से प्रयोग
		:	(2) परजीवी शलभ, जैसे कि 'एनकॉर्सिया फॉरमोसा' का प्रयोग

(ए)	थ्रिप्स	:	(1) चिपचिपी पट्टियों का उपयोग
			(2) 0.03 प्रतिशत डाइजीनॉन का छिड़काव
(ऐ)	एफिड	:	0.1 प्रतिशत मेलाथियन या 0. 1 -02 प्रतिशत मेटासिस्टोक्स का छिड़काव
(ओ)	दो धब्बे वाले स्पाइडर माइट	:	प्राकृतिक भक्षक (फाइटोसीलस पर्सीनीलस) का उपयोग ।

ग्रीन हाउस में खीरा-उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण

1000 वर्ग मोटर के ग्रीन हाउस निर्माण में लगभग 5 लाख रुपए खर्च होंगे । इस पर लगे प्लास्टिक आवरण की आयु दो वर्ष मानी गई है । ग्रीन हाउस में खीरा उत्पादन के लिए प्रति वर्ष लगभग लगभग 75 रुपए प्रति वर्ग मीटर का व्यय आंका गया है । वार्षिक उत्पादन 40 टन आंका गया है, जिसे औसतन रु०6.50 प्रति कि.ग्रा. की दर से बेचा जा सकता है । ग्रीन हाउस उत्पाद में लगी पूंजी को 15 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर किसी बैंक से ऋण के रूप में लिया जा सकता है । आर्थिक विश्लेषण के आधार पर पाया गया है कि लागत वापसी की आंतरिक दर 35 प्रतिशत से अधिक है । खीरा-उत्पादन की इस पद्धति का आय-व्यय अनुपात भी काफी अधिक है । इस प्रकार की परियोजना की लागत पूर्ति का समय 5 वर्षों से कम है ।

आर्थिक विश्लेषण से यह बात स्पष्ट है कि ग्रीन हाउस में बेमौसम खीरे का उत्पादन लाभकारी है । ऐसे ग्रीन हाउस अन्य सब्जियों के बेमौसम उत्पादन के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं और यदि ये उत्पाद विदेशी बाजारों में बेचे जाएं तो लाभ कहीं अधिक होगा । सच तो यह है कि ग्रीन हाउस उत्पादन जैसी अत्यधिक सघन कृषि प्रणालियां शिक्षित युवा वर्ग के रोज़गार की संभावनाएं बढ़ाती हैं ।

०००००

भारतीय खनिज विकास के इतिहास की संक्षिप्त समीक्षा

- डॉ॰ केदार नारायण

मानव सभ्यता के विकास और खनिज पदार्थों के उपयोग का बहुत ही गहरा संबंध है और उसी को आधार मान कर इतिहासकारों और पुरातत्वविदों ने मानव सभ्यता को चार मुख्य युगों में विभाजित किया हुआ है। इन्हें (1) पाषाण युग, (2) ताम्र युग, (3) लोह युग का नाम दिया गया है और आज हम (4) परमाणु-युग में रह रहे हैं।

भारत के खनिज विकास का पुनर्निर्माण भी इन्हीं के आधार पर किया जा सकता है।

1. पाषाण युग

इस युग में पत्थर से बनी हुई वस्तुओं का उपयोग मानव रोजमर्रा के जीवन में किया करता था। मानव का प्रादुर्भाव इस पृथ्वी पर करीब दस लाख वर्ष पूर्व, जिसे हम मध्यम अत्यंत नूतन युग (Mid Pleistocene epoch) कहते हैं, के आस-पास हुआ। तब से लेकर वर्ष 4000 ई.पू. तक के समय को पुरातत्वविदों ने पाषाण युग का नाम दिया और इसे पुनः तीन कालों में विभाजित किया हुआ है :

(क) पुराप्रस्तर काल (Palaeolithic age)

इस काल के बने हुए पत्थरों की वस्तुओं के अवशेष नर्मदा तथा गोदावरी नदियों के तट पर मिलते हैं। उस काल में बने हुए पत्थर के औज़ार बहुत ही अपरिष्कृत होते थे। उनके बनाने में जिन चट्टानों का उपयोग किया जाता था उनमें क्वार्ट्ज़ाइट, बेसाल्ट, काँग्लोमरेट प्रमुख हैं।

(ख) माध्यमिक युग (Mesolithic age)

इस युग के लोग साइलिसिअस मिनरल, जैसे कि फ्लिन्ट चर्ट, कैल्सेडोनी, एगेट और जैस्पर इत्यादि को छोटे तथा तेज औज़ारों के बनाने में बहुत इस्तेमाल किया करते थे। इन औजारों को माइक्रोलिथ के नाम से जाना जाता है।

(ग) नवप्रस्तर युग (Neolithic age)

इस युग तक पहुँचते-पहुँचते मानव पॉलिश की हुई कुल्हाड़ी और पत्थर के छोटे व बड़े औज़ार बनाने लगा था । इसके साथ-साथ कुछ खेती इत्यादि प्रक्रम भी प्रारंभ हो गए थे । इनके अवशेष कश्मीर, विंध्याचल के पठारी इलाकों और दक्षिण भारत के कई भागों में मिलते हैं ।

2. ताम्र युग

(क) प्रागैतिहासिक युग (Prehistoric age)

इसका समय 4000 ई.पू. से लेकर 2000 ई.पू. तक माना जाता है । मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यताएं भी इसी काल के अंतर्गत आती हैं । इस काल के अवशेष राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश के कुछ भागों से प्राप्त हुए हैं । इससे आभास होता है कि ताम्र युग का प्रारंभ यहीं से हो गया था ।

(ख) कैल्कियोलिथिक युग (Chalceolithic age)

जैसा कि नाम से आभास होता है कि इस काल के लोग पत्थर तथा तांबा दोनों का उपयोग करते थे । इस काल का निर्धारण 1800 ई.पू. से लेकर 900 ई.पू. तक माना गया है । इस युग के लोग तांबे का उपयोग काफी मात्रा में करते थे । इस युग में तांबा की जिन खदानों से ताम्र अयस्क निकाले जाते थे उनमें खेवड़ी तथा सिंहभूमि की खदानें मुख्य हैं । खेवड़ी की खदानों का विस्तार करीब 80 कि.मी. है तथा सिंहभूमि का 180 कि.मी. । इनमें कई जगहों पर पुरानी खदानों के अवशेष अभी भी मिलते हैं । इनके अलावा पुरानी खदानों के अवशेष और भी कई जगह मिले हैं । । इनमें कुमाऊं, गढ़वाल (उ.प्र.), गुंटूर (आ.प्र.) और अराकाट (त.ना.), नागपुर (महाराष्ट्र) और मलंजखंड (म.प्र.) भी सम्मिलित हैं ।

तांबे के मुख्य स्रोत कैल्कोपाइराइट, मैलेकाइट और एज़ूराइट थे। तांबे में टिन तथा आर्सेनिक का मिश्रण करके इसकी मिश्रधातु बनाना तो शुरू में ही प्रारंभ कर दिया गया था किंतु धीरे-धीरे इसमें सीसा तथा जस्ते का भी मिश्रण ये लोग करने लगे थे । सबसे पुराना अवशेष जो इन खदानों से प्राप्त हुआ है उसका काल 3150 वर्ष ई.पू. माना जाता है ।

इन्हीं के आधार पर हम लोगों ने नए भंडारों का पता लगाया और उनका विस्तारीकरण किया है । भारत के प्राचीन तथा मध्यवर्ती युग के खनिजों के इतिहास का ज्ञान हम लोगों को या तो संस्कृत में लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा या उस काल में आए बाहर के यात्रियों - जैसे मेगस्थनीज, ट्रेवरनीयर, प्लानी इत्यादि के वर्णन द्वारा मिलता है ।

कौटिल्य (300 ई.पू.) ने पहले पहल अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में खनिज पदार्थों तथा खदानों का विस्तार से विवरण दिया है । इन्होंने कुछ वनस्पतियों का भी विवरण दिया है, जिनका उपयोग इन धातुओं की खोज में किया जाता था । जिन अयस्कों का इन्होंने विवरण दिया है उनमें सोना, चाँदी, तांबा, सीसा, लोहा तथा पारा सम्मिलित हैं । इसमें उन रत्नों का भी विस्तार से विवरण दिया गया है जो कि उस समय बहुतायत से काम में लाए जाते थे । इनमें पर्ल (मोती), कोरल (मूंगा), डाइमंड (हीरा), पन्ना, लाल, नीलम तथा ओपल इत्यादि मुख्य हैं ।

आयुर्वेदिक दवाइयों के भस्म इत्यादि बनाने के कार्य में भी खनिज वस्तुएं प्रयोग में लाई जाती थीं । इनका विवरण 'चरक संहिता' में दिया गया है । इनमें कॉपर तथा आयरन सल्फेट, रीयलगर, आर्थीमेन्ट और रॉक सौल्ट प्रमुख हैं । सुश्रुत संहिता में उन लौह औज़ारों का भी उल्लेख है जो उसमें समय चीर-फाड़ के काम में लाए जाते थे ।

3. लौह युग

लौह का निकालना तथा उसका उपयोग वैदिक काल से थोड़ा पहले माना जाता है क्योंकि हड़प्पा सभ्यता से अभी तक लौहे की किसी वस्तु का अवशेष नहीं प्राप्त हुआ है । कैल्कोलिथिक सभ्यता के अंतिम चरण में करीब 900 वर्ष ई.पू. में लोहे के कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिससे पता चलता है कि लोहा बनाने का कार्य इस काल तक प्रारंभ हो चुका था । उसके बनाने में लोग लेटेराइट का प्रयोग करते थे । इसका वर्णन मेगस्थनीज (300 वर्ष ई.पू.) ने अपने यात्रा वृत्तांत में विस्तार से दिया है । चौथे शतक तक तो भारत में स्टील भी बनने लगा था । वह स्टील इतना विशिष्ट प्रकार का होता था कि उससे बनी तलवारें भारत के बाहर भी बिकती थीं । उस स्टील को वुट्ज़ के नाम से जाना जाता था और लौह पत्थर का शोध करने वालों को अगरिया कहा जाता था । पहले तो लोहे का उपयोग खेती की वस्तुएं बनाने के काम में किया जाता था किंतु औद्योगिक क्रांति के बाद तो इनका उपयोग सभी मशीनों तथा कल-कारखानों के बनाने में होने लगा । इसका उपयोग इतना बढ़ा हुआ था कि आधुनिक विश्व महायुद्ध के युग तक को लौह युग के नाम से जाना जाता रहा ।

4. परमाणु युग

दूसरे महायुद्ध के बाद, जब से परमाणु अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग हुआ, युद्ध तथा शांति कार्यक्रम प्रारंभ हुआ तो हम लोग अब परमाणु-युग में आ गए हैं । इसीलिए इस युग को परमाणु-युग कहा जाने लगा ।

पौराणिक युग के पहले से ही भारत में सोना तथा हीरे का खनन प्रारंभ हो गया था । हट्टी (मैसूर) की सोने की खदानों से जो लकड़ी के कोयले के अवशेष मिले हैं उनकी उम्र 2000 वर्ष पूर्व आंकी गई है । सोने का उत्पादन तो इससे भी बहुत पहले प्रारंभ हो चुका था ।

आधुनिक खनिज उत्पादन तथा वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण की संस्थापना के साथ ही प्रारंभ हुआ । प्रारंभ में तो भूवैज्ञानिक भूतल की समीक्षा तथा रासायनिक विश्लेषण के पश्चात् ही उसके उपयोग के बारे में सोचते थे । इस विभाग ने दूसरे महायुद्ध के दौरान खनिज पदार्थों के विकास के लिए काफी प्रयास किए ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् खनिज गवेषणा के लिए आधुनिक तरीकों का उपयोग प्रारंभ हुआ । इनमें भूभौतिक और भूरासायनिक मुख्य हैं । उनके द्वारा जब किसी भंडार का पता लगाया जाता है तब वेधन द्वारा उनका विस्तार तथा क्रम का निर्धारण किया जाता है । जब यह निश्चित हो जाता है कि खनिज भंडार दोहन-योग्य है तो भारत सरकार के कार्यरत संस्थानों को कह दिया जाता है कि वे उसका तदनुसार उपयोग करें । वे फिर युक्तिसंगतता के आधार पर व्योरेवार परियोजना रिपोर्ट बनवाने के बाद ही इसका दोहन प्रारंभ करते हैं ।

आजकल भूतल सर्वेक्षण के अलावा खनिज भंडारों का शीघ्रता से सीमांकन करने के लिए सुदूर संवेदन (रिमोट सेन्सिंग)तथा हवाई चुंबकीय (एयरोमैग्नेटिक) सर्वेक्षण का भी उपयोग किया जाता है ।

स्वतंत्रता के प्रथम दशक तक भारतीय भूविज्ञान सर्वेक्षण (जी.एस.आई.) ही सभी खनिज पदार्थों का सर्वेक्षण करता था । किंतु ज्यों-ज्यों विभिन्न खनिजों की आवश्यकता बढ़ने लगी त्यों-त्यों भारत सरकार ने शीघ्रता से अनुसंधान करने के उद्देश्य से कई विभाग बनाए । इनमें से मुख्य दो हैं । पहला, परमाणु-ऊर्जा संस्थान जो अब विभाग हो गया है । इसका एक प्रभाग केवल परमाणु खनिजों की खोज में संलग्न है और दूसरा, प्राकृतिक तेल व गैस आयोग है, जिसका कार्यभार भारत में प्राकृतिक तेल व गैस की खोज करना है । इनके अलावा भारत सरकार ने कई संस्थानों को कुछ निर्दिष्ट खनिजों के दोहन के लिए स्थापित किया है । इनमें मुख्यत: नेशनल मिनरल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लोहे की खदानों के विकास में लिए, ताँबे के विकास के लिए हिंदुस्तान कॉपर लिमिटेड, सीसा व जस्ता के लिए हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड, भारत अलुमिनियम कंपनी अलुमिनियम के लिए तथा कोल इंडिया लिमिटेड कोयले की खदानों के विकास के लिए ।

केंद्र सरकार के इन विभागों के अलावा विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने भी अपने निदेशालयों तथा खनिज विकास निगमों की स्थापना की है जो खनिज विकास कार्य में संलग्न हैं ।

इन्हीं केंद्र व प्रादेशिक संगठनों के प्रयासों के परिणामस्वरूप हम लोगों को कुछ मुख्य खनिज भंडारों का जो पता चला है उनमें उल्लेखनीय कुछ ये हैं -

1. ईस्ट कोस्ट बॉक्साइट भंडार
2. मलंजखंड तांबा भंडार
3. राजपुर दरीबा (राजस्थान) का सीसा व जस्ता भंडार
4. घिड़िया तथा बस्तर (म.प्र.) का लोह भंडार
5. उदयपुर (राजस्थान) का फॉसफोराइट भंडार
6. प्राकृतिक तेल का बॉम्बे हाई भंडार

इन सबका परिणाम यह हुआ है कि आज भारतवर्ष में करीब 20 हजार करोड़ रुपए का खनिज उत्पादन हो रहा है । इनमें मुख्य खनिज वस्तुओं के नाम हैं - कोयला, पेट्रोलियम, क्रोमाइट, प्राकृतिक गैस, लोहा, लाइमस्टोन बेराइटीज, तांबा, लिग्नाइट, फॉस्फोराइट, कैवोलीन, मैग्नेसाइट, मैंगनीज तथा सीसा व जस्त का कन्सन्ट्रेट । इसके अंतर्गत परमाणु तथा लघु खनिजों के उत्पादन मूल्य सम्मिलित नहीं हैं ।

केंद्र तथा प्रादेशिक सरकारों के अलावा कुछ निजी भारतीय कंपनियां भी इस कार्य में कार्यरत हैं । भारत सरकार की उदारीकरण नीति के अंतर्गत अब बहुराष्ट्रीय अंतर्देशीय तथा निजी कंपनियों को भी लोहा, हीरा तथा सोना जैसे महत्वपूर्ण खनिजों के उत्पादन में भागीदार बनाया जा रहा है । अभी हाल में भारत तथा फ्रांस सरकार के बीच एक समझौता हुआ है जिसके अंतर्गत हवाई चुंबकीय सर्वेक्षण द्वारा समुद्रतल की खनिज संपदा का पता लगाना भी शामिल है ।

भूतल की खनिज संपदा क्रमशः उत्पादन से घटती जा रही है और भविष्य में इनका आर्थिक उत्पादन कठिन होने की संभावना है । ऐसी दशा में हमें समुद्रतल की खनिज संपदा का भी उपयोग करना पड़ सकता है । भारत सरकार ने पहले ही इस दिशा में ठोस कदम उठा लिया है ।

०००००

भारत की प्रमुख नदियां तथा उनकी बदलती प्रवाह दिशाएं

- डॉ॰ विजय कुमार उपाध्याय

भारत की नदियों को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । ये दो वर्ग हैं - (1) प्रायद्वीपीय नदियों का वर्ग, तथा (2) बाह्य प्रायद्वीपीय नदियों का वर्ग । प्रायद्वीपीय नदियां अपने जल के लिए पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर करती हैं । ये सिर्फ वर्षा ऋतु और उसके कुछ बाद तक जल से भरी रहती हैं । इन नदियों में शामिल हैं - गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, महानदी, नर्मदा, ताप्ती, दामोदर, सुवर्ण रेखा इत्यादि । ऊपरी भाग में इन नदियों की धारा बहुत तीव्र होती है जहाँ ये पहाड़ों पर बहती हुई पत्थरों को काटती-छाँटती हुई आगे बढ़ती हैं और रास्ते में जल प्रपातों की रचना करती हैं । इन नदियों ने अपने मुहानों पर डेल्टाओं का निर्माण कर लिया है, जहाँ ये ऊपरी भाग से अपने साथ लाई गई मिट्टी को जमा करती हैं । ये डेल्टा काफी उर्वर हैं जो कृषि कार्य के लिए बहुत अनुकूल हैं ।

प्रायद्वीपीय नदियों की तुलना में हिमालय से निकलने वाली तीन प्रमुख नदियां बहुत विशाल हैं । इन तीन नदियों में शामिल हैं - गंगा, सिंधु तथा ब्रह्मपुत्र । अनुमान है कि सिंधु नदी प्रति दिन अपने साथ लगभग दस लाख टन मिट्टी समुद्र में लाती है । गंगा इससे थोड़ा कम तथा ब्रह्मपुत्र इससे कुछ अधिक मिट्टी ढोकर समुद्र में पहुँचाती है ।

हिमालय से निकलने वाली नदियों के जल स्रोतों में हिमनद का जल तथा वर्षा जल दोनों ही शामिल है । वर्षा काल में इन नदियों का जल मुख्यतः वर्षा से प्राप्त होता है । इसके विपरीत गर्मी की ऋतु में हिमनदों के पिघलने से जल प्राप्त होता है । नदियां पहाड़ों में प्रवाहित होने के दौरान काफी खड़े ढाल से गुजरती हैं जिसके फलस्वरूप बालू तथा रेत के महीन कणों के साथ-साथ पत्थर के छोटे तथा बड़े टुकड़ों को भी अपनी धारा में ढोकर लाती हैं । पत्थर के ये छोटे-बड़े टुकड़े या तो उन हिमनदों से ढोकर लाए जाते हैं जिनके पिघलने से इन नदियों को जल मिलता है, अथवा वे स्वयं अपनी तेज धारा के प्रवाह से रास्ते के पत्थरों को तोड़ती-फोड़ती हैं ।

भारतीय नदियों की प्रवाह दिशाओं में ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक काल के दौरान परिवर्तन के अनेक प्रमाण मिले हैं । हिमालय से निकलने वाली नदियों ने प्रायद्वीपीय नदियों की तुलना में अपनी प्रवाह दिशाएं अधिक बदली हैं ।

पश्चिमोत्तर भारत में तथा पाकिस्तान की सीमा से लगे भाग में राजस्थान, पंजाब तथा सिंध के उर्वर क्षेत्रों में मरुभूमि का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है । सिंधु नदी के नीचे का भाग तो लगभग पूर्णतः मरुस्थल है । ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक काल में सिंधु नदी के किनारे पर बसे अनेक नगर और गांव बाढ़ों से ग्रस्त होने या नदी की प्रवाह दिशा में परिवर्तन आने के कारण वीरान हो गए । मोहनजोदड़ो जैसे अनेक प्रागैतिहासिक नगर सिंधु नदी द्वारा लाई गई मिट्टी के नीचे आज दबे पड़े दिखाई देते हैं ।

सबसे अधिक रोचक है सरस्वती नदी का इतिहास । सतलज नदी (और शायद यमुना) से पानी हटने के कारण सरस्वती नदी सूख गई जो किसी काल में एक विशाल नदी थी । यह बीकानेर, बहावलपुर तथा सिंध होकर प्रवाहित होती थी । वैदिक साहित्य में सरस्वती नदी को गंगा तथा सिंधु नदियों की तुलना में अधिक महत्व दिया गया है । इसके किनारे (विशेष रूप से बीकानेर क्षेत्र में) ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक काल के जनपदों के अनेक अवशेष टीलों के रूप में मिले हैं । उस काल में सरस्वती नदी कच्छ के रन में आकर गिरती थी । यह रन उस काल में काफी गहरा था तथा समुद्र में चलने वाले जलयान इस क्षेत्र से होकर गुजरते थे । अनुमान है कि सरस्वती नदी अंतिम रूप से तीसरी शताब्दी में सूख गई जिसके कारण सूखा पड़ने तथा जल की कमी के कारण लोगों का यहाँ से सामूहिक रूप से पलायन होने लगा । संभवतः वेद लिखे जाने के समय (लगभग 5000 ई. पू.) तथा महाभारत की लड़ाई के बीच किसी समय सरस्वती नदी का ऊपरी भाग सूखने लगा था । इसका कारण था यमुना की धारा में परिवर्तन ।

अनुमान है कि किसी काल में सतलज नदी सरस्वती की मुख्य सहायक नदी थी और यह सरहिंदी के नाम से भटनायर तथा सिरसा के बीच एक स्थान पर सरस्वती नदी से मिलती थी । यूनानियों तथा अरबों द्वारा लिखे गए प्राचीन इतिहास-ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि 12 वीं शताब्दी तक सतलज पंजाब की नदी नहीं थी । तेरहवीं शताब्दी में सतलज ने अपनी धारा की दिशा बदल दी तथा कपूरथला के दक्षिणी-पश्चिमी कोने के निकट व्यास नदी के साथ मिल गई । सतलज निस्संदेह व्यास की तुलना में बड़ी थी । सतलज तथा व्यास की संयुक्त धारा चेनाब से अलीपुर के निकट मिलती थी । उसके बाद इन तीनों नदियों की संयुक्त धारा सिंधु नदी से मिठानकोट में मिलती थी ।

अठारहवीं शताब्दी के अंत तक सिंधु नदी की मुख्य धारा थल क्षेत्र के मध्य से गुजरती थी । सन् 1800 ई॰ में यह दो शाखाओं में विभक्त हो गई । इनमें से खेदेवारी नामक शाखा मुख्य धारा बन गई । यह धारा सन् 1819 ई. में आए भूकंप के कारण अवरुद्ध हो गई । सन् 1837 ई. तक सिंधु नदी की मुख्य धारा थी ककईवाड़ी, परंतु यह भी अवरुद्ध हो गई । इसके बाद मुख्य धारा बन गई हजामरो । इस प्रकार धारा में बार-बार परिवर्तन होने के कारण इसके किनारे पर बसे अनेक फलते-फूलते नगर वीरान हो गए । ऐसे नगरों में शामिल हैं थोड़ाबाड़ी तथा भीमांजोपुरा ।

सन् 1245 ई० के पूर्व झेलम, चेनाब तथा रावी नामक नदियां मुलतान के निकट मिलती थीं और मुलतान से पूर्व होकर बहती थीं। इसके बाद लगभग 45 किलोमीटर आगे ऊच से पूर्व व्यास नदी से मिलती थीं। परंतु चौदहवीं शताब्दी के अंत तक चेनाब ने अपनी धारा की दिशा बदल दी तथा अब यह मुलतान से पश्चिम होकर बहती है।

हिमालय से निकलकर जितनी नदियां मैदान में आती हैं वे सब अनेक डेल्टाओं का निर्माण करती हैं तथा इसके कारण इनकी धाराओं में बार-बार परिवर्तन आता गया है। उदाहरणार्थ, कोसी किसी काल में पूर्णिया नगर के पार्श्व से गुजरती थी परंतु अब इसकी धारा उस स्थान से काफी पश्चिम होकर बहती है। पहले कोसी का गंगा से संगम मनिहारी के निकट होता था, परंतु अब यह संगम उस स्थान से लगभग 32 किलोमीटर दूर है।

लगभग दो सौ वर्ष पूर्व बंगाल में गंगा की धारा भागीरथी तथा हुगली नदियों से होकर गुजरती थी परंतु आजकल हुगली एक छोटी तथा पतली नदी है जबकि पद्मा, जो पूर्वी बंगाल (अर्थात् बंगला देश) से होकर बहती है, गंगा की प्रमुख धारा बन गयी है। इसी प्रकार काफी पहले दामोदर का हुगली से संगम कलकत्ता से 56 किलोमीटर आगे होता था परंतु अब यह संगम कलकत्ता से कई किलोमीटर नीचे होता है। पहले भागीरथी की धारा सरस्वती नामक नदी से गुजरती थी। सरस्वती की धारा आजकल वर्तमान हुगली के पश्चिम में देखी जा सकती है। यह हुगली से त्रिवेणी में अलग होती थी जो कलकत्ता से 58 किलोमीटर ऊपर था तथा पुनः हुगली में सँकरैल के पास मिलती थी। यह स्थान 10 किलोमीटर नीचे था। पंद्रहवीं शताब्दी तक यह एक महत्वपूर्ण नदी थी और इसके किनारे सतगांव नामक नगर था जहाँ पहले बंगाल की राजधानी थी। यह स्थान व्यापार का प्रमुख केंद्र था क्योंकि समुद्र की ओर जाने वाले सभी जलयान यहाँ रुकते थे। सरस्वती की धारा की दिशा बदल जाने के कारण सतगांव का महत्व समाप्त हो गया।

लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक तिस्ता गंगा की एक सहायक नदी थी। परंतु सन् 1787 ई. में आयी एक विनाशकारी बाढ़ के बाद तिस्ता ने पुरानी धारा की दिशा छोड़ दी और यह ब्रह्मपुत्र की एक सहायक नदी बन गयी। ब्रह्मपुत्र नदी पहले मधुपुर जंगल के पूर्व से गुजरती थी, परंतु अब इसका पद्मा से संगम काफी आगे पश्चिम में होता है।

मौर्य तथा गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र, जो पांचवीं शताब्दी तक एक विकसित नगर था, आज वर्तमान पटना के नीचे दबा पड़ा है। इतिहास के ग्रंथों से पता चलता है कि पाटलीपुत्र नगर पाँच नदियों के संगम पर अवस्थित था। ये पाँच नदियां थीं - गंगा, घाघरा, गंडक, सोन तथा पुनपुन। बार-बार आयी बाढ़ों के कारण यह नगर बरबाद हो गया और मिट्टी के नीचे दब गया। वर्तमान समय में गंगा से घाघरा, गंडक, सोन तथा पुनपुन का संगम एक दूसरे से काफी दूर-दूर पर स्थित है।

० ० ० ०

लेड द्वारा पत्तीदार सब्जियों को पहुँचने वाली हानि

- डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र

हमने शीलाधर मृदाविज्ञान संस्थान के प्रायोगिक प्रक्षेत्र में मृदा प्रदूषक लेड का विषैला प्रभाव देखने के उद्देश्य से दो पत्तीदार सब्जियों - पालक तथा मेथी को सूचक फसलों के रूप में चुना। प्रक्षेत्र के प्लॉटों में लेड (लेड नाइट्रेट) की चार विभिन्न मात्राएं (0, 50, 100 व 200 पी.पी.एम. लेड) डाल कर उपर्युक्त दो फसलें क्रमवार उगाई गईं। प्रारंभ में इन फसलों पर बाह्य रूप से लेड का कोई प्रभाव नहीं दिखा, किंतु बाद में पौधों की बढ़वार तथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव परिलक्षित हुआ। पौधों के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि लेड की मात्रा में वृद्धि के साथ पौधों में भी लेड की मात्रा में वृद्धि होती है। इसी वृद्धि के कारण पत्तीदार फसलों की वृद्धि तथा उपज में कमी आती है।

दिनों-दिन पर्यावरण के प्रदूषित होने, कृषि में उर्वरकों का प्रयोग बढ़ने, सिंचाई के लिए स्वच्छ जल की अनुपलब्धता के कारण प्रदूषित जल के अधिकाधिक उपयोग के फलस्वरूप मृदा में प्रदूषकों की मात्रा बढ़ती जा रही है। इसके अतिरिक्त पौधे पत्तियों व अन्य बाह्य अंगों द्वारा वातावरण से हानिकारक तत्वों - लेड, कैडमियम, क्रोमियम व निकिल का शोषण करते रहते हैं (सेविन्स आदि[1])। देश में हरित क्रांति के फलस्वरूप अनाजों का जहाँ रिकार्ड उत्पादन हुआ है वहीं उपज की वृद्धि के लिए उन्नतशील बीजों व यंत्रों के साथ-साथ कीटों व बीमारियों को नष्ट करने वाले रसायनों तथा उर्वरकों का प्रति हेक्टर प्रयोग भी बढ़ा है, जिनमें विभिन्न हानिकारक तत्व, जैसे लेड कैडमियम व क्रोमियम प्रचुरता में पाए जाते हैं (सिंह और विश्वास[2])। सिंचाई के लिए प्रयुक्त नालों व नदियों के प्रदूषित जल में बड़ी मात्रा में हानिकारक तत्वों की उपस्थिति सिद्ध हो चुकी है (पाटिल, इत्यादि[3])। कुल मिलाकर ये सारे तत्व भूमि तथा फसलों पर विषैला व हानिकारक प्रभाव डालते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए हमने प्रदूषक तत्व सीसे के प्रभाव को पत्तीदार तरकारियों में देखा। इसके लिए लेड की चार अलग-अलग मात्राएं (0, 50, 100 तथा 200 पी.पी.एम. लेड) प्रयुक्त करते हुए पालक तथा मेथी की फसलें उगाई गईं। लेड की ये मात्राएँ जानबूझकर उच्च रखी गई हैं जिससे सही परिणाम प्राप्त हो सकें।

प्रयोगात्मक

प्रक्षेत्र की तैयारी

शीलाधर मृदाविज्ञान संस्थान के प्रायोगिक फार्म में यादृच्छिक विधि द्वारा चार उपचारों की तीन-तीन आवृत्तियों के लिए प्लॉट तैयार किए गए । वर्ष 1988-89 के सर्दी के मौसम में पालक तथा मेथी की फसलें उगाई गईं । परीक्षण प्लॉटों का आकार 1 मी॰² रखा गया । फसलों की कटाई परिपक्व होने पर की गई । पौधे के विभिन्न भागों के रासायनिक विश्लेषण के लिए प्रत्येक प्लॉट से अलग-अलग नमूने लिए गए ।

उपचार

प्रक्षेत्र के 1 मी॰ क्षेत्रफल के प्लॉटों में 0, 50, 100 तथा 200 पी.पी.एम. लेड प्रति प्लॉट डाला गया । तैयार प्रक्षेत्र में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश की 50:30:30 कि./है. मात्रा रासायनिक उर्वरकों द्वारा दी गई । लेड की मात्रा को लेड नाइट्रेट विलयन के रूप में, तथा एन.पी.के. को क्रमशः यूरिया, सुपरफॉस्फेट तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश के रूप में मृदा में मिलाया गया । तैयार प्रक्षेत्र में पालक का बीज 5 ग्रा. प्रति प्लॉट की दर से 15 अक्तूबर, 1988 को बोया गया । पालक की फसल के बाद उसी खेत में दूसरी फसल मेथी को 15 जनवरी, 1989 को 5 ग्राम बीज प्रति प्लॉट की दर से बोयी गयी । दोनों फसलों में प्रायः 10 दिनों के अंतराल से हल्की सिंचाइयाँ की गई । फसलों की कटाई से पूर्व दोनों फसलों की ऊँचाई नापी गयी । पालक को बोने के 60 दिन बाद तथा मेथी को 90 दिन बाद जड़ सहित उखाड़ लिया गया । दोनों फसलों का हरा-भार ज्ञात किया गया । प्राप्त परिणामों को सारणियों (सारणी 1-6) के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है ।

पालक तथा मेथी की जड़ों तथा तनों के नमूने को द्वि-अम्ल के मिश्रण से पाचित किया गया । तत्पश्चात् निष्कर्षों में लेड का सांद्रण ज्ञात करने के लिए 'एटोमिक एब्जॉर्प्शन स्पेक्ट्रोफोटोमीटर' का उपयोग किया । यह सुविधा केंद्रीय मत्स्य प्रग्रहण शोध संस्थान, बैरकपुर (पं॰ बंगाल) के सौजन्य से उपलब्ध हुई ।

परिणाम तथा विवेचना

पौधों की लंबाई तथा उपज

सारणी 1-2 से स्पष्ट है कि पालक व मेथी के पौधों की लंबाई 50 व 100 पी.पी.एम. लेड डालने से नियंत्रण प्लॉटों की तुलना में क्रमशः 8 प्रतिशत, 17 प्रतिशत, 7 प्रतिशत और 12 प्रतिशत घटी । लेड की सर्वोच्च मात्रा (22 पी.पी.एम.) डालने से दोनों

फसलों की वृद्धि में लगभग 20 प्रतिशत की कमी आई । नियंत्रण प्लॉटों में पौधों की लंबाई सर्वाधिक देखी गयी । दोनों फसलों की उपज में भी ऐसा ही संबंध प्राप्त हुआ (सारणी-3-4) परंतु 50 पी.पी.एम. लेड के प्रयोग से पालक में 22 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई, जिसका कारण अज्ञात रहा । जबकि 100 पी.पी.एम. लेड स्तर पर नियंत्रण प्लॉट की तुलना में पालक की उपज में 19 प्रतिशत तथा 200 पी.पी.एम. के सर्वोच्च स्तर पर 53 प्रतिशत की कमी देखी गई । मेथी की फसल में भी लेड के इन्हीं स्तरों पर उपज में क्रमशः 5 प्रतिशत 25 प्रतिशत और 48 प्रतिशत की कमी दिखलायी पड़ी जबकि नियंत्रण प्लॉट में मेथी की उपज सर्वाधिक रही ।

इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि लेड की बढ़ती हुई मात्रा पत्तीदार सब्जियों की वृद्धि तथा उपज पर बुरा प्रभाव डालती है । राबोन्स[4] द्वारा 2 पी.पी.एम. लेड डालकर पालक उगाने पर उसकी वृद्धि, पत्तियों की संख्या तथा उपज में काफी गिरावट आई । इसी प्रकार के परिणाम शुक्ला[5] को भी प्राप्त हुए हैं ।

पौधे की पत्तियों तथा जड़ों द्वारा लेड का शोषण

सारणी 5-6 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि पालक की पत्तियों द्वारा लेड अवशोषण, नियंत्रण की तुलना में 50 पी.पी.एम. लेड के उपचार पर 1.4 गुनी, 100 पी. पी.एम. पर 2.2 गुनी तथा अत्यधिक उच्च मात्रा (200 पी.पी.एम.) पर पाँच गुनी तथा जड़ों में क्रमशः 1.5, 1.9, व 4.5 गुनी वृद्धि होती है । इसी प्रकार के परिणाम मेथी में भी देखे गए । उसमें 50, 100 तथा 200 पी.पी.एम. लेड के उपचार पर पत्तियों वाले भाग में 1.7 गुनी, 2.8 गुनी, व 6.5 गुनी, जड़ों में क्रमशः 1.4, 1.9 व 5 गुनी तक लेड शोषण में वृद्धि पायी गयी । शुक्ला[6] ने पालक, मक्का एवं शलजम में अधिक लेड की मात्रा वाले उपचार में पौधों में उपस्थित लेड का स्तर उच्च पाया है ।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त परिणामों द्वारा यह सिद्ध होता है लेड की बढ़ती हुई मात्रा पत्तीदार पौधों की बढ़वार तथा उपज पर अत्यंत हानिकारक प्रभाव डालती है । भूमि में लेड की मात्रा बढ़ने से पौधों में उसकी शोषित मात्रा बढ़ती जाती है जिससे पत्तीदार सब्जियों की उपज घटती है और लेड की उच्च मात्रा होने से वे खाने के योग्य नहीं रहतीं ।

सारणी-1

पालक की वृद्धि पर लेड का प्रभाव

लेड स्तर (मि.ग्रा./कि.)	माध्य वृद्धि (से.मी.)
लेड-0	7.48
लेड-50	6.92
लेड-100	6.21
लेड-200	6.05

सारणी-2

मेथी की वृद्धि पर लेड का प्रभाव

लेड स्तर (मि.ग्रा./कि.)	माध्य वृद्धि (से.मी.)
लेड-0	16.23
लेड-50	15.17
लेड-100	14.33
लेड-200	13.10

सारणी-3

पालक की उपज पर लेड का प्रभाव

लेड स्तर (मि.ग्रा./कि.)	माध्य वृद्धि (किग्रा./मी.^{2})
लेड-0	0.900
लेड-50	1.100
लेड-100	0.730
लेड-200	0.420

सारणी-4

मेथी की उपज पर लेड का प्रभाव

लेड स्तर (मि.ग्रा./कि.)	माध्य वृद्धि (किग्रा./मी.^{2})
लेड-0	0.800
लेड-50	0.760
लेड-100	0.600
लेड-200	0.420

सारणी-5

पालक के पौधों में लेड की सांद्रता पर लेड स्तर का प्रभाव

लेड स्तर (मि.ग्रा./कि.)	पौधे के विभिन्न भागों में लेड (मि.ग्रा./कि.)	
	पत्तियाँ	जड़ें
लेड-0	0.94	0.62
लेड-50	1.31	0.90
लेड-100	2.11	1.13
लेड-200	5.22	2.89

सारणी-6

मेथी के पौधों में लेड की सांद्रता पर लेड स्तर का प्रभाव

लेड स्तर (मि.ग्रा./कि.)	पौधे के विभिन्न भागों में लेड (मि.ग्रा./कि.)	
	पत्तियाँ	जड़ें
लेड-0	0.90	0.61
लेड-50	1.49	0.90
लेड-100	2.52	1.19
लेड-200	5.99	3.00

संदर्भ :

1. *सेबिन्स, डी.डी., गोर्डन, एम. तथा गाल्स्टन, ए. डब्लू, Plant Physiol. 1969, 44, 1355-63.*
2. *सिंह, आर, तथा बिस्वास, बी.सी. Tran. 12th Int. Congr. Soil Sci. 1982, 4, 22-247.*
3. *पाटिल, ए.डी., एलोन, बी.जेड. तथा भिडे, ए.डी. Current Res. in India 19985, 74, 87-94.*
4. *राबोन्स, एस. इत्यादि, , Plant and Soil, 1985, 74, 87-94*
5. *शुक्ला, पी.के.डी.फिल. थीसिस, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1991.*
6. *शुक्ला, पी.के.डी.फिल. थीसिस, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1991.*

हिमालय का विवर्तनिक परिदृश्य

- डॉ॰ डी॰सी॰ नैनवाल, एवं
श्री के॰एन॰ कंडवाल

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में नंगा पर्वत (कश्मीर) से नामचाबरुआ (असम) तक 2400 कि.मी. लंबवत् तथा उत्तर-दक्षिण दिशा में 320 कि.मी. भाग में फैली विवर्तनिक पर्वत शृंखला लगभग 594,400 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में हिमालय पर्वत के नाम से जानी जाती है । भौगोलिक दृष्टि से हिमालय को सिंधु नदी से सतलज तक पंजाब हिमालय, सतलज से काली तक कुमाऊं-गढ़वाल हिमालय, काली से तिस्ता तक नेपाल हिमालय तथा तिस्ता से ब्रह्मपुत्र तक असम हिमालय के नाम से जाना जाता है । प्रशासनिक रूप से पूर्वी हिमालय (असम क्षेत्र), मध्य हिमालय (उत्तराखंड), तथा पश्चिमी हिमालय (जम्मू-कश्मीर, पंजाब हिमाचल) दर्शाए गए हैं । पर्वत शृंखला की संरचना के आधार पर तिब्बत से लगे हुए हिमालय के उत्तरी भाग को टेथिस हिमालय तथा दक्षिण की ओर क्रमशः बृहत् या केंद्रीय हिमालय, लघु हिमालय और सिंधु-गंगा के मैदान तक फैले भाग को बाह्य हिमालय क्षेत्र में बांटा में गया है ।

उद्भव

मध्यजीवी महाकल्प के क्रिटेशियस कल्प में तिब्बती भूखंड तथा भारतीय प्रायद्वीप के मध्य फैला था टेथिस सागर । तब इस समुद्री खाई के तिब्बती भूभाग की ओर ग्यूमल बालुकाश्म व चिक्किम चूनाश्म नामक फ्लिश अवसाद संचित हो रहे थे । साथ ही भारतीय भूभाग की ओर उपतटीय (शेल्फ) अवसादों में देवबन-शाली व शिमला शेल का विस्तार था । भारतीय भूभाग नूतनजीवी महाकल्प के प्रारंभ में 20 सेमी. प्रति वर्ष की गति से तिब्बती भूभाग की ओर खिसक रहा था । इस क्रिया के सापेक्ष आदिनूतन युग (इयोसीन) के अंतिम भाग में किरथार चूनाश्म शैल के उपरांत नारी, गज चूनाश्म व मुरी बालुकाशम दक्षिणी भाग में सागरी अवसाद के रूप में तथा टेथिस के उत्तर में खारी अवसाद के रूप में जमा हो रहे थे । मध्य नूतन युग के प्रारंभिक समय में टेथिस सागर के अवसाद पर अत्यधिक दबाव बढ़ गया था जिससे संकरी खाई का निर्माण हुआ । इस युग के मध्यांतर में भारतीय पटल के तिब्बती(एशिया) पटल पर टकराव से टेथिस सागर विलुप्त हो गया था । साथ ही पटल की गति क्षीण होते हुए 8 से 10 सेमी. प्रति वर्ष हो गई थी । इस प्रक्रिया में अधःस्थ सिमै पटल (भूपटल का निचला भाग जो सिलिका व मैग्नीशियम युक्त अल्पसिलिक से अत्यल्प सिलिक शैल का बना होता है) खाई में जा समाया । साथ ही

ज्वालामुखी क्रियाएं जाग्रत हुईं, और संधिस्थल पर ओफियोलाइट लावा व मैग्मा का उद्‌भेदन हुआ । वर्तमान में यह रूपांतरित होकर सर्पेन्टीन, एपिडोर, एलबाइट व ऐफिबोल युक्त शैल के रूप में लेह तथा कैलाश मानसरोवर भाग में देखा जा सकता है । समुद्री खाई के द्वार पर फंसे सिमै के कुछ संस्तरखंड अवसादों के साथ अधिक्षेपण प्रक्रिया से ऊपरी भाग में अवतरित हुए । प्रायद्वीपी भूखंड का क्रिस्टलीय आधारी अग्रभाग कम घनत्व वाले सिमै के कारण भारी सघन प्रावार में गहरा नहीं समाया बल्कि वलित व क्षेपभ्रंशित होकर ऊपर उठा तथा नापै के रूप में दक्षिण की ओर खिसकता गया । साथ ही असमतुल्य दबाव के कारण ओफियोलाइट संस्तर खंडों से सागरी अवसाद-चर्ट, शैल फ्लिश आदि भी बाहरी पटल पर अवतरित हुए । संघट्ट के दौरान आधारी 'सिएल' (भूपटल का ऊपरी भाग जो सिलिका व एलुमिना युक्त ग्रेनाइट-ग्रैनाडायोराइट शैल बाहरी भाग में तथा ग्रैब्रोइक थियोलाइटिक शैल अंदरूनी भाग में होता है) का क्रिस्टलीय भाग कुछ अवस्था तक द्रवीभूत हुआ, जो कि कालांतर में बृहत् हिमालय वाले भूपटल पर ग्रेनाइट महास्कंध (बेथोलिथ) के रूप में अभिस्थापित हुआ है । सिमै पटल पर डोलते 'सिएली' पट्ट की परस्पर संघट्ट प्रक्रिया के चलते ऊपर उठ रहे नवोदित हिमालय के पाद प्रदेश में एक संकीर्ण किंतु सुदीर्घ गर्त - अग्रगभीर (फोरडीप) विकसित हुआ, जिसमें अवसादों की अपरिमेय राशि संचित होती रही । मध्यनूतन युग (मायोसीन) की समाप्ति पर ये अवसाद भी वलित - भ्रंशित होकर ऊपर उठने लगे । विवर्तनिक प्रक्रिया के दौरान जमा होने वाले अवसादों (मौलास) से निर्मित इस श्रेणी को शिवालिक के नाम से जाना जाता है । शिवालिक अवसादों के जमाव के उपरांत अतिनूतन युग (प्लायोसीन) के अंतिम चरण में तथा अत्यंतनूतन (प्लीस्टोसीन) के प्रारंभ में इस नूतन पर्वत शृंखला में उठाव हुआ, जिससे पीर पंजाल पर्वत श्रेणी के साथ लघु हिमालय पर्वतमाला अपने स्थान से ऊर्ध्वाधर उठते हुए अंशतः क्षैतिज तल पर खिसक गई थी । इस तरह संघट्ट के बाद भी भारतीय भूपटल 3 से 4 सेमी. की गति से बढ़ते हुए एशिया (तिब्बती) पटल की ओर दबाव बनाए हुए है जिससे वर्तमान में भी समय-समय पर प्रतिबल के रूप में भूकंपी तरंगें इस क्षेत्र में कंपन पैदा करती हैं ।

विवर्तनिक सरंचना

भारतीय भूपटल तथा यूरेशिया (तिब्बती) भूपटल के टकराव क्षेत्र में अवतरित सुदीर्घ गर्त - सिंधु सांगपो सीवन (सूचर) के निर्माण के उपरांत नूतन पर्वतमाला में विवर्तनिक क्रियाएं जारी रहीं, जिससे शैल समूह वलित-भ्रंशित होकर अपने स्थान से कई किमी. दक्षिण् की ओर विस्थापित हुए । भारतीय भूभाग के टेथिस क्षेत्र की चट्टानों को यूरेशिया के तिब्बत-काराकोरम भाग (सुदूरवर्ती हिमालय) से अलग करने वाले तल सिंधु-सांगपो संधि क्षेत्र में अवसादी शैलों के साथ अल्पसिलिक, अतिअल्पसिलिक लावा मिश्रित शैल, ओफियोलाइट व मैलांज का विषम विन्यास विद्यमान है । बृहत् हिमालय के आधारी क्रिस्टलीय शैलों के ऊपर अवतरित टेथिस अवसाद एक समभिनति में वलित व भ्रंशित है।

उत्तरी दिशा की ओर ये चट्टानें अधिक दबाव वाले रूपांतरित घन वलनों व कई भ्रंश तलों से आच्छादित हैं । कैलाश-मनासरोवर व लद्दाख क्षेत्र में ओफियालाइट व ब्लूशिष्ट शैल स्पिलिटिक लावा के साथ विद्यमान हैं तथा उत्तर की ओर झुके हुए हैं । पेरिडोटाइट, हर्जबरगाइट व गैब्रो युक्त मैलांज के कुछ अंश सिंधु-सांगपो क्षेत्र से लगभग 80 किमी. दक्षिण की ओर बृहत् हिमालय भाग में संधित क्षेत्र से उत्पन्न कोरछादी क्षेप भ्रंशों को दर्शाते हैं ।

यह क्षेत्र टेथिस हिमालय से बाह्य हिमालय (शिवालिक) तक विद्यमान है । (तालिका-1) शैल समूहों में रूपांतरण कोटि, संरचनात्मक लक्षणों के सामूहिक स्वरूप, प्रावस्था अनुस्थापन व संघटन आदि में सुस्पष्ट अंतर देखा जाता है ।

बृहत् हिमालय क्षेत्र में 6000 से 12000 मीटर मोटी कैंब्रियन पूर्व की ऐंफिबोलाइट (फेसिस) संलक्षणी रूपांतरित चट्टानें समनति संरचना लिए हुए ग्रेनाइट शैल पिंडों सहित विद्यमान हैं । उत्तरी भाग में टेथिस क्षेत्र के शैलों से सीमित आधारी भाग में अवस्थित बृहत् हिमालय दक्षिण भाग में निचले तल पर मुख्य मध्यवर्ती क्षेप भ्रंश द्वारा लघु हिमालय के ऊपर फैला हुआ है । इस क्षेत्र की ऊँची चोटियां नंदादेवी (7816 मी.), बद्रीनाथ (7069 मी.) व गंगोत्री (6616 मी.) गढ़वाल क्षेत्र में विद्यमान हैं । मुख्य मध्यवर्ती क्षेप भ्रंश पर्पटी पर अवतरित एक दीर्घ अपरूपी विभंग (क्रस्टल शियर) के रूप में 20 से 550 नति लिए उत्तर की ओर झुका हुआ है । हिमालय क्षेत्र में यह तल आधारी भित्ति की स्थलाकृति के अनुरूप अलग-अलग ऊँचाई पर रैंप-तीव्र ढाल व फ्लैट-न्यूनतम ढाल अवस्था में विद्यमान है । फ्लैट अवस्था में भ्रंश तल संस्तर अथवा संस्तर को 45^0 पर विभेदित करता है । इस तरह यह भ्रंश एक आराम कुर्सी के आरोही-अवरोही क्रम की रचना में अवतरित है । मुख्य मध्यवर्ती क्षेप भ्रंश एक तल के रूप में नहीं बल्कि कोरछादी भ्रंश तलों के साथ लघु हिमालय क्षेत्र में संस्तर खंडी संरचना प्रदर्शित करता है । इस प्रक्रिया में उत्तर दिशा में बनने वाले नए भ्रंश तल, पूर्व में विद्यमान भ्रंश के रैंप भाग से प्रतिबल के बढ़ाव से उत्पन्न विभंग के कारण प्रतिस्थापित हुए हैं । गढ़वाल क्षेत्र में मुख्य मध्यवर्ती भ्रंश द्वैधिक (डुप्लैक्स) अवस्था में दृष्टिगोचर होता है, जहाँ पर तलहटी व छादी तल के मध्य कोणीय अनुभागों में संस्तरखंड सिमटे हुए हैं ।

लघु हिमालय क्षेत्र में अवस्थित इन कोरछादी भ्रंशों के कारण संस्तरखंड का विस्थापन अधिक दूरी तक हुआ है । परिणामस्वरूप नापे संरचनाओं की स्थापना हुई है । इस क्षेत्र के शैल ग्रेनाइट व ग्रैनोडायोराइट प्लूटोन से अन्तर्वेधित हैं तथा जुतोग, मुंसियारी, बूढ़ाकेदार चैल, पारो आदि नापे के नाम से जाने जाते हैं । बृहत् हिमालय के आधारी भाग में विद्यमान मुंसियारी नापे मुख्य मध्यवर्ती भ्रंश से उत्तरी भाग में सीमित है । इस क्षेप भ्रंश को उच्चतम या प्रथम तल नाम दिया गया है । इसके सापेक्ष उच्च रूपांतरण कोटि के विकृत समुदाय के शैल विस्थापित हुए जब कि मध्यतल या द्वितीय तल मध्य रूपांतरण कोटि के जुतोग व निचले तल या तृतीय तल निम्न रूपांतरण कोटि के चैल, बूढ़ाकेदार

समुदाय के शैलों को विस्थापित करते हुए नापे संरचना बनाते हैं । लघु हिमालय के मध्य भाग (हिमाचल उत्तराखंड) के दक्षिणी क्षेत्र में अवस्थित अल्प अपरस्थानिक समअभिनतिक क्रोल नापे फिलाइट, क्वार्ट्ज़ाइट.चूनाश्म, स्लेट व संगुटिकाश्म शैल संगठनों से व्याप्त है । संस्तर विन्यास के प्रक्रम में इन्हें चांदपुर नागधार, ब्लेनी, इन्फ्राक्रोल, क्रोल व ताल शैल समूह में रखा गया है । इनमें चांदपुर फिलाइट को चैल नापे-प्रथम बैरीनाग-प्रतापनगर क्वार्ट्ज़ाइट को चैल नापे-द्वितीय तथा चूनाश्म युक्त कोटगा बेनाली शैल को चैल नापे - तृतीय (अल्प अपरस्थानिक) के आधार पर उद्धृत किया गया है । एक इकाई के रूप में ये संरचनाएं गढ़वाल नापे के नाम से जानी जाती हैं । ये नापे क्रोल भ्रंश अथवा गढ़वाल भ्रंश के सापेक्ष विस्थापित हुए हैं । लघु हिमालय क्षेत्र के शैलों को बाह्य हिमालय (शिवालिक) से अलग करने वाले तल मुख्य सीमांत भ्रंश की नति 20^0 से 65^0 तक उत्तर पूर्व की ओर है । यह भ्रंश तीन कोरछादी तलों के तहत मुख्य हिमालय पट्टिका, मुरी शैल समूह व शिवालिक को विभाजित करता है । इन क्षेप भ्रंशों का मुरी (जम्मू), क्रोल (हिमालय-उत्तराखंड) महाभारत (नेपाल) व गारू(पूर्वी अरुणाचल) के नाम से उल्लेख किया गया है । मुख्य सीमांत भ्रंश क्षेत्र में नवविवर्तनिक क्रियाओं के प्रमाण उजागर हुए हैं । इसमें दून ग्रैवल के ऊपर चांदपुर फिलाइट का विस्थापन, शिवालिक क्षेत्र में बहने वाली नदियों का प्रवाह-पथ से विचलन तथा युग्मित वेदिकाओं में से शिवालिक क्षेत्र में अवस्थित वेदिका में उठान आदि हैं । मुख्य सीमांत भ्रंश क्षेत्र की आधारी भित्ति में विद्यमान शिवालिम शैल समूह को तीन समुदायों में बाँटा गया है । निचला समुदाय मिट्टी व महीन बालुकाश्म युक्त है । साथ ही इसमें 50 प्रतिशत उपकोणित क्वार्ट्ज, फिलाइट व अभ्रक (माइका) भी मौजूद हैं । मध्य भाग के शैल चूनायुक्त बालुकाश्म व पांशु प्रस्तर (सिल्टस्टोन) से तथा ऊपरी भाग बालुकाश्म व संगुटिकाश्म द्वारा निर्मित है । ये शैल समूह समनति वलन, ऊर्ध्वाधर वलन व अधिक फैलाव वाले अभिनति अक्ष तल के सापेक्ष भ्रशों व अन्य तिर्यक् भ्रंशों से विरूपित हुए हैं । शिवालिक शैल समूह दक्षिणी भाग में गंगा के मैदान तक विद्यमान है जहाँ पर यह क्षेत्र हिमालय अग्रक भ्रंश के द्वारा सीमित हुआ है । यह भ्रंश सोपानी क्षेप भ्रंशों (एन एच लौन) के विन्यास का क्षेत्र है जो कि भाभर में फैली ग्रेवल चादर से ढके हैं । भ्रंश क्षेत्र में अवसाद का जमाव तथा अवतलन साथ-साथ होने से नई पर्वतांचलाकृति के निर्माण की प्रारंभिक अवस्था मानी जा सकती है । क्षेप भ्रंशों के सापेक्ष शिवालिक क्षेत्र के ऊपर उठने तथा अवसाद के अवतलन से पंजाब-जम्मू क्षेत्र में शिवालिक शैल संकरे भाग में पट्टिकाओं के रूप में अवतरित हो रहा है । निम्नलिखित तालिका में हिमालय के विवर्तन स्वरूप को दर्शाया गया है ।

तालिका - 1

हिमालय की विवर्तनिक संरचना

	पश्चिमी हिमालय	मध्य हिमालय	पूर्वी हिमालय
तिब्बती हिमालय	टेथिस हिमालय - का - जीवाश्म - युक्त अवसादी शैल		
	इंडस सांगपो संधि/दीर्घ गर्त		
बृहत् हिमालय	टेथिस शैल सैंट्रल क्रिस्टलाइन उच्च रूपांतरण कोटि की शिष्ट व नाइस	विकृति/ज्योति/यमनोत्री शैल समूह	दार्जिलिंग
लघु हिमालय	विकृति क्षेपभ्रंश सलखला मध्यम रूपांतरण कोटि की शिष्ट व नाइस	विकृति/मेन सेंट्रल/ क्षेपभ्रंश -1 जुतोग/मुंसियारी/ भीफभटवाड़ी	मेन सेंट्रल/ क्षेप भ्रंश पारो/शिलौंग
	पंजाल क्षेप भ्रंश	जुतोग/मुंसियारी/मेन सेंट्रल क्षेप भ्रंश - 2	
	रामसु निम्न रूपांतरण कोटि की शिष्ट व नाइस	चैल/रामगढ़/स्यानाचट्टी/ बूढाकेदार	डालिंग

	पश्चिमी हिमालय	मध्य हिमालय	पूर्वी हिमालय
लघु हिमालय	डुलधार क्षेपभ्रंश	चैल/रामगढ़/मैन सैंट्रल क्षेप भ्रंश-3 बूढाकेदार क्षेप भ्रंश	
	अपस्वस्थानिक शैल समूह	जौनसार/बेरीनाग/ प्रतापनगर क्वार्ट्ज़ाइट/ जौनसार क्षेप भ्रंश/ बेरीनाग/प्रतापनगर क्षेपभ्रंश	अपस्वस्थानिक शैल समूह
		धारकोट नापे-रौथगढ़/कुथनौर देवबन/चांदपुर/फाइलाइट, चूनाश्म, स्लेट	
		श्रीनगर/धारकोट/धरासू/उत्तरी अल्मोड़ा क्षेप भ्रंश - सुबाथू शेल, शिमला स्लेट, क्रोल नापे - चूनाश्म शेल	
बाह्य हिमालय	मुरी क्षेप भ्रंश मुरी/शिवालिक	क्रोल/टौंस/मेन बाउन्ड्री क्षेप भ्रंश धर्मशाला/शिवालिक बालुकाश्म संगुटिकाश्म हिमालय फ्रंटल फाल्ट - सिंधु-गंगा अवसादी समतल	मेन बाउन्ड्री क्षेप भ्रंश शिवालिक शैल

हिमालय का यह वर्तमान परिदृश्य उसके उद्‌भव-काल तथा बाद में हुई विवर्तनिक प्रक्रियाओं से उजागर हुआ है । आज भी विवर्तनिक प्रक्रियाएं जारी हैं और इनका मूल है भारतीय पटल का तिब्बती पटल में धंसना । पिछले दशकों में आए भूकंपों में प्रमुख हैं - (1) 11 दिसंबर, 1967 को कोयना क्षेत्र महाराष्ट्र, (2) 7 जुलाई, 1980 को धारचूला, (3) 6 अगस्त 1988 को धारचूला, (4) 28 अगस्त, 1988 को बिहार-नेपाल सीमा, (5) 20 अक्तूबर, 1991 को उत्तरकाशी, तथा (6) 30 सितंबर, 1993 को लातूर-किलारी, महाराष्ट्र (इनमें भूकंप की तीव्रता 6.2 से 6.8 रिक्टर स्केल तक थी) का उद्‌गम केंद्र भ्रंश व विभंगों के पास ही था । ये भूंकप आज भी भारतीय पटल की क्रियाशीलता को प्रदर्शित करते हैं । हिमालय क्षेत्र में विद्यमान क्षेप भ्रंशों की क्रियाशीलता दक्षिण की ओर बढ़ रही है । वर्तमान समय में मुख्य सीमांत भ्रंश की क्रियाशीलता हिमालय अग्रक भ्रंश की ओर प्रवहमान है । हिमालयी संघट्ट क्षेत्र पर बढ़ रहे दबाव से प्रतिबल न केवल हिमालय अग्रक भ्रंश तक प्रतिबिंबित है बल्कि इसका प्रभाव भारतीय मध्य भाग में भी उजागर हो रहा है ।

प्रकति, विकिरण, रेडियोऐक्टिवता और परमाणु-खनिज अन्वेषण

डॉ० योगेश चंद्र शर्मा

पूर्वजों ने प्रकृति को ही नही वरन् संपूर्ण ब्रह्मांड को ही मानव का अनन्य अंग माना है । प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में लिखा है -

'द्यौर्वः पिता, पृथ्वी माता, सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।'

अर्थात् पर्यावरण को पिता, पृथ्वी को माता, चंद्रमा को भाई और अदिति को बहन का स्थान दिया गया है । जड़-चेतन युक्त पदार्थों का संयुक्त रूप ही पर्यावरण है । मानव तथा पृथ्वी के समस्त प्राणियों का जीवन संतुलित पर्यावरण पर निर्भर करता है । संतुलित पर्यावरण ही अतीत की अक्षत, अनछुई प्रकृति की याद दिलाता है । अनंत ब्रह्मांड में सौर परिवार में पृथ्वी ही एकमात्र ग्रह है जिस पर जीवन दृष्टिगोचर है ।,

प्रकृति ही जीवन है अर्थात् जीवों तथा वन का समावेश ही प्रकृति का पर्याय है । इस प्रकृति तंत्र के पांच अंग हैं - 1. वायु, 2. जल, 3. पृथ्वी, 4. वनस्पतियां तथा 5. प्राणिजात । ये सब अंग एक दूसरे से अंतःसंबंधित हैं और परस्पर संबंधित होते हुए भी अन्योन्याश्रित हैं । इन अंगों का सह-विकास और सह-अंगीकरण होता है । प्रकृति तंत्र की विभिन्न क्रियाएं संतुलित पारिस्थितिकी की दशा बनाए रखती हैं ।

प्रकृति में विकिरण सार्वभौम है । मिट्टी, पत्थर ईंट आदि पदार्थ तथा हमारे शरीर के अंदर उपस्थित अंग रेडियोऐक्टिव तत्वों और ब्रह्मांड किरणों से प्रभावित होते रहते हैं । विकिरण की औसतन मात्रा प्रतिवर्ष 2.4 मिलि सीवर्ट होती है । अस्तु, हर इकाई प्रति क्षण विकिरण की मात्रा प्राप्त करती है ।

विकिरण दो प्रकार के होते हैं - प्राकृतिक तथा मानव निर्मित । वैज्ञानिक अनुसंधानों के आंकड़ों से सांख्यिकी के आधार पर पता लगता है कि प्राकृतिक विकिरण 87 प्रतिशत होते हैं जिनमें कॉस्मिक विकिरण, रेडियोऐक्टिव तत्वों से निकले विकिरण, सौर ऊर्जा आदि से संबंधित विकिरण आदि शामिल हैं । अन्य 13 प्रतिशत विकिरण मानव निर्मित हैं जिनमें एक्स-किरणों, परमाणु-बम आदि से उत्सर्जित विकिरण हैं ।

प्राकृतिक विकिरण जीवन-चक्र नियमन के आधार पर प्रकृति में पारिस्थितिक संतुलन हेतु नियमित रूप से चलते रहते हैं । परंतु नाभिकीय ऊर्जा से संबंधित तथा एक्स-किरणों से जुड़े विकिरण, जो मानव निर्मित हैं, प्रकृति के जीवन-चक्र नियमन द्वारा संतुलित

नहीं हो पाते हैं । अतः मानव को स्वयं सभी सावधनियां बरतनी होती हैं ताकि प्रकृति की पारिस्थतिकी प्रभावित न हो । अल्पमात्रा विकिरण के प्रभाव के प्रसंग में, वर्तमान स्थिति में, निश्चित उत्तर विवादास्पद है । यह निश्चित तौर पर बताना संभव नहीं है कि अमुक व्यक्ति के कैंसर का कारण प्राकृतिक विकिरण है या मानव निर्मित विकिरण है । परंतु सांख्यिकीय विवेचन के आधार पर कुछ अनुमान किए गए हैं । कम से कम मात्रा से भी, मात्रा के अनुसार, कैंसर या आनुवंशिक रोग पैदा होने की संभावना होती है । नोबेल पुरस्कृत रोसालिन यालो का मत है कि अल्प मात्रा के विकिरण द्वारा कोई प्रभाव नहीं होता किंतु कुछ अल्पसंख्यक वैज्ञानिकों की राय है कि वास्तविक अल्प मात्रा के प्रभाव रैखिक सीमा प्रतिरूप के माप से अधिक हो सकते हैं । इन अल्पसंख्यक वैज्ञानिकों में नोबेल पुरस्कृत वैज्ञानिक जॉर्ज वाल्ड भी शामिल हैं । विभिन्न सर्वेक्षणों के परिणामों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन करें तो पता चलता है कि रैखिक सीमा प्रतिरूप ठीक और उपयुक्त है ।

जानवरों पर प्रयोगों के आधार पर और रेडियोजैविकी सिद्धांत से हमें पता चलता है कि अल्पमात्रा विकिरण से हानि होती है तो जीवधारी अपने शरीर की उस क्षति को ठीक कर सकते हैं और अपना उद्धार कर सकते हैं । सामान्यतः अल्पमात्रा विकिरण तथा अल्प मात्रा दर का प्रभाव बहुत कम होता है ।

अधिक स्तर के प्राकृतिक विकिरण वाले प्रदेशों मे कैंसर की संभावना थोड़ी कम है । अस्तु, कैंसर तथा विकिरण स्तर के बीच के विरोधानुपात का पता अमेरिका, चीन तथा भारत के सर्वेक्षणों से चलता है । भारत में कुछ शहरों में कैंसर के संख्यात्मक विश्लेषणों द्वारा इस प्रकार का विरोधानुपात देखा गया है । इसी प्रकार का विरोधानुपात फेफड़ों के कैंसर और रेडॉन गैस के स्तर के बीच पाया गया है जैसा कि चीन, अमेरिका फिनलैंड तथा स्वीडन में भी पाया जाता है ।

प्राकृतिक गर्म जल स्रोतों में स्नान करने वाले लाखों लोग विश्वास करते हैं कि यह स्नान अनेक बीमारियों को ठीक कर देता है तथा स्वास्थवर्धक होता है । इन सभी स्रोतों में रेडॉन की बहुत अधिक मात्रा होती है ।

केरल प्रदेश में मोनेज़ाइट के पूरे विश्व में सबसे विशाल भंडार हैं । मोनेज़ाइट रेत के विशाल भंडार के कारण इस क्षेत्र में प्राकृतिक विकिरण स्तर लगभग प्रति वर्ष 5 मिली सीवर्ट है, जो भारत के विकिरण-स्तर की औसत मात्रा से लगभग तीन गुना है । सर्वेक्षण से पता चलता है कि यहाँ पर एक लाख लोग पीढ़ियों से रहते आ रहे हैं परंतु इन पर स्वास्थ्य तथा आनुवंशिक गुणों की दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं पड़ा है । अस्तु, अल्पमात्रा का विकिरण कोशिकाओं की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है और विशेषकर कोशिका के जीर्णोद्धार, प्रतिरक्षी और हॉरमोन संबंधी अनुक्रियाओं को बढ़ाता है । यह कोशिका के गुणन में भी

वृद्धि करता है । इस विकिरण के प्रभावों की तुलना प्रतिरक्षी टीके से की जा सकती है जिससे बीमारियों का सामना करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है । इसी प्रकार विकिरण द्वारा एक विशेष प्रतिरक्षी शक्ति प्राप्त होती है ।

प्रकृति में रेडियोऐक्टिव तत्वों से भी विकिरण होता है जैसा कि ऊपर वर्णित मोनेज़ाइट से भी होता है । इसी प्रकार अन्य रेडियोऐक्टिव तत्वों से भी विकिरण होता है । वस्तुतः प्रकृति में उपलब्ध यूरेनियम ही क्या समस्त रेडियोऐक्टिव तत्व एक विशेष गति से दूसरें तत्वों में विघटित और विखंडित होते हैं । अपने ही द्वारा जनित दूसरे तत्वों में विघटित होते समय भी इनसे विकिरण होता है । विघटन की यह क्रिया तीन प्रकार के विकिरणों को पैदा करती है । ये तीन प्रकार के विकिरण अल्फा, बीटा तथा गामा विकिरणों के नाम से जाने जाते हैं । प्रकृति में सब रेडियोऐक्टिव तत्व विघटन के दौरान उपरोक्त तीन विकिरणों में से कोई न कोई एक विकिरण अवश्य पैदा करते हैं ।

प्रत्येक रेडियोऐक्टिव तत्व या उसके द्वारा जनित दूसरे विघटित तत्व निश्चित अर्धआयु (हॉफ-लाइफ) से विघटित होते-होते अंततः स्थायी लेड (सीसा) के समस्थानिक में परवर्तित हो जाते हैं । U238, U235, Th232 अंत में विघटित होते-होते क्रमशः Pb206, Pb207 एवं Pb208 स्थायी समस्थानिक (आइसोटोप) बनाते हैं । इन U238, U235, तथा Th232 की शृंखला का विवरण, इनके द्वारा जनित विभिन्न अन्य विघटित तत्व, उनकी अर्ध-आयु तथा विघटन के समय निकलने वाले विकिरणों का विवरण तालिका 1, 2 तथा 3 में दिया गया है ।

रेडियोऐक्टिव तत्वों में से निकलने वाले गामा विकिरणों के अद्वितीय गुण के आधार पर परमाणु-खनिजों को खोजना संभव हो पाया है । गाइगर मूलर काउन्टर अथवा आज के समय में सिन्टेलोमीटर इन गामा विकिरणों को आसानी से संकलित कर लेता है । जितनी अधिक मात्रा में रेडियोऐक्टिव तत्व के भंडार होंगे उतने ही अधिक आनुपातिक रूप से यह तंत्र अधिक गणना करके यंत्र में लगे मापक में दर्शा देता है ।

अन्य दो विकिरण अल्फा तथा बीटा भी अपने विशिष्ट गुणों के आधार पर बीटामीटर या अल्फामीटर द्वारा संकलित किए जा सकते हैं । इन विकिरणों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के परमाणु-खनिजों की खोज और विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । बीटा, गामा अनुपात के आधार पर ही यह पता लगाना संभव हो जाता है कि क्या रेडियोऐक्टिव तत्व जनक सुलभ है या अनुजात रूप में प्राप्य है ।

अल्फा विकिरणों का तथा रेडॉन के निकास तथा मात्रा का विश्लेषण रेडॉन मापक यंत्र अथवा सेलुलोस नाइट्रेट (CN)फिल्म के माध्यम से घन अवस्था नाभिकीय पथ संसूचक (सॉलिड स्टेट न्यूक्लियर ट्रैक डिटेक्टर) द्वारा अंकित पथ की सघनता के आधार पर किया जाता है ।

यूरेनियम चतु:संयोजक (U·4) अवस्था में निश्चल है, परंतु यूरेनियम षट् संयोजक (U·6) यूरेनियम की ऑक्सीकृत अवस्था में चलायमान है और विशिष्ट Eh एवं pH परिस्थितियों में भूगर्भी जल में विलेय है । यूरेनियम के इस गुण के कारण यह भी यूरेनियम अन्वेषण में सहायक होता है । इसी गुण के आधार पर लक्ष्य क्षेत्र से झरनों से, छोटे-छोटे जल के चश्मों से, तथा प्राथमिक/द्वितीयक कोटि के नदी नालों से भी जल एकत्रित किया जाता है । जल के इन नमूनों में यूरेनियम घुली हुई अवस्था में मिलता है । इन नमूनों में यूरेनियम की सांद्रता के आधार पर लक्ष्य क्षेत्र को अपेक्षाकृत काफी छोटे लक्ष्य क्षेत्र के रूप में विस्तृत अन्वेषण के लिए चुना जाता है ।

पृथ्वी के चुंबकत्व, विद्युत्, घनत्व के गुण तथा भूगर्भी विभिन्न शैल समूह में निहित इन गुणों के आधारं पर भूभौतिक सर्वेक्षण को आधार मानकर पृथ्वी की संरचनाओं तथा लोह से संबंधित यूरेनियम आदि की खोज की जाती है ।

वस्तुत: यूरेनियम बहुत ही आरामतलब है । जहाँ भी अधिक दबाव पड़ा या अधिक गर्मी की अवस्था मिली अथवा यदि यूरेनियम ऑक्सीकृत हो गया तो वह अपनी स्वस्थानीय परिस्थितियों से आवास परिवर्तन कर लेता है तथा परिवर्तक परिसर में निक्षेपित हो जाता है । विवर्तन क्रियाओं के दौरान ताप व दबाव दोनों ही की उत्पत्ति होती है । इसलिए विवर्तनिकी से संबंधित क्षेत्रों के आसपास भी यूरेनियम खनिजीकरण की संभावना रहती है ।

कई बार एक से अधिक सर्वेक्षणों की संयुक्त प्रणाली एक साथ अपनाई जाती है और प्रत्येक सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण का समावेश करके खनिज भंडार खोजे जाते हैं ।

उपरोक्त गुणों के आधार पर तथा सर्वेक्षण संसाधनों के द्वारा विश्व भर में परमाणु-खनिजों की खोज करके उच्च, मध्यम तथा निम्न कोटि के भंडार - आग्नेय, परिवर्तित तथा अवसादी शैलों में विस्तृत भंडार का पता लगाया गया है ।

तालिका - 1 यूरेनियम 238 शृंखला

उत्सर्जित विकिरण			रेडियोऐक्टिव तत्व	अर्ध-आयु		
अल्फा	बीटा	गामा		मिनट	दिन	वर्ष
(α)	(β)	(γ)				
✓	×	✓	यूरेनियम 238	–	–	4.5 अरब
×	✓	✓	थोरियम 234	–	24.1	–
×	✓	✓	प्रोटेक्टीनियम 234	1.2	–	–
✓	×	✓	यूरेनियम 234	–	–	247,000
✓	×	✓	थोरियम 230	–	–	80,000
✓	×	✓	रेडियम 226	–	–	1,622
✓	×	×	रेडॉन 222	–	3.8	–
✓	✓	×	पोलोनियम 218	3.0	–	–
×	✓	✓	लेड 214	26.8	–	–
✓	✓	✓	बिस्मथ 214	19.7	–	–
✓	×	×	पोलोनियम 214	0.00016 सेकंड		
×	✓	✓	लेड 210	–	–	22
✓	✓	×	बिस्मथ 210	–	5.0	–
✓	×	✓	पोलोनियम 210	–	138.3	–
×	×	×	लेड 210		स्थायी	

तालिका - 2 यूरेनियम 235 शृंखला

समस्थानिक	विकिरण	अर्ध-आयु
यूरेनियम U235	α	7.13×10^{8} वर्ष
थेरियम Th231	β	25.6 घंटे
पैलेडियम Pa231	α	3.24×10^{4} वर्ष
एक्टीनियम Ac227	β	21.6 वर्ष
थोरियम Th227	α	18.2 दिन
रेडियम Ra223	α	11.7 दिन
रेडॉन Ra219	α	3.92 सेकंड
पोलोनियम Po215	α	1.83×10^{-3} सेकंड
लेड Pb211	β	36.1 मि.
बिस्मथ Bi211	α	2.16 मि.
थैलियम Tl207	β	4.79 से.
लेड Pb207	स्थायी	xx

तालिका - 3 थोरियम 232 शृंखला

समस्थानिक	विकिरण	अर्ध-आयु
थोरियम Th232	α	1.39×10^{10} वर्ष
रेडियम Ra228	β	6.7 वर्ष
एक्टीनियम Ac228	β	6.13 घंटे
थोरियम Th228	α	1.91 वर्ष
रेडियम Ra224	α	1.64 दिन
रेडॉन Ra220	α	10.6 घंटे
पोलोनियम Po216	α	15.5 सेकंड
लेड Pb212	β	0.158 सेकंड
बिस्मथ Bi212	β	60.5 मिनट
पोलोनियम Po212	α	3.04 सेकंड 10^{-7}
लेड Pb208	स्थायी	xx

°°°°°

गढ़वाल हिमालय के गैरसैण क्षेत्र, जिला चमोली (उत्तर प्रदेश) की भौगर्भिक एवं विवर्तनिक स्थितियोंका अध्ययन

- श्री विजय कुमार गैरोला,
श्री वैभव श्रीवास्तव,
श्री राम अवतार सिंह, एवं
श्री दीपक हटवाल

सार-संक्षेप

इस लेख में उत्तर प्रदेश के चमोली जिले में स्थित गैरसैण क्षेत्र के भूविज्ञान को प्रस्तुत किया गया है । इस क्षेत्र में गैरसैण क्षेप (उत्तरी अल्मोड़ा क्षेप के समतुल्य) के अनुदिश गढ़वाल संघ के अकायांतरित अवसादी शैलों के ऊपर दूदातोली अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के कायांतरित शैल विवर्तनिक रूप से उपरिशायी हैं । गढ़वाल संघ का प्रतिनिधित्व स्फटिकीय फाइलाइट, लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट एवं चूना प्रस्तर द्वारा होता है । दूदातोली अल्मोड़ा संघ में फाइलाइट एवं क्वार्ट्ज़ाइट द्वारा निर्मित एक गौण क्षेप चादर (minor thrust sheet) शिष्ट एवं नाइस के ऊपर विवर्तनिक रूप से उपरिशायी है । मध्याकार तथा स्थूलाकार संरचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिमालयी पर्वतन के दौरान इस क्षेत्र में चार प्रावस्थाओं (डी-1 से डी-4) का विरूपण हुआ । डी-1 एवं डी-2 के दौरान शैलों में वलन तथा पुरः क्रमित प्रादेशिक कायांतरण हुआ । क्रिस्टलाइनों का क्षेपण तथा तत्पश्चात् प्रादेशिक अभिनतिरूप संरचना का विकास डी-3 प्रावस्था की विशेषता है जबकि डी-4 प्रावस्था में भंगुर विरूपण हुआ, जो इस क्षेत्र में भ्रंशनों के लिए उत्तरदायी है ।

प्रस्तावना

गढ़वाल हिमालय के चमोली जिले में स्थित गैरसेण क्षेत्र (अं.30°00', ढ.से. 30°05', उ. तथा दे. 79°15' पू.से 79°20' पू.) के शैल दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों तथा गढ़वाल संघ (Group) से संबंधित हैं । मिडिलमिस (1887) ने दूदातोली पर्वत श्रेणी क्रिस्टलीय शैलों को 'शिस्टोज़ सीरीज़' एवं 'नाइसोज़ ग्रेनाइर्टो' में विभाजित किया है । किंतु इन क्रिस्टलीय शैलों का क्षेप तल के अनुदिश अकायांतरित अवसादी शैलों के ऊपर होने की स्थिति को सर्वप्रथम ऑडेन (1937) ने पहचाना । हाइम एवं गान्सर (1939) ने इन

क्रिस्टलीय शैलों की व्याख्या 'दूदातोली-अल्मोड़ा नापे' के रूप में की, जो उत्तर तथा दक्षिण में क्रमशः उत्तरी अल्मोड़ा क्षेप एवं दक्षिणी अल्मोड़ा क्षेप द्वारा सीमांकित है। मेहदी एवं अन्य (1972) ने दूदातोली संघ में कायांतरित शैलों का समावेश किया, जिसे बाद में कुमार एवं अन्य (1974) द्वारा आरोही क्रम में तीन शैल समूहों (formation); पौड़ी फाइलाइट (Pauri Phyllite), मैठाणा क्वार्ट्ज़ाइट एवं दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों में विभाजित किया गया। रविशंकर एवं अन्य (1989, 1995) ने दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के शैलों को मध्य प्रोटीरोज़ोइक आयु का माना है।

दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के उत्तर में स्थित क्वार्ट्ज़ाइट, चूना प्रस्तर एवं कायांतरित ज्वालामुखीय शैलों का वर्णन ऑडेन (1938) ने बाराहाट सीरीज़ के नाम से किया। तत्पश्चात् उन्होंने (1949) इसका पुनर्नामांकन 'गढ़वाल सीरीज़' किया। गढ़वाल के पश्चिमी भाग में किए गए अध्ययन के आधार पर जैन (1971) ने इन शैलों को 'गढ़वाल संघ' के नाम से संबोधित किया, जिसे बाद के सभी भूवैज्ञानिकों (मेहदी एवं अन्य, 1972; रैना, 1972, कुमार एवं अग्रवाल 1975 इत्यादि) द्वारा अनुसरित किया गया। हाल के वर्षों में ऊपरी ताल शैल-समूह (Upper Tal Formation) की तली में मिले कैम्ब्रियन कल्प के जीवाश्मों ने यह संकेत दिया है कि इस शैल समूह के अधःशायी शैल कैम्ब्रियनपूर्व अथवा प्रीकैम्ब्रियन आयु के हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि गढ़वाल संघ का सहसंबंध क्रोल-नापे के नागथाट-ताल अनुक्रम से किया गया है (ऑडेन, 1949) यह कहा जा सकता है कि गढ़वाल संघ की आयु भी प्रीकैम्ब्रियन है। रविशंकर एवं अन्य (1989, 1995) ने गढ़वाल संघ के शैलों को उत्तर प्रोटीरोज़ोइक आयु का माना है।

क्षेत्र भूविज्ञान

अन्य क्षेत्रों में दृष्ट (जैन, 1971; मेहदी एवं अन्य, 1972; कुमार एवं अन्य 1974; कुमार एवं अग्रवाल, 1975) विवर्तनिक अवस्थिति, कायांतरण कोटि एवं आरिमक एककों (lithological units) की साम्यता के आधार पर प्रस्तुत क्षेत्र के शैलों को दो प्रमुख विवर्तनिक इकाइयों : उपरिशायी 'दूदातोली संघ' एवं अधःशायी 'गढ़वाल संघ', में वर्गीकृत किया गया है। इन दोनों विवर्तनिक इकाइयों को पृथक् करने वाले क्षेप तल को 'मुख्य गैरसैण क्षेप' कहा गया है (हटवाल, 1988), जो हाइम एवं गान्सर (1939) के 'उत्तरी अल्मोड़ा क्षेप' के समतुल्य है।

दूदातोली अल्मोड़ा क्रिस्टलाइन

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में मेहदी एवं अन्य (1972) के दूदातोली संघ का प्रतिनिधित्व दूदातोली अल्मोड़ा क्रिस्टलाइन शैल समूह द्वारा होता है। यह शैलसमूह गढ़वाल संघ के शैलों से मुख्य गैरसैण द्वारा पृथक्कृत है। ये क्रिस्टलीय चट्टानें प्रस्तुत

अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी-पूर्वी भाग को छोड़कर लगभग संपूर्ण क्षेत्र में वितरित हैं । इस शैल समूह के मुख्य शैल शिस्ट, नाइस, फाइलाइट तथा मैसिव सफेद क्वार्ट्ज़ाइट आदि हैं । शिस्ट एवं नाइस निचले तथा मुख्य क्षेप चादर का निर्माण करते हैं जबकि फाइलाइट तथा सफेद क्वार्ट्ज़ाइट मुख्य क्रिस्टलाइन नापे के अंतर्गत ही ऊपरी गैरसैण क्षेप के अनुदिश एक गौण क्षेप चादर का निर्माण करते हैं । इस अध्ययन क्षेत्र में पूर्वी उच्च श्रेणियों एवं कगारों, जहाँ सफेद क्वार्ट्ज़ाइट अनावृत है, को छोड़कर शिस्ट सर्वाधिक क्षेत्र में वितरित है । शिस्ट, नाइसों की अपेक्षा ऊँचे उच्चावच वाले स्थानों पर मिलता है जबकि नाइस मुख्यत: घाटियों अथवा नाला-कटानों में अनावृत है ।

शिस्ट (schist)

शिस्ट के खनिजात्मक संघटन में पर्याप्त विविधता है । अतएव इस शैल का रंग भी रजताभ श्वेत से गुलाबी धूसर के बीच बदलता है, जो बायोटाइट, गुलाबी धूसर मस्कोवाइट अथवा क्लोराइट के साथ-साथ स्फटिक फेल्सपारी खनिजों की मात्रा पर निर्भर करता है । इनके अतिरिक्त गार्नेट, कायनाइट, एंडालुसाइट एवं लोहऑक्साइड इत्यादि को भी देखा गया है । कभी-कभी शिष्ट में पटियामय (flaggy) क्वार्ट्ज़ाइट की 50 से.मी. मोटाई तक की पट्टियां भी पायी जाती हैं जो शिष्टाभता के समांतर हैं । गार्नेट की मात्रा एवं आकार (3 से.मी. व्यास तक) में वृद्धि अध्ययन-क्षेत्र में पश्चिम की ओर होती जाती है । गहरे धूसरित-काले बायोटाइट बाहुल्य वाले शिष्ट में गार्नेट का सर्वथा अभाव है । भूरे कायनाइटधारी शिष्ट में कायनाइट छोटे पत्रकों (flakes) के रूप में शिष्टाभता तल के अनुदिश मिलता है तथा लंबे क्षुरपत्रकों (blades) के रूप में अनुस्तरी स्फटिक शिराओं में मिलता है । कायनाइट शिस्ट को नाइस के बीच में पतली पट्टियों के रूप में बौखनारा के पश्चिम, धुनारघाट के पश्चिम एवं महारगांव के उत्तर में देखा गया है । धुनारघाट तथा इसके दक्षिण-पूर्व एवं दक्षिण-पश्चिमी भागों में शिस्ट एवं नाइस के संपर्क स्थलों पर एंडालुसाइट विकसित हुआ है । शिस्ट की नति के परिमाण तथा दिशा में भारी अंतर दिखाई देता है ।

नाइस

गैरसैण क्षेत्र में नाइस तीन मुख्य प्रकारों - स्थूल-कणिक पोर्फिरोब्लास्टी चाक्षुष नाइस, मध्यम-से स्थूल-कणिक नाइस एवं माइलोनाइटिक नाइस के रूप में दृष्टिगोचर होता है । चाक्षुष नाइस बौखनारा ग्राम के पूर्व में चापाकार दृश्यांश के रूप में देखा गया है जो दूदातोली अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के क्वार्ट्ज़ाइट द्वारा उपरिशायित है । इन शैलों में स्फटिक एवं फेल्सपार के पोर्फिरोब्लास्ट धूसर से धूसरित भूरे रंगों वाले अभ्रकों द्वारा लिपटे हुए हैं । अभ्रक पत्रकों का स्फटिक अथवा फेल्सपार के पोर्फिरोब्लास्टों के साथ मुड़ा होना, उनके समविवर्तनिक (syntectonic) अथवा विवर्तनिकोत्तर (posttectonic) विकास की ओर इंगित करता है । शल्कित नाइस दृढ़ एवं संहत है जिसका रंग खनिजात्मक संघटन के

आधार पर धूमिल श्वेत से गहरे धूसर के बीच है । नाइस एवं शिस्ट के संपर्क स्थलों के निकट एंडालुसाइट के लैथ पाए गए हैं । शल्कित नाइस को सरेग्वार के आसपास देखा गया है जिसका विस्तार महारगांव के दक्षिणी-पश्चिमी भाग तक है । शल्कित नाइसों का एक अन्य दृश्यांश मध्यवर्ती भागों में भी पाया गया है, जो साल्याण के पूर्व से दक्षिण की ओर विस्तृत है । यह दृश्यांश आगे धुनारघाट होते हुए दक्षिण-पश्चिम की ओर बुखाली, एन्दरपा एवं ऐखोला के पश्चिम में भी दृष्टिगोचर होता है जो गौल ग्राम के पश्चिम तक फैला हुआ है । क्षेपतल के अनुदिश माइलोनाइटीकरण के कारण नाइसों की प्रकृति प्ररेखीय हो जाती है । इनमें दीर्घीकृत पोर्फिरोब्लास्ट क्लोराइट-पत्रकों से घिरे हुए हैं । सामान्यतः नाइस शिस्ट के साथ अंतरासंस्तरित है परंतु कहीं-कहीं इन शैलों के बीच क्रमिक रूपांतरण भी दिखाई पड़ता है । नाइस दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों में ऊपरी क्षेप चादर बनाने वाले क्वार्ट्ज़ाइट एवं फाइलाइट के साथ क्षेपित संपर्क में हैं (हटवाल, 1988) । नाइस में नति की दिशा एवं परिमाण परिवर्तनशील हैं ।

फाइलाइट

तनु शल्कित, सूक्ष्म कणिक, धूसर से धूसरित हरा फाइलाइट, मैसिव सफेद क्वार्ट्ज़ाइट के साथ मिलकर दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों में ऊपरी क्षेप चादर का निर्माण करता है । इस शैल का दृश्यांश गैरसैण ग्राम के आसपास देखा जा सकता है, जहाँ से उसका विस्तार दक्षिण की ओर पैन्सर के पूर्वी भाग तक होता है ।

क्वार्ट्ज़ाइट

सूक्ष्म कणिक सफेद मैसिव क्वार्ट्ज़ाइट के प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों की स्तरिकी में सर्वोच्च स्थान है । इस शैल का दृश्यांश मानचित्र क्षेत्र के पूर्वी भाग में उच्चतम पर्वत श्रेणियों पर उपस्थित है यद्यपि नाइस पर सीधे अधिशायी इस शैल का एक छोटा दृश्यांश अगरचट्टी के पूर्व में भी स्थित है । सामान्यतः क्वार्ट्ज़ाइट शैल फाइलाइट पर उपरिशायी है और प्रस्तुत क्षेत्र के विवर्तनिक अनुक्रम में सबसे ऊपर है (तालिका-1) ।

गढ़वाल संघ

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में अकायांतरित प्रकृति वाले गढ़वाल संघ के शैल दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के नीचे स्थित हैं तथा मुख्य गैरसैण क्षेप इन दोनों विवर्तनिक इकाइयों को पृथक् करता है । इस संघ के शैल अध्ययन क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिमी भाग में हैं जहाँ पर इनका प्रतिनिधित्व संस्तरण के आरोही क्रम में तीन मुख्य शैल प्रकारों : स्फटिकीय- फाइलाइट, लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट एवं चूना-प्रस्तर द्वारा होता है ।

स्फटिकीय फाइलाइट

धूसर से गुलाबी-धूसर, सूक्ष्म-से मध्यम-कणिक, अल्प-शल्कित स्फटिकीय फाइलाइट प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में गढ़वाल संघ की निम्नतम स्तरिक इकाई है (तालिका-1) । इस शैल में अनेक स्फटिक शिराएँ पाई गई हैं । इन शैलों का दृश्यांश सैन्जी के आसपास तथा फारसौण के दक्षिण में देखा जा सकता है । रामगंगा नदी के पश्चिम में स्फटिकीय फाइलाइट के दृश्यांश हरसारी एवं रामड़ा ग्रामों में देखे जा सकते हैं । पश्चिम में और आगे बढ़ने पर इन शैलों के ऊपर दूदातोली अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के शैल मिलते हैं जो गैरसैण क्षेप के अनुदिश गढ़वाल संघ के ऊपर अवस्थित हैं । फारसौण के दक्षिण में स्फटिकीय फाइलाइट का लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट के साथ भ्रंशित संपर्क दिखाई पड़ता है । सैन्जी के पूर्व में यह शैल, प्रस्तुत क्षेत्र में, गढ़वाल संघ की उच्चतम स्तरिक इकाई चूना पत्थर के साथ सीधे संपर्क में है । यदा कदा स्फटिकीय फाइलाइट में गुटिका-संस्तर (pebble horizon) भी दिखाई पड़ता है । 11 सेमी. से 20 सेमी. व्यास तक आकार वाली इन गुटिकाओं की संख्या परिवर्तनीय है । फारसौण ग्राम में ऐसे ही एक दृश्यांश में भ्रंश के अनुदिश विरूपित गुटिकाएं दृष्टिगोचर हुई हैं ।

(गैरोला एवं हटवाल, 1991) । स्फटिकीय फाइलाइट का सामान्य नतिलंब उ.प-द.पू. है तथा नति 15^0 से 50^0 के मध्य उ.पू. अथवा द.प. की ओर है ।

लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट

गहरे धूसर से काले रंगों वाला, मध्यम से सूक्ष्म-कणिक लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट, स्फटिकीय फाइलाइट पर उपरिशायी है तथा यह फारसौण एवं अगरचट्टी ग्रामों में है । यादृच्छिकतः अनुस्थापित पतली स्फटिक-शिराएँ इन कठोर, संहत मैसिव लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट में यत्र तत्र पाई जाती हैं । फारसौण में लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट का त्रिभुजाकार दृश्यांश तीन ओर से सीमांकित है । अगरचट्टी के निकट यह शैल दक्षिण की ओर भ्रंशित संपर्क में चूना प्रस्तर के साथ तथा पश्चिम की ओर स्फटिकीय फाइलाइट के साथ पाया जाता है । पूर्व तथा उत्तर में यह क्रमशः चूना-पत्थर तथा स्फटिकीय फाइलाइट के साथ सामान्य संपर्क में है । लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट का नतिलंब, उ.प. - द.पू. से पूर्व-पश्चिम तत्पश्चात् उ.पू. - द.प. की ओर परिवर्तित होता है, किंतु नति के परिमाण एवं दिशा में पर्याप्त अंतर परिलक्षित होता है ।

चूना-प्रस्तर

नीलाभ धूसर, सूक्ष्म-कणिक, कठोर एवं संहत चूना प्रस्तर प्रस्तुत क्षेत्र में गढ़वाल संघ की उच्चतम स्तरिक इकाई है (तालिका-1) । इस शैल में संस्तरण तल का निर्धारण

वर्ण-पट्टियों द्वारा होता है । चूना-प्रस्तर में कभी-कभी कैल्सियमी मैट्रिक्स में जड़ित क्वार्ट्ज़ाइट की गुटिकाएँ भी मिलती हैं । कहीं-कहीं चूना प्रस्तर सिलिकामय भी हो जाता है । इस शैल का दृश्यांश अगरचट्टी एवं फारसौण ग्रामों के बीच देखा जा सकता है जहाँ यह उत्तर एवं दक्षिण में क्रमशः उ.पू. - द.प. एवं प.उ.प.-पू.द.पू. नतिलंब वाले भ्रंशों द्वारा सीमांकित है । भ्रंश के अनुदिश श्लक्ष्ण पार्श्वों (slickensides) का भी विकास हुआ है । अगरचट्टी एवं सैंजी के पूर्व में चूना प्रस्तर की पहाड़ी कार्स्ट स्थलाकृति दर्शाती है । पैंसर ग्राम के दक्षिण में चूना पत्थर दूदातोली अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के सफेद क्वार्ट्ज़ाइट के साथ उ.पू. - द.प. नतिलंब वाले भ्रंश के अनुदिश संपर्क में है । इस शैल का सामान्य नतिलंब उ.उ.पू. - द.द.प. तथा नति 20^0 से 30^0 के बीच पश्चिमी अथवा पूर्वी दिशा की ओर है ।

तालिका-1

गैरसैण क्षेत्र, जिला चमोली (उत्तर प्रदेश) का आश्मविवर्तनिक (lithotectonic) अनुक्रम

	क्वार्ट्ज़ाइट	
दूदातोली संघ	फाइलाइट	
(दूदातोली-अल्मोड़ा	----ऊपरी गैरसैण क्षेप----	मध्य
क्रिस्टलाइन)	नाइस	प्रोटीरोज़ोइक
	शिष्ट	
----------	गैरसैण क्षेप ----------	
	चूना प्रस्तर	
गढ़वाल संघ	लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट	उत्तर
	स्फटिकीय फाइलाइट	प्रोटीरोज़ोइक

संरचना

गैरसैण क्षेत्र दूदातोली अभिनतिरूप (synform) की उत्तरी भुजा पर स्थित है जहाँ परास्वस्थानिक गढ़वाल संघ एवं उसके ऊपर विवर्तनिक रूप से उपरिशायी दूदातोली-अल्मोड़ा नापे की चट्टानें पाई जाती हैं । इस क्षेत्र में भ्रंशन, क्षेपण एवं स्थूलाकार पुनर्वलन इत्यादि की प्रक्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं जिसे शैल इकाइयों के दृश्यांश प्रतिरूप के आधार पर ज्ञात किया जाता है । प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र के शैल अध्यारोपित मध्याकार संरचनाएँ

दर्शाते हैं (हटवाल, 1988), जो इस बात का स्पष्ट संकेत हैं कि इस क्षेत्र में बहुप्रावस्थी विरूपण हुआ है । हिमालय के पवर्तन को पाँच प्रावस्थाओं में घटित माना गया है (कृष्णन, 1960) । लेसर हिमालय में विरूपण को विभिन्न प्रावस्थाओं को अनेक क्षेत्रों में पहचाना गया है (गैरोला, 1966, 1990; गैरोला एवं जोशी, 1978; गैरोला एवं सक्सेना, 1982; सकलानी 1971, 1978, 1980; कुमार एवं अन्य, 1974; झिंगरन एवं अन्य 1976; फुक्स एवं सिन्हा, 1978; श्वान, 1980; श्रीवास्तव एवं गैरोला, 1990; सिंह एवं गैरोला, 1992; थॉमस, 1993 आदि) । अध्यारोपित मध्याकार संरचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गैरसैण क्षेत्र की चट्टानों में कम से कम चार प्रावस्थाओं में विरूपण हुआ है । इस क्षेत्र में विभिन्न विवर्तनिक विरूपण प्रावस्थाओं में विकसित हुई संरचनाओं का विवरण निम्नवत् है ।

विरूपण की प्रथम प्रावस्था डी-1

उत्पत्ति की दृष्टि से एक समान, शिस्ट की शिस्टाभता एवं नाइस की नाइसाभता प्रस्तुत क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण द्वितीयक उत्पत्ति की वेधी तलीय संरचनाएँ हैं । रामज़े (1967) के अनुसार विकृति-दीर्घवृत्तज के एक्स-वाई तल के समांतर विकसित होने वाली शिस्टाभता प्रथम विरूपण प्रावस्था में विकसित होती है तथा पश्चगामी विरूपणों के कारण उत्पन्न विकृति विकृति-सर्पण विदलनों के निर्माण में समंजित हो जाती है । अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत क्षेत्र के क्रिस्टलीय शैलों में विकसित शिष्टाभता अथवा नाइसाभता डी-1 विरूपण प्रावस्था में विकसित हुई । इस लेख में द्वितीयक उत्पत्ति की तलीय संरचनाओं (यथा, शिष्टाभता अथवा नाइसाभता) को, जिनके विकास का संबंध डी-1 विरूपण प्रावस्था से माना गया है, एस-2 से संबोधित किया गया है ताकि, इसमें तथा शैल की प्राथमिक तलीय संरचना (संस्तरण तल एस-1) के बीच अंतर सुस्पष्ट रहे ।

गैरसैण क्षेत्र के क्रिस्टलीय शैलों में पत्रकी खनिजों, यथा क्लोराइट, बायोटाइट एवं मस्कोवाइट तथा दीर्घीकृत स्फटिक तथा फेल्सपार खनिजों का दिशा विशेष में अभिविन्यास शिस्टाभता का निर्माण करता है । एस-2 सतहों पर अभ्रक-खनिजों के समांतर होने से खनिज संरेखता का विकास भी हुआ है । चूँकि यही अभ्रक खनिज एस-2 सतह का भी निर्माण करते हैं, अतएव यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभ्रक खनिजों द्वारा परिभाषित यह खनिज-संरेखता (एल-1) भी डी-1 विरूपण के दौरान विकसित हुई । शिष्टाभता के अनुदिश स्फटिक-बहुल परतें संकोच-एवं-स्फीत संरचना दर्शाती हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि डी-1 विरूपण प्रावस्था के दौरान स्फटिक-शिराओं तथा स्फटिक-फेल्सपारी परतों में विकृति-दीर्घवृत्तज के एक्स-अक्ष के अनुदिश खिंचावी दीर्घीकरण हुआ ।

क्वार्ट्ज़ाइट के अंतर्गत ही अंतरार्संस्तरित फाइलाइट में शिस्टाभता (एस-2) का विकास संस्तरण (एस-1), जिसे क्वार्ट्ज़ाइट-फाइलाइट संपर्क के आधार पर पहचाना गया है, के समांतर हुआ है । क्वार्ट्ज़ाइट एवं शिस्ट शैलों में समनतिक वलनों तथा एस-1 एवं एस-2 का समांतर होना, इस बात का सूचक है कि संकृष्ट-समनतिक वलन तथा एस-2 समविवर्तनिक हैं, जहाँ एस-2 का विकास समनतिक वलनों (एफ-1) के अक्षीय तल के समांतर हुआ है । इस बात का उल्लेख करना समीचीन होगा कि प्रस्तुत क्षेत्र में स्थूलाकार समनतिक वलन नहीं देखे गए हैं । इसके अतिरिक्त डी-1 विरूपण प्रथम पुरःक्रमित प्रादेशिक कायांतरणके लिए भी उत्तरदायी है जिसका भान शैल में खनिजों के गठनात्मक संबंधों द्वारा होता है (हटवाल, 1988) । प्रस्तुत क्षेत्र में कायांतरी कोटि कायनाइट ज़ोन तक है ।

विरूपण की द्वितीय प्रावस्था डी-2

एफ-1 वलनों के विलोपन के अतिरिक्त डी-2 प्रावस्था का विरूपण शिष्टाभता के वलन के लिए भी उत्तरदायी है । एफ-2 वलनों में कहीं-कहीं विदलनों (एस-3) का विकास हुआ है, जो अक्षीय तल के समांतर हैं अथवा वलन के क्रोड की ओर केंद्रित होते हैं । डी-2 के दौरान रेखीय संविन्यास (एल-2) का भी विकास हुआ है जो मध्याकार वलन हिंजों, सूक्ष्म वलनों एवं एस-सतहों के प्रतिच्छेद के रूप में दृष्टिगत होते हैं । एस-2 सतहों पर सूक्ष्मवलनों का विकास दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के शिस्ट एवं फाइलाइट शैलों पर हुआ है । यदा कदा दो पीढ़ियों के सूक्ष्मवलन भी दिखाई पड़े हैं, जिनमें एफ-2 वलन हिंज के समांतर दिशा में अवस्थित सूक्ष्मवलन डी-2 विरूपण प्रावस्था से संबंधित है ।

गढ़वाल शैल के क्वार्ट्ज़ाइट एवं दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के नाइसों में दिखने वाले लघुमान विवृत्त संकेन्द्री वलन द्वितीय पीढ़ी के हैं । प्रस्तुत क्षेत्र में एस-2 की दिशा (एस-1 के समांतर) में पर्याप्त विविधता यह बताती है कि एफ-2 वलनों का विकास स्थूलमान पैमाने पर हुआ है । एफ-2 वलनों के विश्लेषण हेतु क्षेत्र को 25 उपक्षेत्रों में विभक्त किया गया है । प्रत्येक उपक्षेत्र में एस-2 सतहों के ध्रुवों को अभिविन्यास के अनुसार समक्षेत्र नेट के निचले गोलार्द्ध पर अंकित कर उनसे महत्तम सटीक π-एस मेखला सांख्यिकीय समांगता के आधार पर प्राप्त की गई । इस प्रकार प्राप्त π-एस मेखला द्वारा प्रत्येक उपक्षेत्र के लिए β-अक्ष का अभिविन्यास प्राप्त किया गया जिसमें पर्याप्त विविधता दिखाई पड़ती है । उपक्षेत्रों में β-अक्ष के अभिविन्यास में यह विविधता पश्चगामी विरूपण प्रावस्था के कारण हुए पुनर्वलन तथा क्षेपण के फलस्वरूप है । इनके अतिरिक्त क्रिस्टलीय शैलों का गठनात्मक अध्ययन डी-2 विरूपण के दौरान पुरःक्रमित कायांतरण की दूसरी प्रावस्था की ओर भी इंगित करता है ।

विरूपण की तृतीय प्रावस्था डी-3

डी-3 विरूपण के दौरान पूर्व विकसित तलीय (एस-1, एस-2 एवं एस-3) तथा रेखीय (एल-1 एवं एल-2) संरचनाओं तथा वलनों का घूर्णन हुआ। इसी विरूपण की प्रारंभिक अवस्था में तनु शल्कित शिस्ट तथा फाइलाइट में सूक्ष्मवलन-विदलन (एस-4) के साथ ही सूक्ष्मवलन संरेखण (एल-3) का भी उद्‌भव हुआ जो एल-3 एवं एस-2 पर विकसित कोणीय वलन द्वारा परिभाषित है। डी-3 विरूपण प्रावस्था की पश्चावस्था में भंगुर विरूपण हुआ तथा इसी दौरान दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों के शैल दक्षिण-पूर्व दिशा में क्षेपण द्वारा गढ़वाल संघ के शैलों के ऊपर आ गए। दूदातोली अल्मोड़ा नापे में दो क्षेप-चादरें हैं, जिनमें ऊपरी चादर में क्वार्ट्ज़ाइट एवं फाइलाइट हैं तथा मुख्य निचली चादर का निर्माण नाइसों एवं शिस्टों द्वारा हुआ है। क्षेपण के कारण श्लक्ष्ण पार्श्वों तथा एस-2 सतहों पर फेल्सपार तथा अभ्रक खनिजों के दीर्घीकरण के कारण खनिज संरेखण का भी प्रादुर्भाव हुआ। शैल गठन के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि डी-3 के दौरान शैलों में माइलोनाइटीकरण हुआ तथा क्षेप तल एवं अपरूपणी क्षेत्रों के अनुदिश शैलों में क्लोराइट ज़ोन तक प्रतिगामी कायांतरण भी हुआ।

तृतीय पीढ़ी के वलनों के स्थूलाकार विश्लेषण के दौरान प्रत्येक उपक्षेत्रों से प्राप्त बीटा-अक्षों को समक्षेत्र नेट पर अंकन करने पर देखा गया कि इन उपक्षेत्रों से प्राप्त β-अक्ष दो सममित बृहत्-वृत्त मेखलाओं के अनुदिश वितरित हैं। इन वृहत्-वृत्त मेखलाओं के ध्रुव 70^0 द 38^0 पू. तथा 72^0 द. 36^0 प. दिशाओं में अवनमन करते हैं, जिसका अभिप्राय है कि तृतीय प्रावस्था के वलन के अक्ष उ.पू. अथवा द.प. दिशा में अवनमित हैं। अध्ययन क्षेत्र में मिले मध्याकार वलय इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। डी-3 की अंतिम अवस्था में यह क्षेत्र एक बृहत् अभिनतिरूप में वलित हुआ। अवनमित एफ-3 वलनों का ऊर्ध्वाधर बृहत्-वृत्त मेखला के अनुदिश पाया जाना बताता है कि इस अभिनतिरूप का हिंज लगभग क्षैतिज अवस्था में उ.50^0 प. - द.50^0 पू. दिशाओं में है।

विरूपण की चतुर्थ प्रावस्था डी-4

विरूपण की अंतिम प्रावस्था डी-4 के दौरान अध्ययन क्षेत्र में भंगुर-विरूपण हुआ। इस प्रावस्था में भ्रंशन दो अवस्थाओं में हुआ। प्रथम अवस्था का भ्रंश उ.उ.प. - द.द.पू. नतिलंब दर्शाता है जिसने क्षेप तल को भी विस्थापित किया। द्वितीय अवस्था में पू.उ.पू.-प.द.प. नतिलंब वाले भ्रंश विकसित हुए जिसके कारण भ्रंश तल के समीपस्थ गढ़वाल संघ के गुटिका संस्तर का विरूपण भी हुआ (गैरोला एवं हटवाल, 1991)।

विवेचन एवं निष्कर्ष

ऐसी धारणा है कि गढ़वाल नापे 100 किमी. दक्षिण दिशा में विस्थापित हुआ है (ऑडेन, 1937) । गैरोला (1982) के अनुसार उत्तर दिशा की ओर उच्चतर तापीय प्रवणता होने के कारण कायांतरण की कोटि उत्तर की ओर बढ़ती है । अतः दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों का निक्षेपण, तत्पश्चात् विरूपण एवं कायांतरण प्रथम दो विवर्तनिक प्रावस्थाओं में इनकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति से सुदूर उत्तर में हुआ, जहाँ तापमान उच्चतर था, जबकि गढ़वाल संघ के शैलों में दोनों प्रावस्थाओं का विरूपण तो अवश्य हुआ किंतु इनके निक्षेपण एवं विरूपण स्थल पर कम ताप के कारण कायांतरण न हो सका । गैरसैण क्षेत्र के शैलों में कायांतरण (दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टाइलनों में) तथा वलन की प्रकृति दर्शाती है कि प्रथम दो प्रावस्थाओं में विरूपण सुघट्य प्रकृति का था । डी-3 प्रावस्था में कोणीय वलन विकसित हुआ किंतु इस प्रावस्था में हुए क्षेपण की प्रक्रिया विरूपण प्रकृति में भंगुरता की ओर परिवर्तन को इंगित करती है । डी-3 की अंतिम अवस्था में हिमालय का मुख्य उत्थान हुआ जिसके कारण शैल कमतर दाब व ताप की स्थिति में आ गए । अतः विरूपण की अंतिम प्रावस्था भी भंगुर प्रकृति की रही ।

गैरसैण क्षेत्र में दो भिन्न विवर्तनिक इकाइयों : गढ़वाल संघ तथा दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टलाइनों को स्पष्टतः पहचाना जा सकता है । गढ़वाल संघ का प्रतिनिधित्व स्फटिकीय फाइलाइट, लोहमय क्वार्ट्ज़ाइट एवं चूना प्रस्तर द्वारा होता है, जो लगभग अकायांतरित हैं । इन शैलों के ऊपर कायनाइट ज़ोन तक कायांतरित दूदातोली-अल्मोड़ा क्रिस्टाइलनों के शैल गैरसैण क्षेप के अनुदिश उपरिशायी हैं । मध्याकार एवं स्थूलाकार संरचनाओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में कम से कम 4 प्रावस्थाओं में विरूपण हुआ है । प्रथम विरूपण प्रावस्था डी-1 में शैलों में एफ-1 वलन तथा पुनः क्रमित प्रादेशिक कायांतरण हुआ । डी-2 के दौरान द्वितीय पीढ़ी का वलन एवं दूसरे दौर का कायांतरण हुआ । डी-3 प्रावस्था आरंभ में वलन की थी जो बाद में हुए क्षेपण, प्रतिगामी कायांतरण तथा माइलोनाइटीकरण के लिए भी उत्तरदायी है । दूदातोली संघ द्वारा गढ़वाल संघ पर उपरिशायी होनें के पश्चात् संपूर्ण क्षेत्र एक बृहत् अभिनतिरूप में वलित हुआ, जो डी-3 विरूपण की अंतिम अवस्था थी । अंततः भंगुर विरूपण परिस्थितियों के कारण शैलों में भ्रंशन हुआ ।

हिमालय में कायांतरण का अध्ययन (रे एवं नाहा, 1971, गैरोला, 1975), दर्शाता है कि प्रथम विरूपण प्रावस्था (डी-1), जिसमें क्रिस्टाइलनों में प्रथम कायांतरण हुआ, हिमालयी पर्वतन के दौरान हुई । प्रस्तुत क्षेत्र के क्रिस्टलीय शैलों में सहवर्ती खनिजों एवं उनके गठन का अध्ययन दर्शाता है कि प्रथम कायांतरण डी-1 से संबंधित है । इसलिए निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गैरसैण क्षेत्र में विरूपण भी हिमालयी पर्वतन से संबंधित है ।

आभार :

यह कार्य भूविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय में निष्पादित किया गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विशेष सहायता कार्यक्रम (सैप) के अंतर्गत रिसर्च असोशिएटशिप (रा.अ. सिंह को) एवं वै.औ.अनु. परिषद् द्वारा सीनियर रिसर्च फेलोशिप (वै. श्रीवास्तव को) के रूप में वित्तीय सहायता के लिए हम आभारी हैं।

संदर्भ :

Auden, J.B., 1937 : Structure of the Himalaya in Garhwal, Rec. Geol. Surv. India, 71, 4, 407-433.

Auden, J.B, 1938 : Resume of geological results, Shaksgam expedition, 1937., Himalayan Jour., 10, 40-48.

Auden, J.B., 1949 : Tehri Garhwal and British Garhwal. Rec. Geol. Surv. India., 76, 1, 74-78.

Fuchs, G. and Sinha, A.K., 1978 : The Tectonics of the Garhwal- Kumaun Lesser Himalaya., Jahol. Geol. B.A. 121(2), 219-241.

Gairola, V.K., 1966 : Refolding in the tectonite of the Kausani area, Distt. Almora, U.P. Publi. Adv. Cent. Stud. Geol. (P.U.) Chandigarh., 3, 101-106.

Gairola, V.K., 1975 : On the petrology and structure of the Central Crystallines of the Garhwal Himalaya., Him. Geol., 5, 455-468.

Gairola, V.K., 1982 : Lower Himalayan rocks of Garhwal : their metamporphism and deformation., Geol. Surv. India. Misc. Publi. 4(3), 215-230.

Gairola, V.K., 1990 : Structure and tectonics of the Garhwal Synform. Himalayan Orogen and Global Tectonics (Ed. A.K. Sinha) Oxford and IBH Publishing Co. Pvt. Ltd. 91-106.

Gairola, V.K., and Hatwal, D. 1991 : Strain analysis of deformed pebbly horizon from the Garhwal Group, Pharsaun, District Chamoli, U.P., Jour, Geol. Soc. India, 37, 457-468.

Gairola, V.K. and Joshi, M., 1978 : Structure of a part of Dudatoli- Almora Crystalline Thrust sheet around Thalisain area, Distt. Pauri Garhwal, U.P., Him. geol., 8, 379-398.

Gairola, V.K. and Saxena, R.K. 1982 : Structural analysis of the area around Satpuli, Pauri Garhwal, U.P., Himalayan Geology, 10, 156-177.

Hatwal, D., 1988 : Strucuture and tectonics of the area around Gairsain, Distt. Chamoli U.P. Unpublished Ph. D. Thesis. B.H.U.

Heim, A. and Gansser, A., 1939 : Central Himalayas Geological observations of the Swiss expedition, 1936., Mem. Sco. Helv., Science, Nat 73(1), 1-245.

Jain, A.K., 1971 : Stratigraphy and tectonics of Lesser Himalayan region of Uttarkashi, Garhwal Himalaya, Him. Geol. 1, 25-57.

Jhingran, A.G. Thakur, V.C. and Tandon, S.K., 1976 : Structure and tectonoics of the Himalaya. Him. Geol. Sem. Section II, structure, tectonics, seismicity and evolution, New Delhi.

Krishnan, M.S. 1960 Precambrian stratigraphy of India 21st Int. Geol. Cong. Proc. 91, 95-107.

Kumar, G. Prakash G. and Singh, K.N. 1974: Geology of Deoprayag- Dwarhat area, Garhwal, Chamoli and Almora Districts, Kumaun Himalaya, U.P., Him. Geol. 4, 321-346.

Kumar G. and Agarwal, N.C. 1975 : Geology of the Srinagar-Nandprayag area (Alaknanda Valley), Chamoli, Garhwal And Tehri- Garhwal District, Kumaun Himalaya, U.P., Him. Geol. 5-29-59.

Mehdi, S.H., Kumar, G. and Prakash, G. 1972 : Tectonic evolution of eastern Kumaun Himalaya : a new approach. Him. Geol., 2, 481-501.

Middlemiss, C.S., 1887 : Crystallines and metamorphic rocks of the Lower Himalaya, Garhwal and Kumaun., Rec. Geol. Surv. India, 20, 3, 134-143.

Raina, B.N., 1972 : Photogeology and Himalayan geology., Him. Geol. 2, 527-536.

Ramsay, J.G. 1967 : Folding and fracturing of rocks, McGraw Hill New York.

Saklani, P.S., 1971 : Structure and tectonics of the Pratapnagar area, Garhwal Himalaya, Him. Geol., 1, 75-91.

Sakalni, P.S., 1978 : Deformation and tectonism of Mukhem area, Lesser Himalaya:, The tectonic geology of Himalaya, (Ed. Saklani, P.S.), 15-42

Sakalni, P.S., 1980 : Folded rocks of northern Tehri-Garhwal Himalaya, Structural geology of the Himalaya (Ed. Saklani, P.S.), Today and Tomorrow's, New Delhi, 101-112.

Schwan, W., 1980 : Shortening structures in the eastern and north western Himalayan rocks. Current trends in Geology (3) (Ed. P.S. Saklani), 78.

Shanker, R., Kumar, G. and Saxena, S.P., 1989 : Stratigraphy and sedimentation in Himalaya : A reappraisal., G.S.I., special pub. 26, 1-60.

Shanker, R., Kumar, G. and Singh G., 1995 : Sequence stratigraphy and major geological events of Himalaya. Symposium on recent advances in geological studies of Northwest Himalaya and the Foredeep, invited paper, No.5, G.S.I. 21-23 Feb., 1-17.

Singh, R.A. and Gairola, V.K., 1992 : Fold shape analysis in the vicinity of North Almora Thrust in District Chamoli, Garhwal Himalaya. Jour. Him. Geol. 3(2), 121-129.

Srivastava, H.B. and Gairola, V.K., 1990 : Structure and deformation history of Dudatoli Crystallines in the Inner Lesser Himalaya, Around Srinagar, District Pauri Garhwal. U.P. Jour. Him. Geol., 1(2), 175-187.

Thomas, T. 1993 : A study of structure and tectonics of the area around Tamadhaun. District Almora., U.P. unpublished Ph.D. Thesis, Banaras Hindu University

सूक्ष्मजैविकी का विकास

- डॉ॰ पुरुषोत्तम कौशिक, एवं
श्री दीपक वत्स

सूक्ष्मजैविकी के अंतर्गत उन सूक्ष्मजीवों का अध्ययन होता है जिन्हें हम कोरी आंख से नहीं देख सकते और जिनका आकार एक मिलीमीटर से छोटा हो । इसमें कोशिकीय और अकोशिकीय दोनों प्रकार के सूक्ष्मजीव आते हैं । इस श्रेणी में विषाणु, साइनोबैक्टीरिया (नील-हरित शैवाल) अनेक प्रकार के जीवाणु, प्रोटोज़ोआ, सूक्ष्म कवक व एककोशिकीय व बहुकोशिकीय शैवाल आते हैं । इस स्वतंत्र विषय के रूप में सूक्ष्मजैविकी का जन्म मात्र लगभग 125 वर्ष पूर्व हुआ, पर आज सूक्ष्मजैविकी को विश्व के सर्वाधिक उपयोगी विज्ञानों में से एक माना जाता है । सूक्ष्मजैविक जानकारी से मानव जाति को अनेक जानलेवा प्रकोपी बीमारियों व महामारियों से ही छुटकारा नहीं मिला है, बल्कि इसकी सहायता से आज कृषि-क्षेत्रों में अत्यधिक उन्नति हुई है । जैविक उर्वरक के बिना हमारी कृषि और वानिकी इतनी उत्पादक नहीं हो पाती, जितनी आज है । कृषि और वानिकी के क्षेत्र में जैसे सूक्ष्म ऑर्किड बीजों का माइकोराइज़ल कवक की सहायता से अंकुरण करना तो एक दैवी चमत्कार प्रतीत होता है । सूक्ष्मजीवों को आकार में छोटा होने पर भी बड़ा शक्तिशाली बताया गया है । अनेक प्रकार के उद्योग जो हमारे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग हैं, सूक्ष्मजीवों पर या उनकी प्रक्रियाओं पर आधारित हैं । इसमें भोजन, डेयरी, एन्जाइम, किण्वन के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले पेय पदार्थ व जीवनदायक औषधियां जैसे प्रतिजैविक पदार्थ सम्मिलित हैं । अतः इस विद्या के विकास का अध्ययन करना रुचिकर व उपयोगी होगा ।

मनुष्यों की उपलब्धियों का दूसरा नाम ही इतिहास है । परंतु इसमें कुछ विशिष्ट घटनाओं एवं हस्ताक्षरों को ही स्थान मिल पाता है । विज्ञान में कहा जाता है कि खोज का श्रेय उसको जाता है जो संसार को समझाने में सफल होता है न कि उसे जिसके मस्तिष्क में सबसे पहले विचार आता है । सूक्ष्मजैविकी में भी विशिष्ट नाम वही हैं, जिन्होंने किसी तकनीक, यंत्र आदि का विकास किया व जिन्हें सामान्यतः मान्यता मिल गई ।

एन्टोनी वान ल्युनहॉक के सूक्ष्मजीवों के सर्वव्यापकता संबंधी विवरणों ने करीब 200 वर्ष बाद पैस्टर को इस तथ्य को स्थापित करने में मदद दी कि किण्वन के लिए यही जीव जिम्मेदार है । बाद में रॉबर्ट कॉख, थियोबाल्ड स्मिथ, पैस्टर व अनेकों ने पाया कि सूक्ष्मजीव अनेक रोगों का भी कारण बनते हैं । कॉख ने उन जीवाणुओं को खोजा जो एन्थ्रैक्स व क्षयरोग उत्पन्न करते हैं । सूक्ष्मजैविकी में उसके योगदान को देखते हुए, उन्हें 1905 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

1860 से 1910 तक के समय को सूक्ष्मजैविकी का स्वर्णकाल माना जाता है । सूक्ष्मजैविकी के विकास का निम्न प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है :

(1) खोज काल (1676 - 1726)

इस दौरान सूक्ष्मजैविक संसार का पता चला, जिसका श्रेय मुख्यतः एन्टोनी वान ल्युनहॉक को जाता है । इन्हें सूक्ष्मजीवों को खोजने वाला व सूक्ष्मजैविकी का जनक कहा जा सकता है । ल्युनहॉक मूलतः कोई वैज्ञानिक नहीं थे, परंतु इन्हें खाली समय में काँच के टुकड़ों को घिस कर लेंस बनाने का शौक था । अपने इन्हीं प्रारंभिक लेंसों की सहायता से ल्युनहॉक ने पहले सूक्ष्मदर्शी का निर्माण किया, जिससे वस्तुओं को लगभग 200 गुणा बड़ा करके देखा जा सकता था । उन्होंने बाल, पौधों के भाग, कीट की आंख, रक्त, अपने दांत की खुरचन व इसके अतिरक्त जो भी आस-पास मिला, उसका अध्ययन किया । ल्युनहॉक ने सूक्ष्मजीवों को देखा व इनका नामकरण 'एनीमलक्यूल' किया । उन्होंने जो कुछ भी देखा, उसे रॉयल सोसाइटी ऑफ लंडन को लिखा, जहाँ इन्हें पहली बार 1677 में प्रकाशित किया गया ।

(2) संक्रमण काल (1727 - 1860)

हालाँकि ल्युनहॉक के समय व उसके बाद के वर्षों में सूक्ष्मजैविकी के विकास में उल्लेखनीय योगदान हुआ, परंतु कुछ घटनाओं ने इस विज्ञान की ओर लोगों का ध्यान बरबस खींचा । इग्नाज सीम्मेलवाइस व जॉन स्नो ने कुछ रोगों का कारण सूक्ष्मजीवों को बताया । दूसरे, इसी समय स्वतःजनन पर एक बहस छिड़ गई । फ्रानसैस्को रेडाई, जॉन नीदम, लाजेरो स्प्लैन्जी और निकोलस अपार्ट ने दिलचस्प प्रयोगों से अपने-अपने मतों को सिद्ध करने का प्रयास किया ।

(3) सूक्ष्मजैविकी का स्वर्णकाल (1860 . 1910)

लुई पाश्चर व रॉबर्ट कॉख के अतुलनीय योगदान के कारण ही इस समय को स्वर्णकाल कहा जाता है ।

सूक्ष्मजैविकी को पाश्चर के मुख्य योगदान इस प्रकार हैं :-

(क) टार्ट्रिक एसिड दो प्रकार के क्रिस्टलों से मिलकर बना होता है । उन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से अलग-अलग किया ।

(ख) किण्वन में महत्वपूर्ण रासायनिक परिवर्तन यीस्ट व जीवाणुओं के कारण होते हैं ।

(ग) पहली बार यह दर्शाया कि हवा में सूक्ष्मजीव उपस्थित होते हैं ।

(घ) अवायवीय जीवन की खोज की ।

(ङ) चिकन कॉलरा के विरुद्ध प्रतिरक्षा की खोज की । पाश्चर ने पाया कि कई सप्ताह पुराने चिकन कॉलरा के कल्चर से संरोपण करने से चूजों में नए कल्चर के प्रति प्रतिरक्षण होता है ।

जर्मन डॉक्टर रॉबर्ट काख को निम्न खोजों का श्रेय जाता है :-

(क) अंतिम तौर पर यह स्थापित किया कि जीवाणु-विशेष को रोग के कारण के तौर पर अलग से पहचाना जा सकता है । रोगों का रोगाणु-सिद्धांत प्रतिपादित किया ।

(ख) प्रयोगों की शृंखला का विकास - जिसे 'कॉख अभिगृहीत' कहा गया, जिनके द्वारा किसी सूक्ष्मजीव को रोग-विशेष के साथ जोड़ा जा सके ।

(ग) 'विशुद्ध कल्चर' तकनीकी का विकास : पाश्चर व कॉख अपने अन्वेषण में एक दूसरे के मित्र व सहयोगी बन सकते थे, परंतु फ्रांस - प्रशियन युद्ध ने इसे संभव न होने दिया । पाश्चर व कॉख क्रमशः फ्राँस व जर्मनी की राष्ट्रीयता के प्रतीक बन गए व इस तरह दोनों के मध्य एक तरह की प्रतिस्पर्धा पैदा हो गई, जो 1900 तक चली । पाश्चर ने 1885 में एक रैबिड रोगी का इलाज किया व रैबीज विषाणु के विरुद्ध वैक्सीन तैयार की, जबकि उसने विषाणु को कभी देखा नहीं था ।

कॉख ने 1882 में क्षय रोग जीवाणु की खोज की व इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया । हालाँकि भारत व मिस्र में कॉलरा फैलने के कारण रॉबर्ट कॉख ने इन देशों की यात्रा की, जिससे उनके क्षयरोग जीवाणु के अध्ययन में बाधा पहुँची, परंतु उन्होंने क्षयरोग पर शोध जारी रखा व इसके लिए उनको 1905 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

स्वर्ण काल का अंत

प्रथम विश्व युद्ध आरंभ होने व 1910 में रॉबर्ट कॉख का निधन होने से सूक्ष्म-जैविकी के स्वर्ण काल का अंत हो गया । पाश्चर संस्थान बंद कर दिया गया । जर्मनी में सूक्ष्मजैविकी प्रयोगशालाओं को ऐसे कार्य सौंप दिए गए जो युद्ध की दृष्टि से उपयोगी थे ।

आजकल हम विषाणु-विज्ञान के स्वर्णयुग में जी रहे हैं ।

(4) बीसवीं सदी में सूक्ष्मजैविकी का विकास

19वीं सदी के अंतिम दशकों में सूक्ष्मजैविकी एक स्थापित विज्ञान बन गई, जिसकी अपनी तकनीकें विकसित हो चुकी थीं । लगभग इसी समय सामान्य जीवविज्ञान का विकास हुआ । 1895 में पाश्चर की मृत्यु के बाद लगभग 50 वर्षों तक सूक्ष्मजैविकी व सामान्य जीवविज्ञान का अलग-अलग विकास होता रहा ।

सूक्ष्मजैविकी का जैवरसायन विज्ञान के विकास में भी उल्लेखनीय योगदान है । 1897 में बुकनर द्वारा कोशिका-रहित किण्वन की खोज ने इस प्रकार की क्रियाओं के रासायनिक विश्लेषण का द्वार खोल दिया । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों तक मांसपेशियों द्वारा ग्लायकोलिसिस तथा यीस्ट द्वारा अल्कोहलिक किण्वन पर समानांतर अध्ययन ने अंततः आधारभूत एकात्मकता को दर्शाया । इस तरह कशेरुकी शरीर-क्रियाविज्ञानियों व सूक्ष्मजैव रसायन-विज्ञानियों को एक साझा आधार प्राप्त हुआ । बाद के अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ कि पशुओं के लिए आवश्यक तथा जीवाणुओं व यीस्ट के वृद्धि-कारक तत्व रासायनिक तौर पर समान है । इस तरह यह दर्शाए जाने पर कि सभी जीवन-प्रक्रियाएं चयापचय स्तर पर एक ही विचार के विभिन्न संस्करण हैं, जैव-रसायनज्ञों व सूक्ष्मजैविकीविदों के मध्य 'जैवरासायनिकी की एकता' स्थापित हुई ।

बीसवीं शताब्दी में दूसरी महान बढ़त एक नए विज्ञान आनुवंशिकी के उद्‌भव के कारण कही जा सकती है, परंतु एकदम से इसका सूक्ष्मजैविकी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । 1941 में सूक्ष्मजैविकी एवं आनुवंशिकी के मध्य महत्वपूर्ण मिलन तब हुआ, जब बीडल एवं टॉटम ने न्यूरोस्पोरा फंफूद के जैवरासायनिक उत्परिवर्ती प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की । इससे उत्परिवर्तन के जैवरासायनिक विश्लेषण का मार्ग प्रशस्त हो गया । न्यूरोस्पोरा के साथ फल-मक्खी (फ्रूट फ्लाई) व मक्का के पौधे भी आनुवंशिकी शोध की इच्छित सामग्री बन गए । 1943 में डेलबर्क व लुरिया ने जीवाणुओं में उत्परिवर्तन तथा सूक्ष्मजीवों में अभियांत्रिक आनुवंशिकी कार्य का अध्ययन किया । यह पाया गया कि जीवाणुओं में आनुवंशिक सामग्री के अंतरित होने के कई तरीके हैं जो पशुओं के लिंगी पुनर्योजन से काफी भिन्न हैं । 1994 में ऐवरी, मेक्लिओड, मैक्कार्टी ने जीवाणु रूपांतरण प्रक्रिया पर कार्य किया व बताया कि डी.एन.ए. जीवधारियों की आनुवंशिक सामग्री है ।

सूक्ष्मजैविकी, जैवरासायनिकी व आनुवंशिकी के सम्मिलन से सूक्ष्मजैविकी का जीवविज्ञान की मुख्य धारा से अलगाव समाप्त हो गया (1940-45) । इसने जीवविज्ञान में दूसरी क्रांति को मंच प्रदान किया, जिसमें सूक्ष्मजैविकी के कई योगदान आधारभूत महत्व के हैं । अणुजैविकी का विकास उनमें से एक है ।

अब हम कुछ विषयांतर करना चाहेंगे । नवीनतम विज्ञानों की उद्‌भावनाओं व आविष्कारों के लिए मातृभाषा में ही मौलिक चिंतन की अनिवार्यता सर्वस्वीकृत है । भारतवर्ष के लगभग 60 प्रतिशत लोग हिंदी-भाषी हैं और मात्र दो प्रतिशत लोग अंग्रेजी भाषा को समझते हैं । ऐसी परिस्थिति में देश के मूर्धन्य सूक्ष्मजीवविज्ञानियों व शिक्षकों का उत्तरदायित्व बनता है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से अपने विषय का पठन-पाठन अपनाएं और राष्ट्रभाषा के उत्थान हेतु जनहित यज्ञ में आहुति अर्पित करें । यह तभी संभव है, जब विद्‌यालय व महाविद्‌यालय स्तर पर सभी विज्ञान विषयों की शिक्षा हिंदी में हो । अंग्रेजी की अनावश्यक अनिवार्यता के कारण अनेक प्रतिभावान छात्र विज्ञान विषयों को छोड़ देते हैं व देश भावी वैज्ञानिकों से वंचित हो जाता है । हिंदी को अपनाने में देश पहले ही 50 वर्ष का विलंब कर चुका है, अब और देरी राष्ट्र के लिए घातक सिद्‌ध हो सकती है । आवश्यकता है कि सूक्ष्मजैविकी में उच्च स्तर की मौलिक पुस्तकें लिखीं जाएँ, जो अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद भर न हों । इसके अतिरिक्त हिंदी में शोध पत्रिकाओं का अभाव है । आज के विश्व में कट कर नहीं रहा जा सकता, अतः विदेशी भाषाओं में हो रहे कार्य को त्वरित गति से भारतीय विज्ञानियों को हिंदी में उपलब्ध कराया जाना चाहिए ।

हिंदी अपनाने से सूक्ष्मजैविकी में न केवल हम विश्व स्तर का शोध कर पाएंगे, बल्कि देश के 'प्रयोगशाला से खेत तक' कार्यक्रम को भी सफल बना पाएंगे । युवकों को हिंदी में प्रशिक्षण देकर कई कम लागत वाले उद्‌योग लगाने को प्रोत्साहित किया जा सकता है; जैसे - यीस्ट गोली उत्पादन, एक कोशिकीय प्रोटीन, मशरूम की खेती आदि ।

कई ऐसे देश हैं जहाँ सूक्ष्मजैविकी के क्षेत्र में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य हुआ है और वे अपनी सूक्ष्मजैविक प्रौद्‌योगिकी के लिए विश्वभर में जाने जाते हैं । उन सबका अध्ययन-अध्यापन का माध्यम अंग्रेजी नहीं, अपितु उनकी अपनी राष्ट्रभाषा है । आइए आज हम भी उसी प्रकार राष्ट्रभाषा के माध्यम से आगे बढ़ने का संकल्प करें ।

०००००

गढ़वाल हिमालय (उ॰प्र॰) के पोखरी गवाक्ष में पाए गए मध्यदृश्य वलनों का शुद्धगतिक विश्लेषण

- डॉ॰ भुवन चंद्र जोशी, एवं
प्रो॰ प्रेमस्वरूप सकलानी

प्रस्तुत लेख में गढ़वाल हिमालय के पोखरी क्षेत्र के कायांतरित शैलों में विकसित वलनों का शुद्धगतिक विश्लेषण किया गया है । नागोल गाड (जुतोग) क्षेप के सापेक्ष चपटीकरण, प्रतिशत, ह्रस्वीकरण, समांगी विकृति तथा तरंगदैर्घ्य/आयाम अनुपात के संबंधों का विश्लेषण किया गया है । यह अध्ययन उद्‌वाचन करता है कि जो वलन नागोल गाड (जुतोग) क्षेप के आधार पर विकसित थे वे चपटीकरण (72 प्रतिशत तक), ह्रस्वीकरण (67.6 प्रतिशत तक), आभासी विकृति अनुपात (0.65 तक) के उच्च मान को दर्शाते हैं परंतु डब्ल्यू/4/ए अनुपात (0.31) की कम अभिवृत्ति से चिह्नित हैं, जबकि क्षेप से दूर होने पर ये वलन चपटीकरण, ह्रस्वीकरण, समांगी विकृति के कम मान को तथा डब्ल्यू/4/ए अनुपात के बढ़ते क्रम को दिखाते हैं । यह भी पाया गया कि क्षेप के सापेक्ष एफ 2 संविवर्तनिक वलन ह्रस्वीकरण, आभासी अनुपात तथा चपटीकरण (85 प्रतिशत) के उच्चतर मान दर्शाते हैं परंतु डब्ल्यू/4/ए के अनुपात (0.26 से 0.40) में निश्चित घटते क्रम से चिह्नित हैं जबकि क्षेप से दूर होने पर इन आकड़ों की अभिवृत्ति में कमी पाई गई । ये संविवर्तनिक एफ 2 वलन पूर्व-विवर्तनिक एफ 1 तथा विवर्तनिकोत्तर एफ 3 वलनों से ज्यादा चिपिट तथा ह्रस्वीकृत हुए ।

प्रस्तावना

गढ़वाल हिमालय का पोखरी क्षेत्र (चित्र 1) कम तथा उच्च श्रेणी की बहुल विवर्तनिक कायांतरित शैलों से लक्षणित है । कायांतरित शैलों का विभाजन दो ग्रुपों में किया गया है : (क) मध्य से उच्च श्रेणी की नाइसें एवं स्थूल क्वार्ट्ज़ाइट जिनमें गोमेदक बायोटाइट सिस्ट तथा एम्फीबोलाइट के संस्तर हैं, (ख) कम श्रेणी के पोखरी वर्ग के शैल, जो निम्न प्रकार से विभाजित हैं : (i) पाइराइटमय ग्रेफाइट सिस्ट (ii) एम्फीबोलाइट तथा मैटावोल्कैनिक, (iii) मिग्मेलाइट वायोटाइट शिष्ट, (iv) मिग्मेटाइट । वल्दिया (1978, 1980) ने पोखरी क्षेत्र के शैलों को प्रिकैम्ब्रियन रौतगारा फॉरमेशन (डामटा वर्ग) के अंतर्गत रखा जो ग्रेनाइट के द्‌वारा क्षेपित हुआ । इन्होंने पोखरी इकाई की आश्मिकी को

रामगढ़ के समान माना । कुमार (1975) ने पोखरी ग्रुप के कम श्रेणी पर कायांतरित शैलों को नागनाथ क्वार्ट्ज़ाइट तथा भिकौना मैटावोल्केनिक के रूप में जाना । श्रीवास्तव तथा अहमद (1978) तथा अग्रवाल एवं कुमार (1973) ने गढ़वाल ग्रुप को रुद्रप्रयाग शैल समूह, पोखरी शैलसमूह, चमोली शैलसमूह तथा नागनाथ क्वार्ट्ज़ाइट में विभाजित किया तथा भिकोना मैटावोल्केनिक को पोखरी शैलसमूह में घुसा हुआ माना । कुमार (1975) ने पोखरी ग्रुप के शैलों को कांडे तथा चमेथी क्षेप-भ्रंश से घिरा हुआ माना । श्रीवास्तव तथा अहमद (1978) ने इन क्षेपों को अपनतिक संरचना का ही भाग माना । लेखक के अनुसार ये दोनों क्षेप एक ही क्षेप के तल हैं जिन्हें मुख्य केंद्रीय क्षेप (जुतोग क्षेप) के समान माना गया है । पोखरी क्षेत्र के शैलों को अभिनति गवाक्ष (चित्र 2) के रूप में पाया गया है ।

अग्रवाल तथा कुमार (1973), श्रीवास्तव तथा अहमद (1978) तथा जोशी एवं पांडे (1992) के पूर्व कार्य से यह सिद्ध होता है कि पोखरी ग्रुप तथा हाफला ग्रुप का मिलन-स्थान विवर्तनिक है ।

अध्ययन से यह पता चलता है कि पोखरी (चैल) ग्रुप के शैल अच्छी तरह से वलनित है जब कि हाफला क्वार्ट्ज़ाइट ग्रुप के शैलों मे उपस्थित लघुवलन शैलों के स्थूल तथा समांगी होने के कारण विश्लेषण के लिए उपयुक्त नहीं है । इसके अलावा ये वलन कहीं-कहीं पर (यथा धमक, मसोली तथा हाफला आदि स्थानों पर) विकसित हैं जो कि नागोलगाड (जुतोग) क्षेप से काफी दूर हैं ।

पोखरी ग्रुप के शैलों पर हाफला क्षेप चादर के प्रभाव को जानने के लिए लेखक ने नागोलगाड (जुतोग) क्षेप के सापेक्ष लघुवलनों का विश्लेषण किया है ।

पोखरी ग्रुप के शैल तीन पीढ़ी के वलनों को दर्शाते हैं : (1) (पूर्वविवर्तनिक) वलन समनतिक से शयान की तरह के हैं जिनका अवनमन 15^0 से 52^0 पूर्व या पश्चिम है । ये वलन फ्लैगी शिस्ट शैलसमूह तथा एम्फीबोलाइट शैलसमूह में हरिशंकर के पश्चिम में सलना के पूर्व में तथा खन्नी गाँव के पास दिखाई देते हैं । (2) (संविवर्तनिक) वलन सहअक्षीय (चित्र 4) हैं तथा इनका अवनमन 20^0 से 46^0 उ.प. - द.पू. है । ये वलन फ्लैगी शिष्ट शैलसमूह तथा एम्फीबोलाइट शैलसमूह में कंडल के पूर्व में, किमखोली तथा गवेरी गाँवों के पास दिखाई देते हैं । ये वलन अक्सर खंड विदलन से संबंध बनाए हुए पाए गए । (3) वलन (विवर्तनिकोत्तर) खुले आकार के हैं तथा इनमें 20^0 से 30^0 उ.उ. पूर्व द.द.प. का अवनमन पाया गया है । जोशी (1990) ने लघु एवं दीर्घ संरचनाओं के आधार पर इस क्षेत्र के विवर्तनिक तथा संरचनात्मक ढाँचे की विवेचना की थी ।

यहाँ पर पोखरी क्षेत्र के शैलों में विकसित मध्य दृश्य वलनों का नागोलगाड (जुतोग) क्षेत्र के सापेक्ष विश्लेषण किया गया है, जिसके द्वारा इस क्षेत्र के विरूपण के प्रतिरूपों तथा तनाव के इतिहासों का पता लगाया गया है ।

वलनों में चपटीकरण, समांगी विकृति तथा ह्रस्वीकरण का आकलन

पोखरी क्षेत्र में विकसित मध्यदृश्य वलनों का वर्गीकरण रामजे (1967) के नति तुल्यकोणी तरीके से किया गया तथा यह पाया गया कि अधिकतर वलन 1 सी वर्ग से संबंधित थे जबकि दूसरे प्रकार के वलन रामजे के 1 बी, 2 तथा 3 वर्ग के अंतर्गत पाए गए। यह सर्वविदित है कि समय एवं स्थान के अनुरूप हिमालय के शैल विभिन्न विवर्तनिक परिवहन द्वारा प्रभावित हुए जिसके परिणामस्वरूप समांतर वलनों का जन्म हुआ जो अध्यारोपित वलनों में साथ के साथ बदल गए। ये अभिसारी अध्यारोपित वलन संपीडन प्रतिबल द्वारा (द सिटर, 1964) चपटीकरण की प्रक्रिया से गुजरे तथा चिपिट समांतर वलन कहलाए ।

विभिन्न पीढ़ी के वलनों तथा टी की अभिवृत्ति को रामजे द्वारा बताए गए तरीके से मापा गया और रामजे (1967) के चपटीकरण प्रतिशत मानक चाप (चित्र 5, 6, एवं 7) में अंकित किया। इसी प्रकार विभिन्न पीढ़ी के वलनों के α तथा T मानों को रामजे (1967) के समांगी विकृति चाप (चित्र 8, 9 एवं 10) में अंकित किया गया जिसमें विकृति के मान को $\lambda 2, \lambda 1$ से दर्शाया गया है, जहाँ पर $\lambda 1$ (अक्षीय पृष्ठ के समांतर) तथा $\lambda 2$ (अक्षीय कक्ष के लंबवत्) द्विघात विकृति विस्तार है ।

ह्रस्वीकरण प्रतिशत का आकलन वलनीकृत परतों की चापों की लंबाई (एल) तथा चौड़ाई (डब्ल्यू) की नाप के आँकड़ों को $\frac{\text{एल} - \text{डब्ल्यू}}{\text{एल}} \times 100$ = ह्रस्वीकरण वाले समीकरण में अभिकलित करके प्राप्त किया गया ।

क्षेप के सापेक्ष चपटीकरण, समांगी विकृति तथा ह्रस्वीकरण प्रतिशत

नागोलगाड (जुतोग) क्षेप के सापेक्ष विभिन्न पीढ़ी के वलनों का चपटीकरण प्रतिशत, समांगी विकृति तथा ह्रस्वीकरण प्रतिशत में बहुत घटत-बढ़त है। क्षेप से 100 मीटर से 200 मीटर दूर स्थित संविवर्तनिक वलन 25 70 प्रतिशत से 40 85 प्रतिशत का चपटीकरण एवं समांगी विकृति अनुपात (0.15 से 0.80) की उच्च अभिवृत्ति को दिखाते हैं जब कि क्षेप की इसी दूरी पर वलनों में ह्रस्वीकरण का मान 70.50 प्रतिशत आँका गया। क्षेप से 150 मीटर से 250 मीटर की दूरी पर स्थित (1) पीढ़ी के वलन 20 से 65 प्रतिशत चपटीकरण, 55.5 प्रतिशत से 67.71 प्रतिशत ह्रस्वीकरण के मध्यम मानों को दिखाते हैं जो 20-50 से 40-72 आभासी विकृति अनुपात के मानों के साथ-साथ थे। 200 मीटर से 350 मीटर की दूरी के वलन आभासी विकृति (20-55से 25-60), चपटीकरण प्रतिशत (20-60 प्रतिशत) तथा ह्रस्वीकरण प्रतिशत (25.71 - 30.80 प्रतिशत) के निम्न मानों से सीमांकित पाए गए।

क्षेप से दूर अवस्थित (900 मीटर से 1500 मीटर) लघु एफ 2 वलनों में चपटीकरण प्रतिशत (10.60 प्रतिशत) तथा ह्रस्वीकरण प्रतिशत (32.82 से 44.66 प्रतिशत) को ह्रासमान पाया गया जबकि विकृति अनुपात के मान की अभिवृत्ति में 0.10 से 0.60 की कमी दिखाई दी । मानों में इसी प्रकार की ह्रासमान प्रवृत्ति को एफ 1 तथा एफ 3 वलनों में भी देखा गया । एफ 3 वलन 50 प्रतिशत तक चपटीकृत हुए तथा 20.34 प्रतिशत तक ह्रस्वीकृत हुए । इसी प्रकार विकृति अनुपात का मान 0.15 से 0.45 दिखा ।

क्षेप के संदर्भ में वलनों में चतुर्थांश तरंगदैर्घ्य/आयाम का संबंध

इस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है कि वलनों की आकृति में बदलाव अध्यारोपित समांगी विकृति द्वारा हुआ तथा तरंगदैर्घ्य तथा आयाम ऐसी मुख्य अभिवृत्तियां हैं जिनकी चर्चा वलनों की आकृति को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है । यहाँ पर विभिन्न पीढ़ी के वलनों के तरंगदैर्घ्यों तथा आयामों को हडेलस्टन (1973) तथा भट्टाचार्य आदि (1986) के द्वारा प्रतिपादित तरीकों को अपना कर मापा गया ।

तालिका 1 के मानित आँकड़ों को विभिन्न पीढ़ी के वलनों के चतुर्थांश तरंगदैर्घ्य और आयाम-अनुपात को क्षेप की दूरी के सापेक्ष ग्राफ में अंकित किया गया (चित्र 11, 12, एवं 13) । एफ 1, एफ 2 तथा एफ 3 वलनों से प्राप्त वलनों (चित्र 11, 12 एवं 13) द्वारा यह लक्षित हुआ है कि ये परिरुद्ध क्षेत्र में आते हैं । ये क्षेत्र इंगित करते हैं कि चतुर्थांश तरंगदैर्घ्य /आयाम-अनुपात क्षेप के पास कम मानों द्वारा चिह्नित था जबकि क्षेप की संधि में इसका कीर्तिमान ऊँचा था ।

नागोलगाड (जुतोग) क्षेप से 100 मीटर से 200 मीटर की दूरी तक पाए जाने वाले संविवर्तनिक वलनों में चतुर्थांश तंरगदैर्घ्य/आयाम के अनुपात का मान कम (1.26 से 0.40) पाया गया । क्षेप 150 मीटर से 350 मीटर दूरी पर अवस्थित एफ 1 तथा एफ 3 वलन इन मानों की कमी की अभिवृत्ति (0.40 से 1.6) से चिह्नित थे ।

नागोलगाड (जुतोग) क्षेप से 900 मीटर से 1500 मीटर की दूरी पर विकसित एफ 2 संविवर्तनिक वलन डब्ल्यू/4/ए अनुपात का बढ़ता हुआ क्रम (1.97 से 2.25) दर्शाते हैं। क्षेप से 600 से 1100 मीटर की दूरी पर अवस्थित एफ 1 (पूर्वविवर्तनिक) तथा एफ 3 (विवर्तनिकोत्तर) वलन व्यवस्थित रूप से बढ़ता हुआ अनुपात (1.92 से 2.25) दर्शाते हैं (तालिका 1) ।

तालिका 2 में प्रदर्शित आँकड़े इंगित करते हैं कि क्षेप की जड़ों में डब्ल्यू/4/ए के मानों में कमी आई है जबकि एफ 2 वलनों में यह मान निम्नतम मिला ।

प्रत्येक पीढ़ी के वलन, जो क्षेप से दूर अवस्थित हैं, डब्ल्यू/4/ए के अनुपात की बढ़ती हुई प्रवृत्ति दिखाते हैं । यह निर्णय किया जा सकता है कि चतुर्थांश तरंगदैर्घ्य/आयाम अनुपात सीधे-सीधे क्षेप की दूरी के समानुपाती है ।

तालिका 2 के आंकड़े यह बताते हैं कि चपटीकरण प्रतिशत, ह्रस्वीकरण प्रतिशत तथा समांगी विकृति के मान क्षेप के आधार में उच्च अभिवृत्ति प्रदर्शित करते हैं जबकि क्षेप से दूरी बढ़ने पर इन मानों में घटती हुई प्रवृत्ति दिखाई देती है ।

निष्कर्ष :

यह कहा जा सकता है कि चपटीकरण प्रतिशत, ह्रस्वीकरण प्रतिशत तथा समांगी विकृति के मान विभिन्न पीढ़ी के वलनों में चतुर्थांशं तरंगदैर्घ्य/आयाम प्रतिशत के व्युत्क्रमतः आनुपातिक हैं । यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि नागोलगाड (जुतोग) क्षेप के धरातल पर विकसित एफ 1, एफ 2 तथा एफ 3 वलनों का चपटीकरण 25 से 72 प्रतिशत, ह्रस्वीकरण (43.60 प्रतिशत से 67.60 प्रतिशत) तथा समांगी विकृति 0.22 से 0.65 तक हुई जबकि डब्ल्यू/4/ए का अनुपात 0.31 तक घटा (तालिका 2) । ये वलन जब क्षेप से दूर विकसित मिलते हैं तो इनमें चपटीकरण (15 प्रतिशत से 60 प्रतिशत), ह्रस्वीकरण 18.10 प्रतिशत से 40.72 प्रतिशत तथा आभासी विकृति अनुपात (0.20 - 0.39 से 0.28 - 0.57) के मानों में कमी दृष्टिगत होती है परंतु इनके डब्ल्यू/4/ए के अनुपात में उच्च अभिवृत्ति (2.68) देखी गई ।

आभार :

प्रस्तुत लेख निदेशक, केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान की स्वीकृति से प्रकाशित किया गया । लेखक (भु.चं.जो.) विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग (भारत सरकार) द्वारा दी गई वित्तीय सहायता एवं हिंदी अधिकारी एवं आशुलिपिक के द्वारा दिए गए सहयोग के लिए आभारी है ।

संदर्भ :

अग्रवाल, एन.सी. तथा कुमार, जी. 1973, जियोलॉजी ऑफ दि अपर भागीरथी एंड यमुना वैलीज, उत्तरकाशी डिस्ट्रिक्ट, कुमाँऊ हिमालय, हिमाल, जिओल 3, 1-23 पृ.

अहमद, ए. 1978 फेसीज कॉनसेप्ट, कौरिलेशन एंड क्लासीफिकेशन ऑफ पेलियोज़ोइक (प्री - ब्लैनी) फॉरमेशन ऑफ कुमाँऊ गढ़वाल एंड हिमाचल प्रदेश, लैसर हिमालय, इंडिया, जिओल सर्वे. इन्ड. मिस. पब., 41(1), 209-240 पृ.

भट्टाचार्य, ए.आर. 1986 : वेवलैन्थ ऐंप्लीट्यूड कैरेक्टरस्टिक्स ऑफ पौलीफेज फोल्ड्स इन प्रीकैंब्रियन बुंदेलखंड कंप्लैक्स, इंडिया, टैक्टोनोफिजिक्स, 128, 121 125 पृ.

द. सिटर, एल.यू. 1964 : स्ट्रक्चरल जियोलॉजी, मैक ग्रा हिल बुक कंपनी, न्यूयार्क. 151. पृ.

हडेलस्टन, पी.जे. 1973. फोल्ड मॉरफोलौजी एंड सम जियोमैट्रीकल इम्प्लीकेशन्स ऑफ थ्योरीज ऑफ फोल्ड डेवलपमैंट. टैक्टोनोफिजिक्स, 16, 1-46 पृ.

जोशी, बी.सी. 1986. जियोलॉजी ऑफ दी पोखरी एरिया, डिस्ट्रिक्ट चमोली गढ़वाल. अनपब्लिश्ड पीएच.डी. थीसिस, गढ़वाल युनिवर्सिटी, श्रीनगर गढ़वाल इंडिया. 131 पृ.

जोशी, बी.सी. एंड पांडे आई.सी. 1992. स्ट्रक्चरल स्टडीज : ए केस हिस्टरी फ्रौम पोखरी एरिया, डिस्ट्रिक्ट चमोली गढ़वाल, उत्तर प्रदेश जर्न. हिमाल. जिओल. वोल. 3(1), 103-110 पृ.

कुमार, जी. 1975, एंड अग्रवाल, एन.सी. 1975. जियोलॉजी ऑफ श्रीनगर नंदप्रयाग एरिया (अलकनंदा वैली), चमोली गढ़वाल एंड टेहरी गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट, कुमाँऊ हिमालय, यू.पी. हिमाल. जिओल., 5, 29-69.

पांडे, आई.सी. 1991. टैक्टोनिक मैटामॉरफिक इनवेस्टीगेशन्स ऑफ कुमाँऊ गढ़वाल हिमालय, लैसर हिमालय, करेन्ट ट्रैन्ड्स इन जियोलॉजी. सकलानी, पी.एस. (संपो.), टुडे एंड टुमारोज पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 216 पृ.

रामजे, जे.जी. 1967 फोल्डिंग एंड फ्रैक्चरिंग ऑफ रॉक्स, मैक ग्रा हिल बुक कंपनी, न्यूयॉर्क, 568 पृ.

श्रीवास्तव,आर.एन. तथा अहमद, ए. 1979 जियोलॉजी एंड स्ट्रक्चर ऑफ अलकनंदा वैली, गढ़वाल हिमालय हिम. जिओल, 9, 225-254 पृ.

वल्दिया, के.एस. 1980 एक्सर्टेशन एंड एनालोग ऑफ दी चैल नेप इन दि कुमाऊँ हिमालय, इंडियन जर्नल ऑफ अर्थ साइंस, 5 अंक-1, 1-19 पृ.

वल्दिया, के.एस. 1980, स्ट्रेटीग्राफी एंड कौरिलेशन ऑफ लैसर हिमालयन फॉरमेशन. हिंदुस्तान पब्लिशिंग कॉरपोरेशन (इंडिया) दिल्ली - 110007.

तालिका - 1

क्र.सं.	वलन	ह्रस्वीकरण का प्रतिशत	चपटीकरण का प्रतिशत	आभासी विकृति अनुपात	तरंगदैर्घ्य/ आयाम का प्रतिशत	तरंगदैर्घ्य/ आयाम के औसत की रेंज	तरंगदैर्घ्य/ आयाम के प्रतिशत का गणितीय औसत	क्षेप से दूरी (मीटर में)
	क्षेप के पास एफ 1 वलन							
1.	एफ 1	67.71	25-65	.40-.72	0.40			150
2.	एफ 1	55.5	20-60	.20-.50	0.76	.76-2.12	1.44	250
	क्षेप से दूर एफ 1 वलन							
3.	एफ 1	40.72	22-45	.15-.53	2.12			800
	क्षेप के नजदीक एफ 2 वलन							
4.	एफ 2	68.56	25-70	.15-.65	0.26			150
5.	एफ 2	70.50	40-85	.30-.80	0.28			100
6.	एफ 2	64.90	30-60	.20-.50	0.40	.21-2.25	2.51	200
	क्षेप से दूर एफ 2 वलन							
7.	एफ 2	44.66	10-60	.10-.60	2.25			900
8.	एफ 2	32.82	20-60	.10-.55	1.97			1500
	क्षेप के नजदीक एफ 3 वलन							
9.	एफ 3	30.80	30-60	.25-.60	1.35			200
10.	एफ 3	25.71	20-50	.20-.55	1.60			350
	क्षेप से दूर एफ 3 वलन							
11.	एफ 3	20.34	15-50	.25-.45	1.92	1.35-2.22	1.78	600
12.	एफ 3	18.20	20-45	.15-.40	2.17			800
13.	एफ 3	15.50	25-40	.20-.30	2.22			1100

तालिका - 2

क्र.सं.	वलन पीढ़ी	ह्रस्वी-करण प्रतिशत	चपटी-करण प्रतिशत	समांगी विकृति	तरंगदैर्घ्य/ आयाम अनुपात	क्षेप से दूरी (मी. में औसत)
क्षेप के नजदीक						
1.	एफ 1	60.60	23-62	0.30-0.60	0.50	200
2.	एफ 2	67.68	35-72	0.22-0.65	0.31	150
3.	एफ 3	43.60	25-55	0.25-0.57	1.47	275
क्षेप से दूर						
4.	एफ 1	40.72	22-45	0.15-0.53	2.12	800
5.	एफ 2	38.74	15-60	0.12-0.57	1.86	700
6.	एफ 3	18.10	20-45	0.20-0.39	2.68	250

चित्रों की व्याख्या :

चित्र.1 पोखरी जिला चमोली का भूमानचित्र.

लीजन्ड :

I क्वार्ट्ज़ाइट
II मिग्मेटाइटी बायोटाइट शिस्ट
III मिग्मेटाइट
IV एम्फीबोलाइट
V मैटावोल्कैनिक
VI क्लोराइट टैल्कीय शिस्ट तथा
VII पाइराइटमय ग्रेफाइट शिस्ट

ए = नतिलंबित एस 1 की नति बी = क्षेप
सी = भ्रंश तथा डी = अवस्थिति 1

वलन प्रकार 1 :

1(एफ 1) 2(एफ 1) 3(एफ 2) 4(एफ 2) 5(एफ 2)
6(एफ 3) 7(एफ 3) 8(एफ 1) 9(एफ 1) 10(एफ 1)
11(एफ 2) 12(एफ 3) तथा 13(एफ 3)

चित्र 2 पोखरी क्षेत्र का ब्लॉक आरेख

चित्र 3 एवं 4 पोखरी क्षेत्र के विभिन्न प्रकार के वलनों के आरेख ।

चित्र5, 6 एवं 7 वलन में चपटीकरण में आकलन के लिए टी' तथा α मानों का अंकन ।

चित्र 8, 9 एवं 10 वलन की समांगी विकृति के आकलन के लिए टी' तथा α मानों का अंकन ।

चित्र 11 क्षेप की दूरी के सापेक्ष एक वलन के चुतर्थांश तरंगदैर्घ्य तथा आयाम अनुपात का अंकन ।

चित्र 12 क्षेप की दूरी के सापेक्ष एफ 2 वलन के चतुर्थांश तरंगदैर्घ्य तथा आयाम अनुपात का अंकन ।

चित्र 14 क्षेप की दूरी के सापेक्ष एफ 1, एफ2 तथा एफ3 वलनों के ह्रस्वीकरण प्रतिशत का अंकन ।

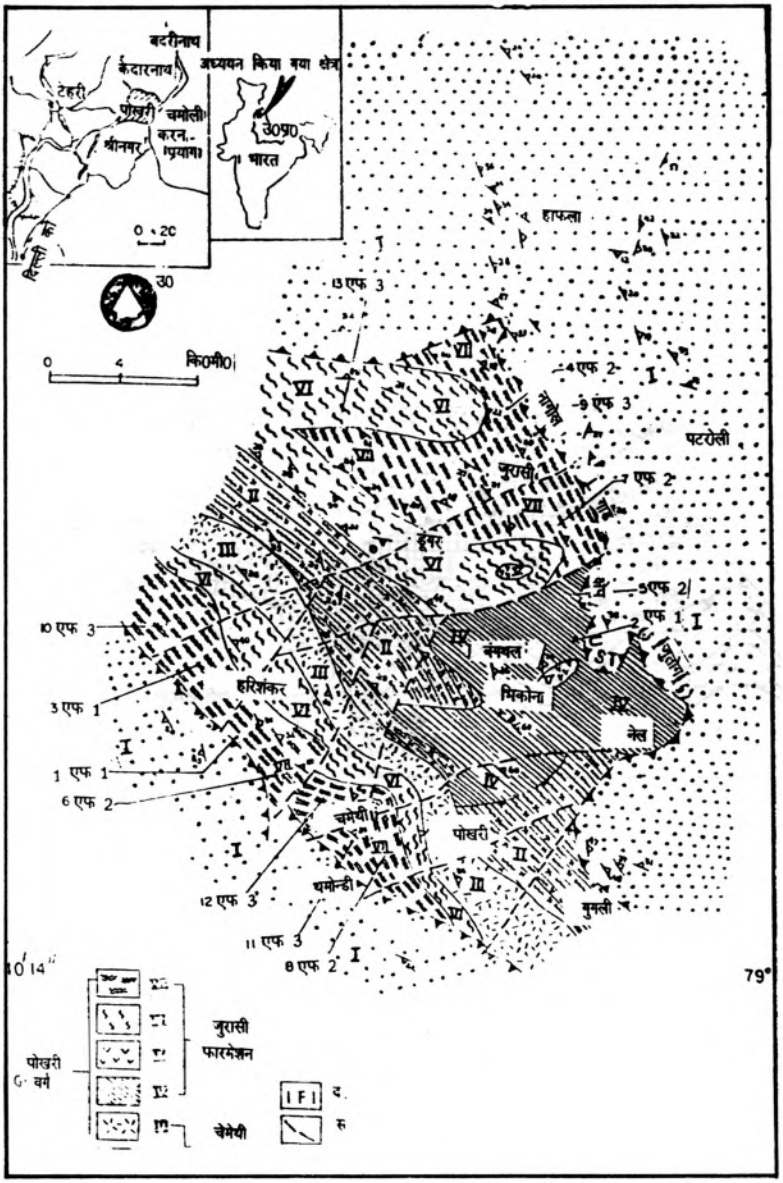
बदरीनाथ
केदारनाथ
टेहरी
पौड़ी
चमोली
श्रीनगर
करन-
प्रयाग
अध्ययन किया गया क्षेत्र
भारत
0 20
किमी0
हाफला
पटरोली
हरिशंकर
भिकोना
पोखरी
चमेथी
थमोन्डी
बुमली
जुरासी
फारमेशन
चमेथी

चित्र - 1

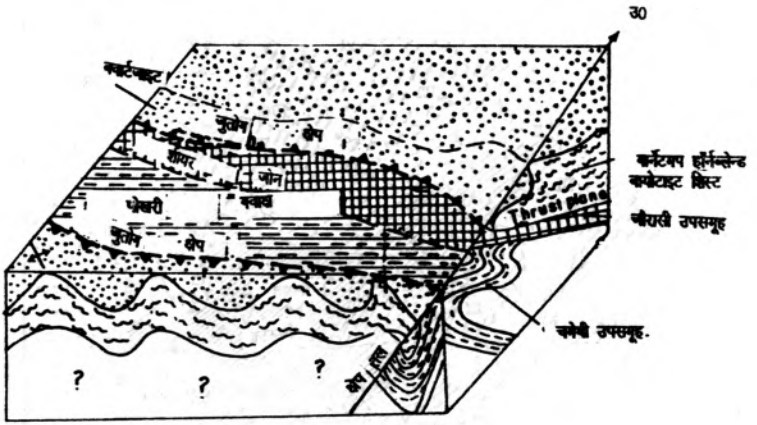
30
कार्टजाइट
चूना
क्वार्ट्ज
चेरी
चूना
क्वार्ट्ज
Thrust plane
कार्टजप हॉर्नब्लेन्ड क्वार्टजाइट शिस्ट
चौरासी उपसमूह
चमेली उपसमूह.
?
?
?

चित्र - 2

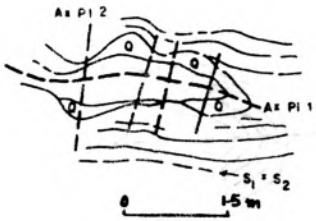

"अ" स्फटिक शिरा (क्वा) यह दर्शाती है कि एफ 1 वलन एस1 = एस2 के समान्तर है तथा शिरा वलन एफ2 खुल वलन है । दरारें एफ 2 के समान्तर विकसित हुयी ।

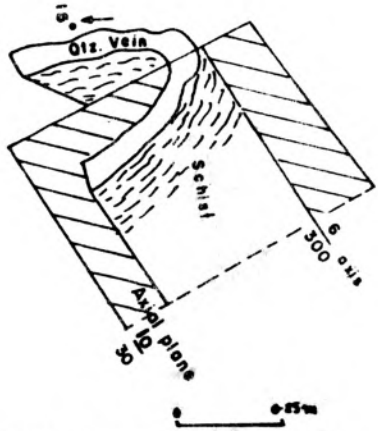

"ब" शिस्ट में आनत वलन मोहन, खाल के पास मिले हैं । अक्षीय तल की नति 10° उ 30° पू0 है ।

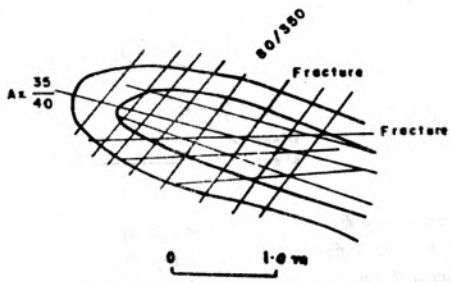

"स" फ्लैगी क्वार्ट्जाइट में वलनित स्फटिक शिरा क्रास दरारों को दर्शाती है जो विरूपण के बाद क्रम में विकसित हुयी इस वलन की अवस्थिति पोखरी से बली गाँव के पैदल रास्ते में है ।

चित्र - 3

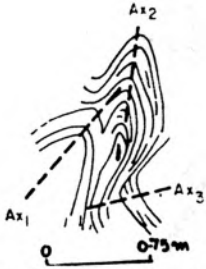

अ. भिकोना के नजदीक फाइलाइट अध्यारोपित वलनों को दर्शाती है ।

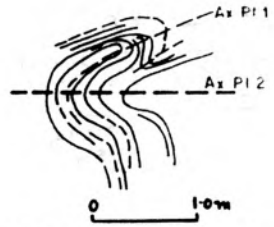

ब. धल्ला तल्लला के स्कूल के पास स्फटिक क्लोराइट शिस्ट में सहअक्षीय वलन 1 वलन अक्ष की प्रवृत्ति उ0प0.-द0पू0 है ।

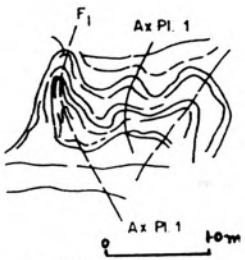

स. एम्फीबोलाइट में सहअक्षीय वलन के अक्ष की प्रवृत्ति उ0 152° की तरफ है । इनकी स्थिति पोखरी से 2·5 कि.मी. भिकोना की तरफ सड़क के पास है ।

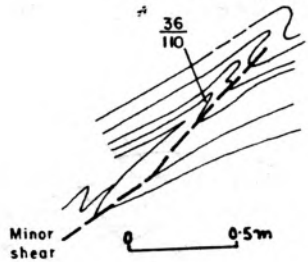

द. ट्रैग वलन में अपस्खदन की स्थिति । वलन अक्ष पू.द.पू.–प.उ.प. दिशा की प्रवृत्ति को दर्शाता है तथा इंगित करता है कि दिशात्मक प्रतिबल उ.उ.पू. से था विरूपण के दूसरे क्रम में स्थान भिकोना चांदनी खाल के नाले के साथ

चित्र - 4

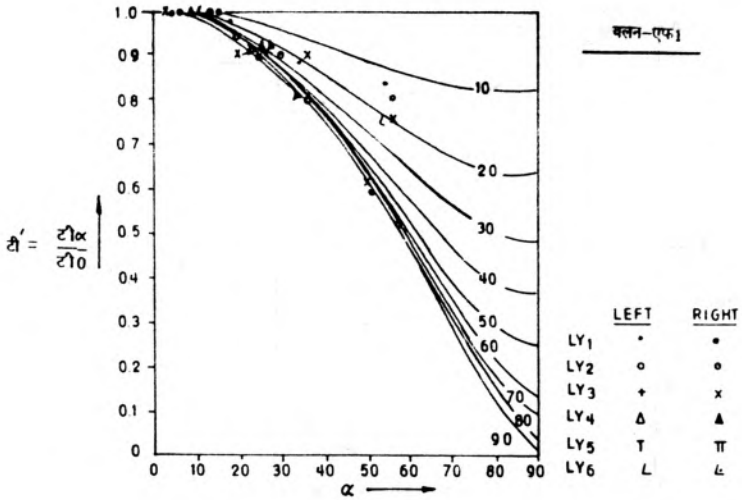
वलन–एफ1
10
20
30
40
50
60
70
80
90
LEFT
RIGHT
LY1
LY2
LY3
LY4
LY5
LY6
α

चित्र - 5

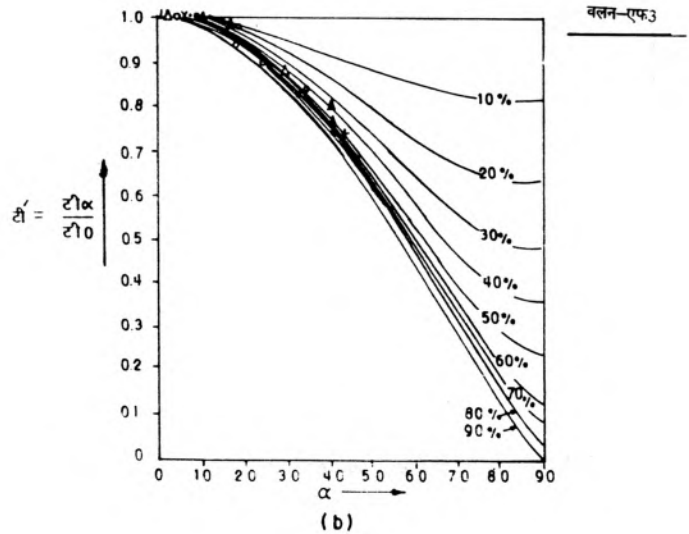
वलन–एफ3
10 %
20 %
30%
40%
50%
60%
70%
80 %
90 %
α
(b)

चित्र - 6

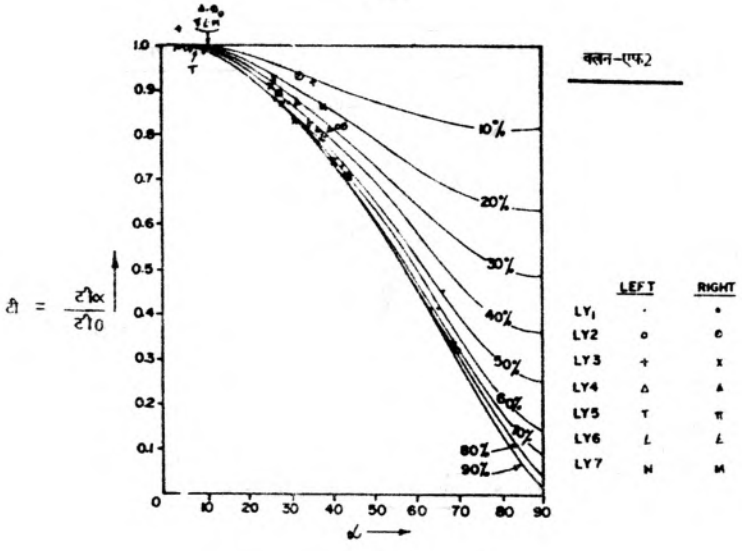
वलन-एफ2
10%
20%
30%
40%
50%
60%
70%
80%
90%
LEFT
RIGHT
LY1
LY2
LY3
LY4
LY5
LY6
LY7
α

चित्र-7

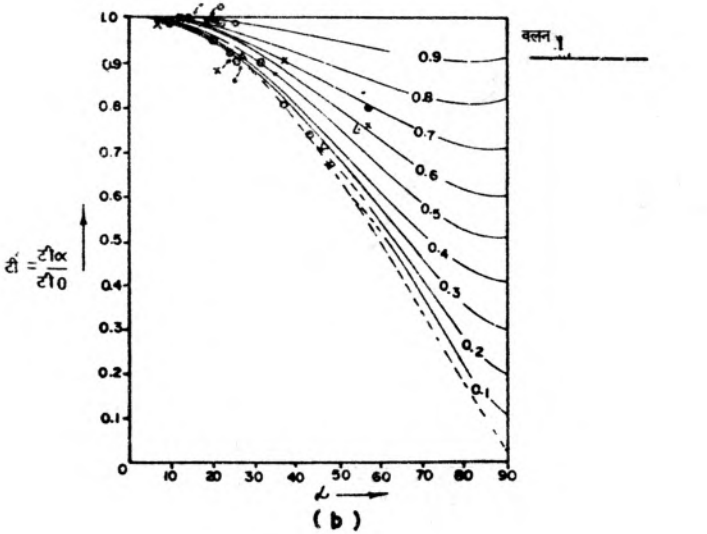
वलन 1
0.9
0.8
0.7
0.6
0.5
0.4
0.3
0.2
0.1
α
(b)

चित्र - 8

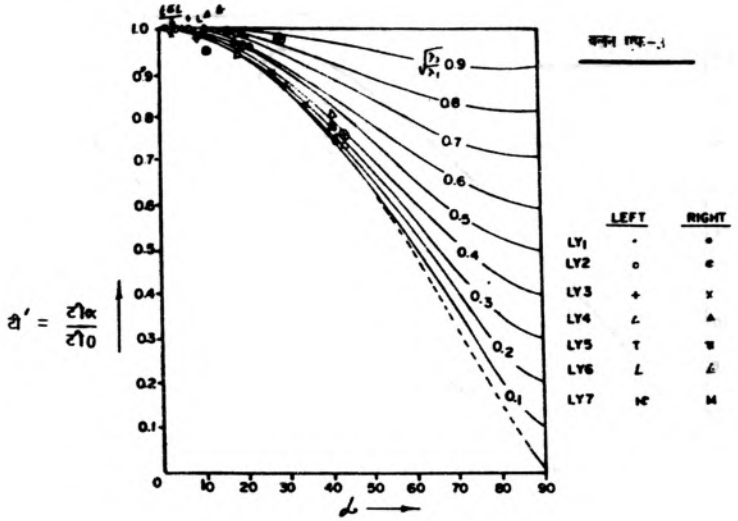
एलन एफ–1
LEFT
RIGHT
LY1
LY2
LY3
LY4
LY5
LY6
LY7
0.9
0.8
0.7
0.6
0.5
0.4
0.3
0.2
0.1
टी' = टीक / टी0
α

चित्र - 9

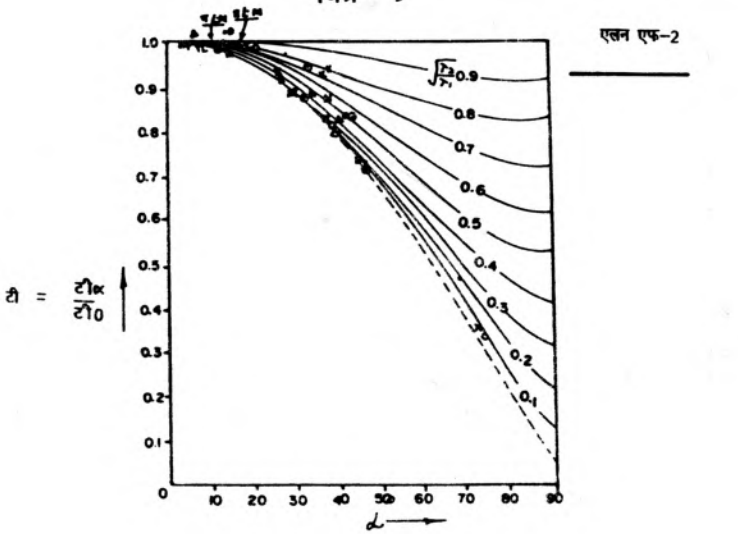
एलन एफ–2
0.9
0.8
0.7
0.6
0.5
0.4
0.3
0.2
0.1
टी = टीक / टी0
α

(b)

चित्र - 10

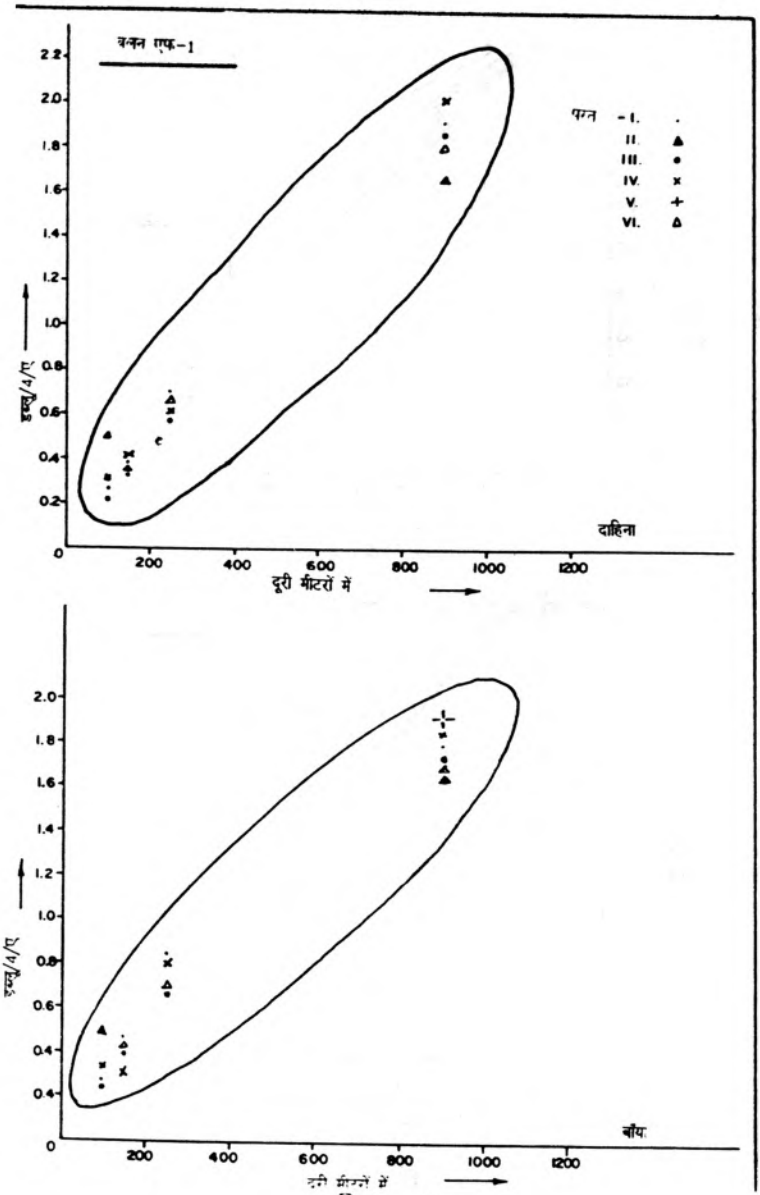

चित्र - 11

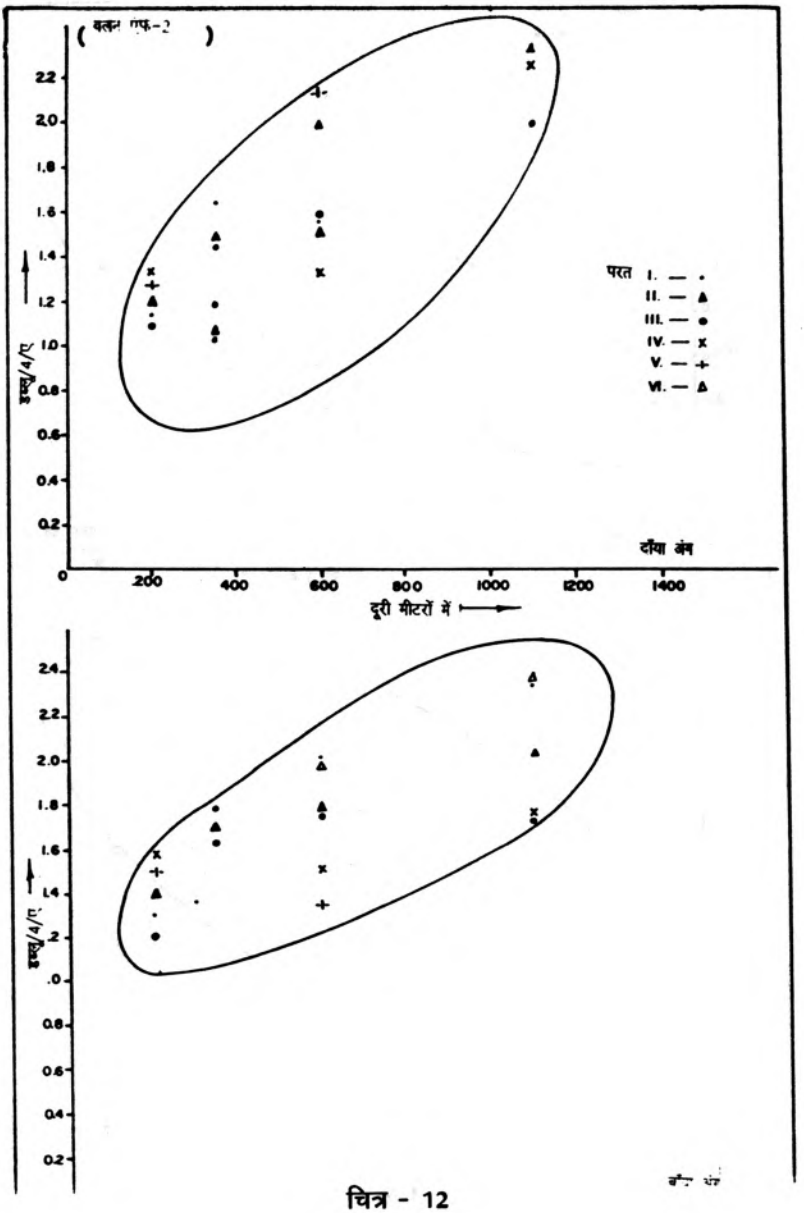
(वक्र एफ-2)
2.2
2.0
1.8
1.6
1.4
1.2
1.0
0.8
0.6
0.4
0.2
0
200
400
600
800
1000
1200
1400
दूरी मीटरों में
परत I. —
II. —
III. —
IV. —
V. —
VI. —
दाँया अंत
2.4
2.2
2.0
1.8
1.6
1.4
1.2
1.0
0.8
0.6
0.4
0.2

चित्र - 12

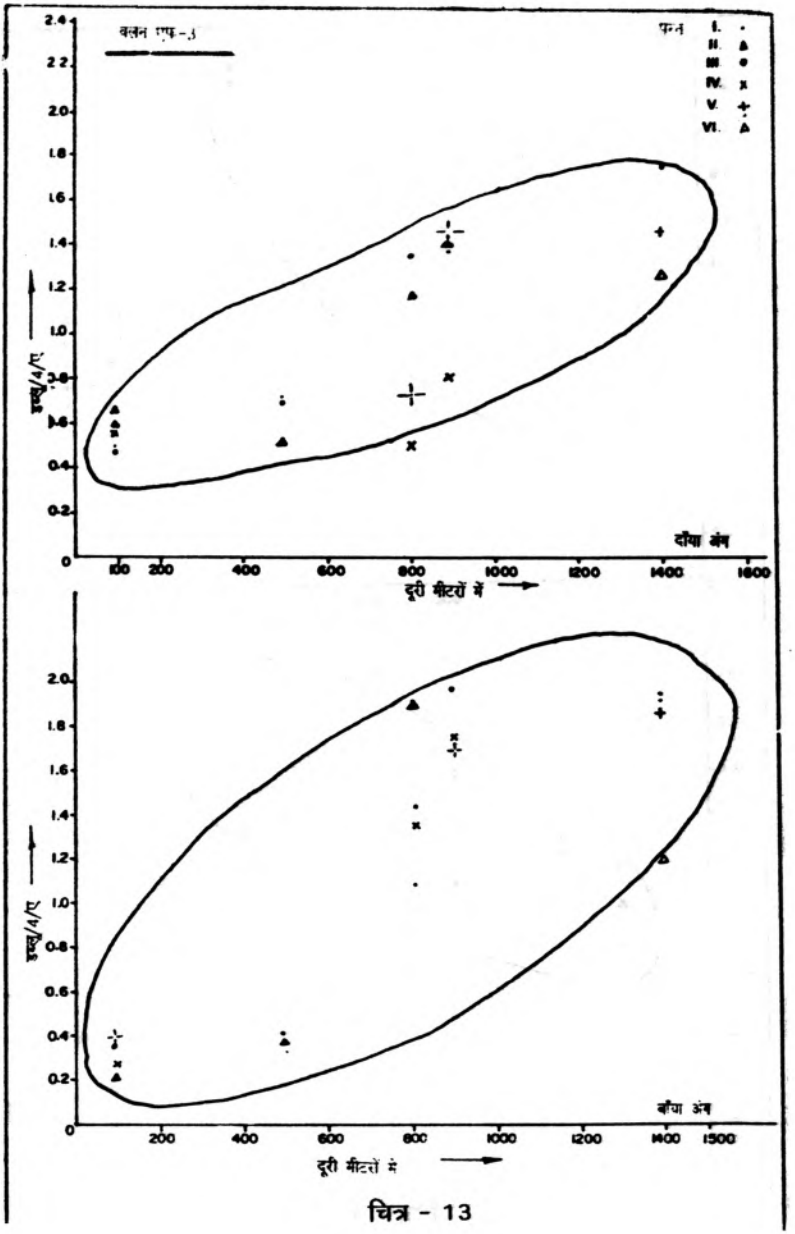

चित्र - 13

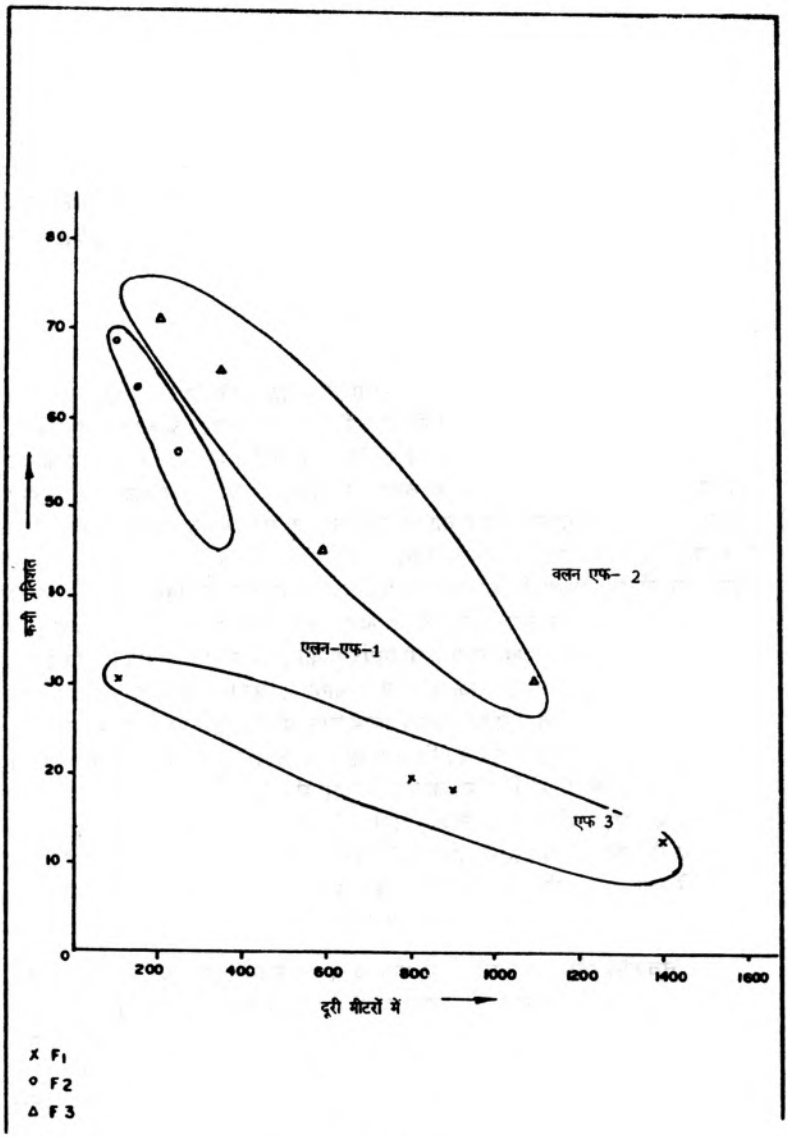
80
70
60
50
40
30
20
10
0
200
400
600
800
1000
1200
1400
1600
कमी प्रतिशत
दूरी मीटरों में
क्लन एफ- 2
एलन-एफ-1
एफ 3
X F1
o F2
Δ F3

चित्र - 14

तनाव से कैसे बचें ?

- डॉ॰ एस॰सी॰ शुक्ल,
श्री संजीव शुक्ल, एवं
श्री बृजेंद्र सिंह

परिचय

हमारा शरीर-तंत्र एक प्रकार का ऊष्मागतिक तंत्र है जिसमें शरीर तथा पर्यावरण के बीच पदार्थ, ऊर्जा तथा सूचना का विनिमय निरंतर चलते रहना आवश्यक है । जीवों में यह विनिमय समस्थैतिक तंत्र द्वारा नियंत्रित किया जाता है । मानव में (उसके मानसिक रूप से सर्वाधिक विकसित होने तथा वाणी व भावनाओं की अभिव्यक्ति की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक विकसित होने के कारण) यह नियंत्रण मनोस्थैतिक तंत्र द्वारा किया जाता है जो मस्तिष्क, अधश्चेतक तथा अंतःस्रावी ग्रंथियों से निर्मित जटिल संरचनाएं हैं । हमारा शरीर मूल जैविक क्रियाओं को एक आदर्श पर्यावरणी दशा में नियंत्रित करने योग्य मनोस्थैतिक तंत्र के साथ उत्पन्न होता है जिसका विकास निरंतर (प्राप्त सूचना संकेतों के आधार पर) शरीर तंत्र व उसके उपतंत्रों के नियंत्रण की दिशा में हुआ करता है और इसके फलस्वरूप हमारी उच्चतर मानसिक क्षमताएं व भावनाएं विकसित होती हैं । आज मानव के पर्यावरण (विशेषकर कृत्रिम पर्यावरण), सामाजिक परिवेश तथा मनोजैविक पर्यावरण की आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में कार्य करने के कारण मनोस्थैतिक नियंत्रण तंत्र शरीर तंत्र के कार्यों को नियंत्रित करने की दिशा में कार्य करने हेतु अग्रसर होने लगा है, जिससे वह शरीर की मूलभूत जैविक आवश्यकताओं का नियंत्रण सुचारु रूप से नहीं कर पा रहा है । इसी कारण उत्पन्न हो रहा है तनाव (स्ट्रेस) जो हमारे मस्तिष्क, शरीर तंत्र, अंतःस्रावी अंगों को प्रभावित करके अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर रहा है । साथ ही समस्त मनोभूमि को क्षत-विक्षत करके दोहरे व्यक्तित्व को भी जन्म दे रहा है ।

चुंबकीय मस्तिष्क आलेखों से पता चला है कि विश्रामावस्था में अल्फा-तरंगें तथा तनाव की दशा में बीटा-तरंगें उत्पन्न होती हैं । 2-5 वर्ष के बच्चों में डेल्टा-तरंगें उत्पन्न होती हैं क्योंकि उन्हें तनाव नहीं होता । मादक व्यसनावस्था में थीटा-तरंगें निकलती हैं । यौगिक क्रियाएं बीटा-तरंगों को डेल्टा तरंगों में परिवर्तित कर तो सकती हैं परंतु आवश्यकता है विद्युत्-चुंबकीय विधि के आविष्कार की जो अल्फा व बीटा-तरंगों को सीधे डेल्टा-तरंगों में परिवर्तित करके हमें तनाव से मुक्ति दिला सके ।

वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर-तंत्र एक विवृत ऊष्मागतिक तंत्र है जिसमें शरीर तंत्र व पर्यावरण के बीच पदार्थ, ऊर्जा तथा सूचना का विनिमय निरंतर होता रहता है । यह विनिमय शरीर तंत्र की संरचना व उसके कार्यों को नियंत्रित करता है । यदि यह नियंत्रण संतुलित है तो शरीर तंत्र व उसके उप तंत्र ठीक प्रकार से कार्य करते रहते हैं और हमारा शरीर स्वस्थ रहता है अन्यथा हमारा शरीर अस्वस्थ हो जाता है ।

शरीर-तंत्र एक जटिल समस्थैतिक तंत्र (homeostatic system) होता है, जिसमें सभी उपतंत्रों का पारस्परिक संबंध होता है और ये सारे उपतंत्र एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं । इन अनेक उपतंत्रों के पारस्परिक समन्वयन से शरीर तंत्र एक इष्टतम दशा में रहता तथा कार्य करता है । अन्य जीवों की अपेक्षा मानव मानसिक रूप से अधिक विकसित है व उसमें वाणी, भावनाएं तथा उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता भी अधिक विकसित हैं अत: मानव में यह नियंत्रण मनोस्थैतिक नियंत्रण तंत्र द्वारा किया जाता है । शरीरीय आधार से इस तंत्र में मस्तिष्क, अधश्चेतक व अंत:स्रावी ग्रंथियों का ही प्रमुख हाथ है जो हमें अपने शरीर में पर्यावरण की दशाओं व घटकों की सूचना (जो संवेदनांगों द्वारा प्राप्त होती है) के आधार पर शरीर के विभिन्न उपतंत्रों में परिवर्तन लाकर शरीर तंत्र की क्रिया को इष्टतम दशा में बनाए रखते हैं । मस्तिष्क अधश्चेतक व अंत:स्रावी ग्रंथियों के समन्वित ढंग से कार्य करने से ही शरीर में मनोस्थैतिक नियंत्रण बना रहता है (चित्र-1) ।

चित्र-1 शरीर में मनोस्थैतिक नियंत्रण प्रणाली

स्पष्ट है कि अधश्चेतक शरीर तंत्र की विभिन्न क्रियाओं पर नियंत्रण करके शरीर में निरंतर सामान्य समस्थैतिकता बनाए रखता है और हमारा शरीर पर्यावरण (प्राकृतिक) व हमारे द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्यावरण के विभिन्न परिवर्तनों के बावजूद भी आसानी से प्रभावित नहीं होता और यथासंभव उसकी कार्य प्रणाली उसे इष्टतम दशा में कार्य करने योग्य बनाए रखती है । इस विधि को दूसरे चित्र से अभिव्यक्त किया जा सकता है (चित्र-2) ।

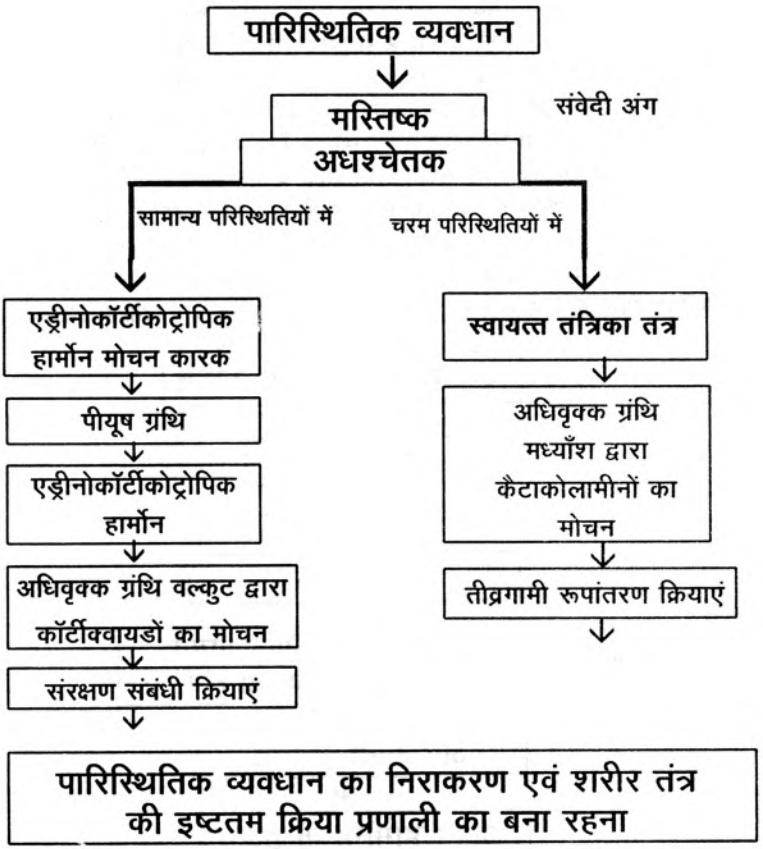

चित्र-2 शरीर तंत्र की समस्थैतिकता का चित्रण

अधश्चेतक में उत्तेजक क्रियाविधियों तथा संदमक क्रियाविधियों को संचालित करने की क्षमता होती है जिससे अभिप्रेरित व्यवहार में क्रमशः वृद्धि अथवा कमी की जाती है। देखा गया है कि अधश्चेतक के विभिन्न भागों में हुई क्षति विभिन्न उत्तेजक व संदमक व्यावहारिक अनुक्रियाओं को जगा सकती है। प्यास, निद्रा, यौनाचरण, मानसिक व्यवहार व भावनात्मक व्यवहार आदि की क्रियाविधियों का संचालन अधश्चेतक द्वारा किया जाता है। आतंक व हिंसा के व्यवहारों का नियंत्रण विशिष्ट अधश्चेतक प्रखंडों द्वारा किया जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि मानव प्राणिजगत् में सबसे अधिक विकसित जीव है, अतः उसका मनोस्थैतिक तंत्र भी सर्वाधिक विकसित है। शरीर के स्वस्थ एवं सुचारु रूप से चलते रहने के लिए मानव में मनोस्थैतिक तंत्र का सुचारु रूप से कार्य करते रहना अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि पर्यावरण से प्राप्त सूचना संकेतों को ग्रहण करके उन्हें शरीर तंत्र की इष्टतम दशा में रूपांतरित करने तथा आवश्यकतानुसार शरीर तंत्र के उपतंत्रों अथवा पर्यावरण को उचित सूचना भेजकर नियंत्रित करने हेतु इसकी बहुत आवश्यकता होती है।

प्रत्येक जीव के संदर्भ में उसकी अपने पर्यावरण की सीमाएँ तथा उनकी जटिलता निश्चित होती है। पर्यावरण की सीमाओं का विस्तार व उनकी जटिलता ही जीव की जीवन शैली को निश्चित करती है। हमारा पर्यावरण भौतिक पर्यावरण तथा मनोजैविक पर्यावरण दोनों से ही मिलकर बनता है, इसीलिए हमें भौतिक पर्यावरण व मनोजैविक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के कारक सम्मिलित रूप से प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण के परिवर्तनों के कारकों में तापमान, प्रकाश, प्रदूषण कारक, विकिरण, आविषालुता आदि को माना जा सकता है। मनोजैविक पर्यावरण के कारकों में पर्यावरण से सूचना संकेतों को ग्रहण करना, सूचना संकेतों का रूपांतरण, पारस्परिक व्यवहार, सामाजिक परिवेश में स्पर्धा, सहयोग से संबद्ध व्यवहार, आचरण और भावनाओं को माना जा सकता है। मानव के संदर्भ में मनौजैविक पर्यावरण के कारकों का भौतिक पर्यावरण के कारकों की अपेक्षा अधिक महत्व है (यह कहना कि हमें भौतिक पर्यावरण के कारक प्रभावित नहीं करते, अनावश्यक होगा)।

भौतिक पर्यावरण के विभिन्न कारक - जैसे तापमान (गर्मी, सर्दी, वर्षा ऋतु), प्रकाश की तीव्रता (दिन, रात, सुबह, शाम) - वायु-प्रदूषण, विशेषकर कार्बन मोनॉक्साइड आविषालुता हमारे हृद् संचरण तंत्र व तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं। सूर्य की किरणों का प्रदूषित वायु द्वारा अवशोषण होने से पराबैंगनी किरणों का पृथ्वी पर अधिक पहुँचना हमारी भावनात्मक दशा को प्रभावित करता है। हमारी शारीरिक दशा भी प्रभावित होती है। मनोजैविक पर्यावरण के कारकों में बढ़ता शहरीकरण, सूचना प्रवाह गति में तीव्रता, पारस्परिक व्यवहार (चाहे - अनचाहे), भौतिकता के प्रति बढ़ती स्पर्धा, दैनिक जीवन में स्थानाभाव, समयाभाव हमारी भावात्मक दशा को प्रभावित करते हैं। हमारी किसी इच्छा

का अपूर्ण रह जाना, इसका ठीक-ठीक विश्लेषण करने व अपनी चेतना में लाने में सक्षम न होना भी हमारी भावनात्मक दशा को प्रभावित करता है जिससे उग्रता, हिंसा, आदि उत्पन्न हो सकते हैं। इसका स्तर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों/व्यवसायों में भिन्न-भिन्न होता है।

भावनाओं के दो पक्ष हैं - एक मानसिक पक्ष जिसमें उत्पन्न करने वाले कारक की पहचान उसके द्वारा उत्पन्न प्रभाव तथा किया गया प्रयास आदि आते हैं। दूसरा पक्ष शारीरिक पक्ष है जिसमें अंतरांगों में हुए परिवर्तन व माँसपेशियों में हुए परिवर्तन आते हैं। ये विस्तृत होते हैं तथा स्वायत्त तथा कार्यिक तंत्रिका तंत्रों की समन्वित अनुक्रियाओं द्वारा होते हैं। शारीरिक परिवर्तनों में हृद्‌गति तीव्रता, श्वसन गति में तीव्रता, त्वचा का वाहिका-संकीर्णन, सिहरन, रोमों का खड़ा होना, पुतली का फैल जाना, मुँह सूखना, पेशियों का स्फुरण आदि भय प्रदर्शित करते हैं तथा अश्रुवाह, नाक से पानी निकलना, त्वचा का पीला पड़ना, पेशियों की ऐंठन, गति की कमी व कमजोरी दुःख के लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं। भावनाएं (जैसा कहा जा चुका है) हमारे शरीर व पर्यावरण के बीच हुई अन्योन्य क्रिया द्वारा उत्पन्न होती हैं तथा मानव में इनके प्रभाव आसानी से देखे जा सकते हैं। यह कहना अनावश्यक होगा कि अन्य जीवों में इनका प्रभाव नहीं पड़ता (क्योंकि वे प्रभावित तो होते हैं पर हमारी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकते)।

यद्यपि हमारे शरीर का मनौस्थैतिक नियंत्रण तंत्र भौतिक तथा मनोजैविक दोनों प्रकार के पर्यावरणों के विभिन्न कारकों के प्रभावों से शरीर तथा उपतंत्रों की क्रिया प्रणाली को सदैव नियंत्रित रखने का प्रयास करता है परंतु जब इन परिवर्तनों का प्रभाव हमारी सहनशीलता की देहली से अधिक बढ़ जाता है तब हमारे शरीर पर इनका अन्यथा प्रभाव पड़ना आरंभ हो जाता है, जिससे उत्पन्न होता है तनाव। ऐसी परिस्थिति को तनावपूर्ण परिस्थिति कहा जाता है।

तनाव (stress) एक बहुचर्चित शब्द है जिसे हम रोज़ प्रचार माध्यमों के द्वारा सुनते हैं तथा भलीभाँति समझते हैं पर उसकी ठीक-ठीक परिभाषा नहीं दे सकते, जैसे प्रेम व घृणा की।

प्रसिद्ध चिकित्सक हेन्स सैले (1956) ने इसे **'शरीर तंत्र पर उत्पन्न आवश्यकता की पूर्ति हेतु अविशिष्ट क्रिया'** का नाम दिया। फैसल (1962) के अनुसार यह **'शरीर की सामान्य विश्रामावस्था से अविशिष्ट विपथन'** तथा बर्न (1963) के अनुसार **'जीव व उसके अपने पर्यावरण के बीच स्थापित किया गया संबंध'** है। फिर भी इसकी एक समुचित व्याख्या संभव नहीं है क्योंकि यह व्यक्ति विशेष की अपनी परिस्थितियों में उत्पन्न एक विशिष्ट अनुभूति है। हर व्यवसाय और परिस्थिति में इसका अलग-अलग स्वरूप होता है। व्यस्त रहने वाले लोगों, उद्योगपतियों, इंजीनियरों, डाक्टरों में तनाव, खिलाड़ी की पेशियों की थकान, गृहिणियों की चिंता, यातायात के सिपाही का ध्यान आदि इसके कुछ अलग-अलग स्वरूप हैं, जिनके आयाम स्थितियों के अनुसार अलग-अलग

होते हैं । तनाव की अनुक्रिया के फलस्वरूप हमारे अंदर सचेतक अनुक्रिया एवं अनुकूलन अनुक्रिया समापनावस्था हैं जिन्हें सामूहिक रूप से सामान्य अनुकूलन संलक्षण के नाम से जैव आयुर्विज्ञानी जानते हैं ।

तनाव की यह दशा अधश्चेतक के माध्यम से हमारे तंत्रिका व अंतःस्रावी तंत्रों को प्रभावित करके अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों को जन्म देती है, जिसका कारण है ऐसी स्थिति में कॉर्टीकोट्रोपीनों व कैटाकोलामीनों का अधिक स्रवण जिससे क्रमशः 'पलायन या अग्रसरण' क्रियाओं द्वारा हम तनाव की स्थिति से निपट तो लेते हैं पर शरीर पर पड़ने वाले अनेक सामान्य प्रभावों (चयापचय नियंत्रण, प्रतिरक्षा, शक्ति, जल व आयनों की मात्रा का नियंत्रण आदि) से शरीर वंचित रह जाता है । दूसरा प्रभाव यह भी होता है कि हमारी मनोभूमि को क्षतविक्षत करके उत्पन्न होती है 'दोहरे व्यक्तित्व' की दशा । दोहरे व्यक्तित्व के संघर्षों से एक हानि तो यह होती है कि हमारे शरीर की अधिकतम ऊर्जा का ह्रास होता है और इस संघर्ष की वेदना मुक्ति के लिए हम खोजते हैं मादक द्रव्य व्यसन वाला मार्ग (जिनके दूरगामी प्रभाव होते हैं) ।

उल्लेखनीय है कि हमारा शरीर मूल जीवन क्रियाओं को एक आदर्श पर्यावरण दशा में नियंत्रित कर सकने योग्य मनोस्थैतिक नियंत्रण तंत्र के साथ जन्म लेता है । जन्म के बाद उपलब्ध वास्तविक पर्यावरण की दशाओं व उनमें संभावित परिवर्तनों की दशा में इष्टतम कार्य कराने व शरीर तंत्र को सुचारु रूप से कार्य कराने के लिए मनोस्थैतिक नियंत्रण तंत्र को वास्तविक पर्यावरण से प्राप्त सूचना संकेतों के आधार पर पुनर्गठित करना आवश्यक होता है ताकि शरीर तंत्र युवावस्था तक उपलब्ध वास्तविक पर्यावरण के अनुरूप सुव्यवस्थित ढंग से कार्य कर सके ।

जिस जीव का जितना विस्तृत व जटिल पर्यावरण होता है उसका उतना ही लंबा बचपन का काल होता है । मानव में बचपन तथा युवावस्था का काल सबसे लंबा होता है तथा उसके मनोस्थैतिक तंत्र का विकास अधिकांशतः इसी समय होता है । जन्म के पश्चात् ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सूचना संकेतों को हमारे मनोस्थैतिक तंत्र द्वारा प्रक्रमित करके छोटे-छोटे हानिरहित प्रयोग द्वारा पर्यावरण की विभिन्न दशाओं (हानिकारक, लाभदायक) के अनुरूप जीवन शैलियों का निर्धारण किया जाता है । साथ ही शरीर के सभी उपतंत्रों पर मनोस्थैतिक नियंत्रण तंत्र का नियंत्रण प्राप्त किया जाता है । इसी विकास के फलस्वरूप हमारी उच्चतर मानसिक क्षमताएं तथा भावनाएं विकसित होती हैं ।

चुंबकीय मस्तिष्क आलेखों से विदित है कि विश्रामावस्था/सामान्य मानसिक दशा में हमारे मस्तिष्क में एल्फा-तरंगे उत्पन्न होती हैं । तनाव की दशा में बीटा व बीटा-।। तरंगें उत्पन्न होती हैं । दो से पाँच वर्ष की आयु के बच्चों में डेल्टा तरंगों की रचना तथा मादक द्रव्य व्यसन की दशा में थीटा तरंगें उत्पन्न होती हैं । हमारा मस्तिष्क जैविक तथा रासायनिक कारकों से देर में प्रभावित होता है । इसका कारण यह है कि एक सीमा तक

तो हमारा मस्तिष्क अपनी कोशिकाओं में बढ़ी वैद्युत क्रियाशीलता का निष्क्रियण कराके अपनी वास्तविक स्थिति को पुनः प्राप्त कर सकता है परंतु लंबे काल तक ऐसी बढ़ी हुई क्रियाशीलता का निष्क्रियण नहीं कर पाता है जिससे तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। तनाव की स्थिति जन्म देती है चिंताओं को तथा इससे उत्पन्न होते हैं अनेक रोग । जैव आयुर्विज्ञानी अब यह निश्चित रूप से मानने लगे हैं कि कोई भी रोग पहले मनोवैज्ञानिक रूप में ही उत्पन्न होता है और बाद में विकृति का रूप ले लेता है । फिर एक दुश्चक्र का शरीर में प्रादुर्भाव हो जाता है (चित्र-3) ।

इन अनेक रोगों की चर्चा करना यहाँ संभव नहीं है पर संक्षेप में थोड़ी बहुत बात एक तालिका द्वारा व्यक्त की जा सकती है (चित्र-4) ।

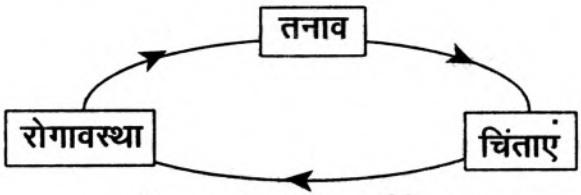

चित्र-3 तनाव जनित शारीरिक दुश्चक्र

तंत्र	अक्रम विकार
जठरांत्रीय तंत्र	ग्रहणी व्रण, अंतड़ियों की क्रिया प्रणाली में व्यवधान, मलबद्धता, दस्त आदि
श्वसन तंत्र	श्वसन में व्यवधान, दमा
हृद्-वाहिका तंत्र	उच्च रक्तचाप, हृद्पेशीय स्थानीय अरक्तता, हृद्शूल, हृदयाघात आदि ।
चयापचय	अधिभोजिता, विक्षिप्तज अरुचि
विविध	सिर दर्द, त्वचीय अक्रम, विकार, अधः पृष्ठ वेदना, मनोयौन समस्याएं, प्रतिरक्षा ह्रास, कैंसर आदि ।

चित्र-4 तनाव जनित कुछ रोगों को प्रदर्शित करती तालिका

प्रश्न यह उठता है कि इस तनाव की समस्या को कैसे कम किया जाए ? इससे संबद्ध सूचना संकेतों को कैसे मनोस्थैतिक नियंत्रण तंत्र द्वारा रूपांतरित कराकर शरीर तंत्र को सुचारु रूप से इष्टतम दशा हेतु क्रियाशील बनाकर कर रखा जाए। ये समस्याएं अत्यंत जटिल रूप में आज के विकासशील समाज में सामाजिक व व्यक्तिगत दोनों ही रूपों में विद्यमान हैं। यद्यपि हम इससे पूरी तरह छुटकारा तो नहीं पा सकते फिर भी इसके दुष्परिणामों के घातक प्रभावों को कम करने का कुछ न कुछ प्रयास तो अवश्य कर सकते हैं। इसके लिए हम निम्नलिखित प्रयास कर सकते हैं :

1. अपने व्यावसायिक जीवन में अपने अंदर की निहित क्षमताओं के सीमा से अधिक आगे जाने व शिखर पर पहुँचने की प्रवृत्ति को कम करने का प्रयास करते हुए आत्मतुष्टि करना सीखें। इस बात से यह आशय है कि हम अपने व्यक्तित्व में निहित अवरोधों के प्रति जागरूक रहें व अपने शरीर तंत्र को उसकी सीमाओं के भीतर ही चलाएं न कि कम कार्य करें या कार्य बंद ही कर दें।

2. अपनी अभिव्यक्ति का पूरा ध्यान रखें तथा अपने को हमेशा अभिव्यक्त करें। ऐसा न करने से अनावश्यक तनाव होगा जिसके परिणाम भी दुष्कर होंगे क्योंकि अपूर्ण अभिव्यक्ति अवसाद उत्पन्न करती है।

3. सहयोग मानव का जन्मजात गुण है। छोटे बच्चों में (जिनका व्यवहार अधिक जटिल नहीं होता) यह गुण अधिक देखने को मिलता है और बड़ों में शनैःशनैः इसका अभाव होता जाता है। इस गुण का अपनी सीमा में प्रयोग करते हुए हम संबद्ध अनावश्यक तनाव से बच सकते हैं।

4. भौतिक संसाधनों की प्राप्ति हेतु बढ़ती स्पर्धा अनावश्यक तनाव का मुख्य कारण है जिसे कम करने के लिए हमें केवल इसी क्षेत्र में स्पर्धा के आकलन की प्रवृत्ति को कम करके (यदि त्यागना संभव न हो) स्पर्धा के दूसरे क्षेत्रों को भौतिकता के समकक्ष दर्जा देने की आवश्यकता पर बल देना पड़ेगा।

5. अपनी भूल स्वीकार कर लेना हमें अनावश्यक तनाव से मुक्त रख सकता है।

6. हमारे सामाजिक परिवेश की देन है स्थानबद्ध जीवन जीने की कला जिसमें हमारे पास अभिरुचियों के लिए कोई स्थान नहीं है। यह जीवन भी अनावश्यक तनाव उत्पन्न करता है। अपनी अभिरुचियों को सुचारु रूप से स्थान देकर हम अनावश्यक तनाव दूर कर सकते हैं।

7. यौगिक क्रियाएं मस्तिष्क में डेल्टा-तरंगें उत्पन्न कर सकती हैं परंतु इसके लिए आवश्यकता है नियमित अभ्यास की व उत्तम प्रशिक्षण की । ध्यान आदि क्रियाओं द्वारा मस्तिष्क में डेल्टा तरंगों की स्थिति उत्पन्न कराके तनाव के प्रभाव को काफी हद तक घटाया जा सकता है ।

8. विद्युत्-चुंबकीय विधि के अध्ययनों से किसी ऐसे यंत्र का आविष्कार जिससे बीटा व बीटा-।। तरंगों को डेल्टा तरंगों में परिवर्तित किया जा सके । यदि निकट भविष्य में यह संभव हो सके तो इस समस्या का कुछ सीमा तक निराकरण हो सकेगा ।

°°°°°

बहुप्रतीक्षित मलेरिया वैक्सीन

- श्री संजीव शुक्ल,
डॉ॰ यू॰डी॰ शर्मा,
डॉ॰ ऋचा शुक्ला,
डॉ॰ एस॰सी॰ शुक्ल एवं
सुश्री रीना सिंह

मलेरिया, जिसे 'एग्यू' या 'स्वैम्प डिजीज' के नाम से भी जाना जाता है, एक द्विपोषकोय प्रोटोज़ोआ 'प्लाज्मोडियम' के द्वारा उत्पन्न होता है । पहले माना जाता था कि यह रोग दलदल की हवा के द्वारा फैलता है (मैल = बैड, एरिया = एयर) परंतु बाद में यह धारणा भ्रामक पाई गई तथा रोनाल्ड रॉस नामक वैज्ञानिक, जिन्हें कि 1902 में नोबेल पुरस्कार मिला, ने बताया कि यह रोग मच्छरों (मादा एनोफिलीज) द्वारा फैलाया जाता है तथा प्लाज़्मोडियम के जीवन-चक्र का कुछ भाग मच्छर में पूरा होता है । उस समय से लेकर अब तक मलेरिया की रोकथाम तथा चिकित्सा हेतु अनेकानेक अनुसंधान किए गए जिनमें वाहक (मच्छर) के नियंत्रण हेतु डी.डी.टी. का प्रयोग तथा परजीवी प्लाज्मोडियम के नियंत्रण हेतु कुनैन (जोकि सिनकोना पेड़ की छाल से प्राप्त होती थी) के संश्लेषित प्रतिरूपों, जैसे - क्लोरोक्वीन, प्राइमाक्वीन, कामाक्वीन का निर्माण प्रमुख है । क्लोरोक्वीन तथा डी.डी.टी.के व्यापक प्रयोग और विश्व स्वास्थ्य संगठन के अभियान के बाद 1960 के दशक तक ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मलेरिया पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया गया है और अब यह जानपदिक रोग के रूप में विश्वव्यापी नहीं है । परंतु 1960 के बाद के वर्षों में मलेरिया ने पुनः जानपदिक रोग का उग्र रूप लेकर विश्व की अधिकांश जनसंख्या को अपनी चपेट में ले लिया व वैज्ञानिकों को इसकी रोकथाम के नए उपाय खोजने हेतु विवश कर दिया ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट (1991) के अनुसार विश्व में मलेरिया से संक्रमित व्यक्तियों की संख्या लगभग 267 करोड़ व संक्रमण हेतु संभावित व्यक्तियों की संख्या लगभग 210 करोड़ है तथा विश्व के अधिकांश भागों में मलेरिया एक जानपदिक रोग के रूप में में फैला हुआ है । मानव में मलेरिया मुख्यतया प्लाज्मोडियम की चार जातियों - 'वाइवेक्स', 'फैल्सीपेरम', 'मलेरियाई' तथा 'ओवेल' द्वारा उत्पन्न किया जाता है । इन चारों जातियों में 'प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम' के द्वारा उत्पन्न अत्यंत घातक प्रमस्तिष्कीय मलेरिया, मृत्युदर सर्वाधिक होने के कारण, अत्यधिक खतरनाक है । फैल्सीपेरम

मलेरिया से संक्रमित रक्त-कणिकाएं आपस में चिपककर थक्का बना देती हैं तथा रक्त-वाहिनियों का मार्ग अवरुद्ध कर देती हैं जिससे मस्तिष्क में रक्त वाहिकाएं फट जाती हैं और अल्प समय में रोगी की मृत्यु हो जाती है । मलेरिया द्वारा मृत्यु दर में लगभग 85 प्रतिशत मौतें फैल्सीपेरम मलेरिया के कारण होती हैं जिसके सर्वाधिक शिकार अल्प आयु के बच्चे होते हैं ।

मलेरिया का पुनर्प्रादुर्भाव मुख्यतया दो कारणों से संभव हुआ । प्रथम, डी.डी.टी. जैसे घातक रसायन के लिए मच्छरों में प्रतिरोध क्षमता का पैदा होना तथा द्वितीय, क्लोरोक्वीन जैसी प्रभावी औषधि के लिए मलेरिया परजीवी प्लाज्मोडियम का सहनशील हो जाना और इसके प्रतिरोधी विभेदों का बन जाना । 1990 तक आते आते एनोफिलीज मच्छर डी.डी.टी. ही नहीं बल्कि अन्य घातक रसायनों, जैसे - बी.एच.सी. तथा मैलाथियान, के प्रति भी प्रतिरोध क्षमता उत्पन्न कर चुके हैं तथा इन रसायनों का मच्छरों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता (जियाग्लाऊ 1990) । प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम में क्लोरोक्वीन के प्रति प्रतिरोध क्षमता का पता सर्वप्रथम थाईलैंड में 1959 में तथा कोलंबिया में 1960 में चला । तब से अब तक प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम के प्रतिरोधी विभेद दक्षिणी अमेरिका, पूर्वी एशिया, पूर्वी अफ्रीका समेत पूरे भारतीय प्रायद्वीप में फैल चुके हैं । इन प्रतिरोधी विभेदों पर क्लोरोक्वीन व प्राइमेथमीन मिश्रण का कोई भी घातक प्रभाव नहीं है ।अभी हाल में एक अन्य रसायन 'मेफलोक्वीन', जोकि मलेरिया परजीवी की शाइजोन्ट प्रावस्था पर प्रभाव कारी है, का निर्माण किया गया है तथा यह मलेरिया नियंत्रण में कुछ सीमा तक सहायक भी है । नए कीटनाशकों व औषधियों के निर्माण में मुख्यत: दो बाधाएं सामने आती हैं : एक तो, अनुसंधान कार्यों व उत्पादन का अत्यंत खर्चीला होना तथा दूसरी, उसमें अत्यधिक समय का लगना । यद्यपि अभी जल्द ही कुछ वनस्पतियों के औषधीय गुण सामने आए हैं, जैसे चीन देश की वनस्पति 'क्विंगास' तथा भारतीय प्रायद्वीप का सर्वरोगहारी पौधा 'नीम' जो कि प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम के प्रतिरोधी विभेदों पर भी प्रभावकारी है । इनके तत्वों का रासायनिक विश्लेषण हो रहा है तथा भविष्य में संभवत: क्लोरोक्वीन की तरह किसी अन्य औषधि के बनने की पूरी संभावना है ।

इधर तीन दशकों में प्रतिरक्षा विज्ञान, आणविक जैव विज्ञान, जीन-आनुवंशिकी व जैव प्रौद्योगिकी जैसी जीवविज्ञान की अनेक नई शाखाओं के विकसित होने से अनेक बीमारियों से बचाव संभव हुआ है तथा खसरा, पोलियो व हिपैटाइटिस-बी. जैसी घातक बीमारियों के वैक्सीन बनाए गए हैं जोकि मानव में इन बीमारियों के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता पैदा करके बीमारी फैलने से रोकते हैं । वैक्सीन मुख्यतया बीमारी पैदा करने वाले परजीवी से बनाए जाते हैं । उपरोक्त बीमारियों में वैक्सीन की सफलता ने मलेरिया हेतु वैक्सीन निर्माण करने की दिशा में वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया है । आज विश्व के हर देश में मलेरिया वैक्सीन निर्माण हेतु अनुसंधान कार्य चल रहा है । खसरा, पोलियो व हिपैटाइटिस-बी. की तुलना में मलेरिया वैक्सीन निर्माण मुख्यत: निम्नलिखित कारणों से कठिन है :

1. मलेरिया परजीवी का अन्य बीमारियों के परजीवियों से अत्यधिक बड़ा होना ।
2. मलेरिया परजीवी का जीवन-चक्र अन्य परजीवियों की तुलना में जटिल होना ।
3. परजीवी के जीवन-चक्र की समस्त प्रावस्थाओं के एन्टीजनों का अलग-अलग होना ।

चूँकि मलेरिया परजीवी की मानव में पायी जाने वाली सभी प्रावस्थाओं के सतही एन्टीजन अलग-अलग होते हैं अतः प्रत्येक प्रावस्था के लिए अलग-अलग वैक्सीन की आवश्यकता होती है । मानव में मलेरिया के प्रभाव के नियंत्रण हेतु मिश्रण वैक्सीन की आवश्यकता दृष्टिगत होती है जोकि एक समय में, एक साथ, स्पोरोज़ोआइट रक्त-कणिका प्रावस्थाओं तथा गैमीटोसाइट प्रावस्थाओं पर समान रूप से प्रभावकारी हो सके । यद्यपि अभी तक इस प्रकार की कोई वैक्सीन उपलब्ध नहीं है परंतु भविष्य में इसके उपलब्ध होने की पूरी संभावना है । वैक्सीन निर्माण हेतु मलेरिया -परजीवी की कुछ प्रमुख प्रावस्थाएं लक्षित की गई हैं । इनमें स्पोरोज़ोआइट, सिग्नेट रिंग प्रावस्था, मीरोज़ोआइट, शाइज़ोन्ट तथा गैमीटोसाइट प्रावस्थाएं प्रमुख हैं । अभी तक वैज्ञानिकों ने अपना ध्यान मुख्यतः स्पोरोज़ोआइट व मीरोज़ोआइट प्रावस्था तथा इसकी वेधन क्षमता पर केंद्रित किया है । इस दिशा में कुछ प्रमुख प्रयास इस प्रकार से हैं :

I. स्पोरोजोआइट वैक्सीन या स्पोरोन्टीसाइडल वैक्सीन :

स्पोरोज़ोआइट मलेरिया-परजीवी की संक्रामक प्रावस्था है, जिसका मानव रक्त में प्रवेश मच्छर की लार के साथ काटने के दौरान होता है । आधे घंटे बाद स्पोरोज़ोआइट प्रावस्था रक्त से यकृत् में चली जाती है तथा यकृत् कोशिकाओं का भेदन कर उनमें अपनी संख्या बढ़ाती है और रक्त की प्रतिरक्षी कोशिकाओं के लिए अदृश्य हो जाती है । स्पोरोज़ोआइट की सतह पर एक विशेष प्रकार के प्रोटीन के कण पाए जाते हैं जिन्हें **सरकम स्पोरोज़ोआइट प्रोटीन** (सी०एस० प्रोटीन) कहा जाता है । इन्हीं के कारण रक्त की प्रतिरक्षा कोशिकाएं स्पोरोज़ोआइट पर कोई असर नहीं दिखा पातीं । न्यूयार्क विश्वविद्यालय के **विक्टर न्यूसेनविग** नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम चूहे में इन प्रोटीनों के लिए 'मोनोक्लोनल एन्टीबॉडी' बनाए तथा बाद में **प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम** व **वाइवेक्स** के लिए भी मोनोक्लोनल एन्टीबॉडी बनाए । यदि इस एन्टीबॉडी को स्पोरोज़ोआइट के साथ मिला दिया जाए तो उसके सतही प्रोटीन की तह उखड़ जाती है और स्पोरोज़ोआइट संक्रामक नहीं रह जाते क्योंकि सी.एस. प्रोटीन के न होने पर रक्त की प्रतिरक्षा कोशिकाएं इन्हें नष्ट कर देती हैं तथा स्पोरोज़ोआइट यकृत् कोशिकाओं का भेदन नहीं कर पाते । इसी प्रकार डेम इत्यादि (1984) ने प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम के जीन को इश्चिरिश्चिया कोलाई नामक जीवाणु में क्लोन किया है तथा मॉस व स्मिथ

(1987) ने प्लाज्मोडियम के सी.एस. प्रोटीन जीन को बैक्सीनिया विषाणु (जिसके नाम पर वैक्सीन नाम पड़ा है) में प्रवेश कराकर खरगोश में एन्टीबॉडी तैयार किए हैं । गार्डन (1990) इत्यादि ने रिकौम्बीनेन्ट डी.एन.ए. तकनीक का प्रयोग करते हुए **ई॰ कोलाई** नामक बैक्टीरिया से **'पी॰वी॰एस॰वी॰ – 1'** नामक वैक्सीन प्राप्त की है जो कि **प्लाज्मोडियम वाइवेक्स** पर पूर्ण प्रभावी है तथा मानव पर इसके सफलतम परीक्षण किए जा चुके हैं । अभी हाल में पता चला है कि छोटे संश्लेषित प्रोटीन के एन्टीबॉडी उन पूर्ण प्रोटीनों से जुड़ जाते हैं जिनमें संश्लेषित प्रोटीनों के सदृश अमीनो अम्ल कम पाया जाता है ।

अत: अब केवल उन छोटे सक्रिय प्रोटीन अणुओं के कृत्रिम संश्लेषण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है तथा भविष्य में संश्लेषित वैक्सीन के निर्माण की संभावनाएं दिन प्रति दिन प्रबल होती जा रही हैं । संश्लेषित वैक्सीन, परजीवी आधारित वैक्सीन की तुलना में प्रयोग में आसान है क्योंकि इसके प्रयोग से मानव पर अन्य उपप्रभाव, जैसे प्रतिरक्षाशमन, शोथ या सूजन तथा आविषालुता इत्यादि नहीं पड़ते । संश्लेषित वैक्सीन की दिशा में सर्वप्रथम प्रयास कोलंबिया विश्वविद्यालय के मैनुएल पेटारियो नामक वैज्ञानिक ने किया । इन्होंने 1987 में प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम के लिए 18 प्रोटीन अणु संश्लेषित किए जिनमें एस.पी.एफ. 35.1, 55.1 तथा 83.1 के मिश्रण ने बंदरों पर आशाजनक परिणाम दिए हैं । 1979 में इसी वैज्ञानिक ने एक अन्य वैक्सीन 'एस.पी.एफ.-66' बनाई तथा अफ्रीका में मानव पर किए गए परीक्षणों को 1994 के 'लैन्सेट' नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित किया । यह वैक्सीन 77 प्रतिशत प्रभावी है तथा मानव को मलेरिया से पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने में सहायक है । मैनुएल पेटारियो ने इसके सर्वाधिकार विश्व स्वास्थ्य संगठन को सौंप दिए है तथा भविष्य में यह वैक्सीन 50 सेंट की कीमत पर जनसामान्य को उपलब्ध होगी । इस महान उपलब्धि के लिए मेनुएल पेटारियो को रॉबर्ट कॉख पुरस्कार से सम्मानित किया गया है । यद्यपि स्पोराज़ोआइट वैक्सीन से पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन नहीं मिलता है क्योंकि यदि त्रुटिवश एक भी स्पोरोज़ोआइट सुरक्षित रहकर यकृत् में पहुँच जाता है तो मलेरिया का कारण हो सकता है ।

II. रक्त की अलैंगिक प्रावस्थाओं हेतु वैक्सीन या शाइजोन्टीसाइडल वैक्सीन

स्पोरोज़ोआइट की भाँति रक्त-प्रावस्थाओं-मुख्यत: मीरोज़ोआइट, सिग्नेट रिंग प्रावस्था तथा शाइजोन्ट प्रावस्था की बाहरी सतर पर कुछ प्रोटीन के अणु पाए जाते हैं । मीरोज़ोआइट की सतह पर 'एस' नामक प्रोटीन पाया जाता है तथा

कापेल (1983) व होल्डर इत्यादि (1985) ने इस प्रोटीन के जीन को जीवाणु में क्लोन कर लिया है जोकि स्क्वेरल बंदर में फैल्सीपेरम मलेरिया के लिए प्रतिरक्षा उत्पन्न करता है । इसी प्रकार 'रिंग प्रावस्था' की बाहरी सतह पर 'रेसा' प्रोटीन (आर.ई.एस.ए.) पाया जाता है तथा जीवाणु में इसके जीन-क्लोनिंग द्वारा जो वैक्सीन बनाए गए हैं वे फैल्सीपेरम मलेरिया के लिए प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं ।

III. गैमीटोसाइटोसाइडल वैक्सीन

गैमीटोसाइट मलेरिया-परजीवी की वह प्रावस्था है जो पुनः मच्छर के आमाशय में रक्त के साथ पहुँचकर परजीवी का जीवन-चक्र पूरा करने में सहायक होती है और मच्छर में परिवर्धन के विभिन्न चरणों को पूरा करने के बाद स्पोराज़ोआइट में बदलकर मच्छर को पुनः संक्रमण हेतु तैयार करती है । गेमीटोसाइट की सतह पर पाए जाने वाले प्रोटीन अणुओं का अध्ययन किया जा रहा है । यदि यह वैक्सीन बन गई तो इससे संक्रमित मानव को तो कोई लाभ नहीं होगा परंतु यह मलेरिया के प्रसार को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । आधुनिकतम ट्रांसजीनिक वाहक उत्पादन तकनीक (क्रॉम्पटन 1994) तथा प्रसार रोधक वैक्सीन (बिगनर इतयादि 1987) के प्रयोग से मलेरिया के संचार प्रसार को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है । प्रसार रोधी वैक्सीन मलेरिया-परजीवी के युग्मक तथा ऊकाइनीट प्रावस्थाओं पर पाए जाने वाले एन्टीजन पर प्रभाव डालती हैं तथा मच्छर के आमाशय में उपस्थित एन्टीबॉडी युग्मकों व ऊकाइनीट के परिवर्धन को रोक देती हैं । यदि इन एन्टीबॉडी के निर्माण हेतु आवश्यक जीन को मच्छर में प्रविष्ट करा दिया जाए तो इस प्रकार के वैक्सीन का निर्माण भविष्य में संभव है । प्रायोगिक अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि अब मच्छर के भ्रूण में माइक्रोइन्जेक्शन विधि से वांछित जीन प्रविष्ट कराए जा सकते हैं और इस प्रकार प्राप्त मच्छरों को **ट्रॉंसजीनिक वाहक** कहा जाता है । इस प्रकार के सफल प्रयोग फ्रूटफ्लाई ड्रोसोफिला में सफलतापूर्वक किए जा चुके हैं तथा मच्छरों के लिए इस दिशा में अनुसंधान कार्य प्रगति पर है । प्रायोगिक परिणामों से प्रतीत होता है कि भविष्य में प्रसार रोधी वैक्सीन का निर्माण संभव होगा जिससे कि मलेरिया के संचार प्रसार पर प्रभावकारी रोक लगाई जा सकेगी ।

मलेरिया वैक्सीन बनाने के उपरोक्त सभी प्रयास, जोकि मानव जाति को मलेरिया से सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होंगे, निरंतर प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं । इनमें से अनेक तो अभी तक प्रायोगिक स्तर पर हैं लेकिन कुछ मानव परीक्षणों पर खरे उतरे हैं । अधिकांश प्रयास किन्हीं विशेष प्रावस्थाओं हेतु वैक्सीन निर्माण करने की दिशा में है परंतु कुछ अनुसंधान कार्य मिश्रण वैक्सीन निर्माण की दिशा में भी जारी हैं जोकि प्लाज्मोडियम की सभी प्रावस्थाओं के लिए संपूर्ण सुरक्षा प्रदान

करेंगे । परजीवी आधारित वैक्सीन के साथ-साथ संश्लेषित वैक्सीन कं निर्माण की दिशा में भी उत्साहजनक कार्य हो रहा है । इनके निर्माण के फलस्वरूप काफी कठिनाइयों का निराकरण होगा क्योंकि इनका उत्पादन सस्ता होगा तथा इनके प्रयोग से उपप्रभाव पड़ने की संभावनाएं कम होंगी । यद्यपि अभी तक जनसामान्य के उपयोग हेतु कोई भी मलेरिया वैक्सीन उपलब्ध नहीं है तथापि 'एस.पी.एफ.66' के निर्माण के बाद भविष्य हेतु आशा की किरण दिखाई पड़ रही है । अभी तक उपलब्ध अनुसंधान परिणामों के आधार पर प्रतीत होता है कि शीघ्रातिशीघ्र मलेरिया जैसी घातक महामारी से सुरक्षा प्रदान करने हेतु मलेरिया वैक्सीन जनसामान्य को उपलब्ध होगा । अभी यह स्पष्ट नहीं है कि क्लोरोक्वीन की तरह भविष्य में मलेरिया वैक्सीन हेतु प्लाज्मोडियम में प्रतिरोधी क्षमता पैदा होगी या नहीं तथा ट्राँसजीनिक मच्छरों के पारिस्थितिक तंत्र में प्रवेश के बाद जैवमंडल तथा जैव विकास पर क्या प्रभाव पड़ेंगे ? इन प्रश्नों का उत्तर अभी समय के गर्भ में है । इन आगामी समस्याओं की तरफ जीववैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि मलेरिया की विभीषिका को देखते हुए यदि इन प्रयासों से एक या दो दशक तक कुछ राहत मिली है तो क्लोरोक्वीन और डी.डी.टी. की तरह इन्हें भी इस्तेमाल करना अनुचित नहीं ठहराया जा सकेगा ।

संदर्भ :

1. *जीना कोटाला : दि सर्च फॉर मलेरिया वैक्सीन, साइंस; 226 . 679-681 (1984)*
2. *जॉन मेक्डाक्स : मलेरिया वैक्सीन इन साइट, नेचर; 310 . 541 (1984)*
3. *मैनुएल पेटारियो : इन्ट्रोडक्शन टु प्रोटेक्टिव इम्युनिटी अगेन्स्ट एक्सपेरीमेन्टल इन्फेक्शन विद मलेरिया यूजिंग सिन्थेटिक पेप्टाइड*
4. *रंजन रामास्वामी : प्रोग्रेस टुवर्ड्स ए मलेरिया वैक्सीन,* ***इन्डियन जर्नल ऑफ मलेरियोलौजी;*** 24 1 7 (1987)
5. गार्डन इत्यादि : सेफ्टी एंड इम्यूनोजिनीसिटी ऑफ ए प्लाज्मोडियम वाइवेक्स स्पोरोज़ोआइट वैक्सीन, **अमेरिकन जर्नल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन एंड हाइजीन; 42(6)**
6. मेरिलीन पोइरी व निकोल पाश्चर : दि रेजिस्टेंस ऑफ इन्सेक्ट्स टु इन्सेक्टीसाइड्स, दि वर्ड साइन्टिस्ट; 53 : 38-47 (1993)
7. मैनुएल पेटारियो : एस.पी.एफ.-66 वैक्सीन, लैंसेट, अक्तूबर (1994)
8. क्रॉम्पटन इत्यादि : जेनेटिक मैनिपुलेशन ऑफ इन्सेक्ट वेक्टर ऐज ए स्ट्रेटिजी फॉर कंट्रोल ऑफ वेक्टर बॉर्न डिजीज़ेज, **एनल्स ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन एंड पैरासिटोलौजी** 88(1) : 3-12(1994)

० ० ० ० ०

तृतीय खंड

राष्ट्रीय शब्दावली कार्यशाला का कार्यविवरण तथा संस्तुतियां

श्री वीर सिंह आर्य

प्रो॰ प्रेमस्वरूप सकलानी, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की प्रेरणा से एवं उनकी संकल्पनाओं के अनुसार शब्दावली आयोग ने राष्ट्रीय संग्रहालय, जनपथ, नई दिल्ली के सभागार में दिनांक 28 नवंबर से 30.11.1995 तक राष्ट्रीय शब्दावली कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य यह था कि शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के माध्यम से विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी तथा अन्य मातृभाषाओं में अध्ययन तथा अध्यापन की स्थिति का आकलन किया जाए, मातृभाषा माध्यम के अंगीकरण की यथार्थता, समस्या तथा समाधान पर राष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श हो, आयोग की शब्दावली के अनुप्रयोग को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न विषयों में उच्चस्तरीय आलेखों का प्रस्तुतीकरण हो जिससे प्राध्यापक समुदाय को जटिल विषयों को हिंदी माध्यम से पढ़ाने के विषय में अभिविन्यास प्राप्त हो तथा साथ ही वैज्ञानिक शब्दावली, वैज्ञानिक अनुवाद, मौलिक वैज्ञानिक लेखन आदि विषयों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से विचार-विमर्श हो।

इस कार्यशाला में विभिन्न विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों, उच्चस्तरीय तकनीकी संस्थानों के प्राध्यापकों, वैज्ञानिकों तथा भाषाविदों को आमंत्रित किया गया था। कुल मिला कर इस कार्यशाला में लगभग 70 विद्वानों ने सहभागियों, व्याख्यानदाताओं, सत्राध्यक्षों आदि के रूप में भाग लिया। कार्यशाला का मुख्य कार्यक्रम उद्घाटन सत्र के बाद 8 शैक्षिक सत्रों में संपन्न किया गया। प्रत्येक सत्र का संचालन एवं उसकी अध्यक्षता प्राधिकारी विद्वानों ने की। प्रत्येक व्याख्यान के अंत में उन पर विचार भी प्रकट किए गए।

उद्घाटन सत्र

कार्यशाला का उद्घाटन दिनांक 28 नवंबर, 1995 को पूर्वाह्न 9.30 बजे से 11.00 बजे तक राष्ट्रीय संग्रहालय के सभागार में हुआ। कार्यशाला के प्रभारी एवं संयोजक श्री वीरसिंह आर्य ने मुख्य अतिथि, अध्यक्ष, मंचस्थ विद्वानों, अतिथियों एवं सहभागियों का स्वागत किया और आयोग द्वारा शब्दावली निर्माण के उद्देश्यों को उजागर किया। उन्होंने आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली की आधिकारिकता तथा मानकता पर बल

देते हुए विश्वविद्यालय स्तर पर माध्यम परिवर्तन में शब्दावली की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला । इसके बाद आयोग के पूर्वसचिव श्री देवेंद्रदत्त नौटियाल ने सर्वप्रथम पूर्व संसद् सदस्य डॉ॰ शंकरदयाल सिंह के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शिक्षा माध्यम के रूप में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी को अपनाने का प्रबल समर्थन किया । उन्होंने कहा कि विश्व में केवल 18 देशों में ही विश्वविद्यालय शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा है । शेष सभी देशों में उच्चतम शिक्षा उनकी मातृभाषा के माध्यम से ही दी जाती है । उन्होंने कहा कि जनभाषा एवं मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने एवं स्वयं को अभिव्यक्त करने का प्रत्येक नागरिक का नैसर्गिक अधिकार है । मातृभाषा से वंचित किया जाना वस्तुतः संविधान में निर्दिष्ट अभिव्यक्ति के अधिकार से वंचित किया जाना है । वस्तुतः लोकतंत्र की संकल्पना में लोकभाषा या जनभाषा अर्थात् मातृभाषा को अंगीकार न करना लोकतंत्र का ही प्रत्याख्यान है । उन्होंने बताया कि हाल में ही दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा विधि की शिक्षा हिंदी में देने के विषय पर नियुक्त उच्चस्तरीय समिति ने विधि की शिक्षा हिंदी माध्यम से देने की सिफारिश की थी, किंतु विश्वविद्यालय के विधि संकाय ने इस सिफारिश को नकार दिया । उन्होंने आशा प्रकट की कि इस प्रकार की बाधाओं के बावजूद शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को अपना उचित स्थान अवश्य प्राप्त होगा । इसलिए सभी विषयों के विद्वानों को अपने-अपने विषयों में उच्चस्तरीय ग्रंथों के निर्माण के कार्य में सतत रत होना होगा ।

मुख्य अतिथि प्रो॰ के॰बी॰ पवार, महासचिव, अखिल भारतीय विश्वविद्यालय संघ ने अपने उद्घाटन भाषण में विभिन्न विश्वविद्यालयों में व्याप्त वर्तमान वातावरण का संकेत दिया और उसे सही दिशा की ओर ले जाने के लिए सभी का आह्वान किया । उन्होंने कहा कि यदि भाषा में पारिभाषिक शब्दावली, पाठ्य-पुस्तकें और अनुपूरक साहित्य उपलब्ध हैं और अध्यापक भी तत्पर हैं तो भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में अपनाने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए । वैज्ञानिक, शिक्षक, शिक्षाविद् और भाषाविद् चाहें तो भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण को सुकर बना सकते हैं । अनेक विद्वानों ने अपनी मातृभाषा में विषय-संबंधी अनेक पुस्तकें लिखी हैं, और वे इस कारण लोकप्रिय हुई हैं कि विद्वान लेखकों को विषय, भाषा और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की भलीभांति जानकारी होती है । इस कार्यशाला की सफलता की कामना करते हुए उन्होंने यह आशा प्रकट की कि विभिन्न विद्वानों के व्याख्यानों, आलेखों एवं संस्तुतियों द्वारा निश्चित रूप से शिक्षा माध्यम के परिवर्तन को सही दिशा प्राप्त होगी ।

शब्दावली आयोग के अध्यक्ष प्रो॰ प्रेमस्वरूप सकलानी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आयोग के कार्यकलापों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि आयोग ने विज्ञानों, मानविकी, सामाजिक विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि, आयुर्विज्ञान आदि सभी विषयों की प्रायः समस्त वैज्ञानिक शब्दावली निर्मित करके उन्हें अनेक खंडों में प्रकाशित कर दिया है । इन विषयों में अनेक आधुनिक विषय भी शामिल हैं जैसे कंप्यूटर-विज्ञान, अंतरिक्ष-विज्ञान,

प्रबंध-विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिकी, अलोह-धातुकर्मिकी, आदि । आयोग ने पाँच लाख से भी अधिक शब्द बनाने के बाद कंप्यूटर-आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना कर दी है जिसमें ढाई लाख शब्द कंप्यूटर के डाटा बेस में भरे जा चुके हैं । उन्होंने कहा कि आयोग-द्वारा प्रकाशित समेकित शब्द-संग्रहों के साथ-साथ अब यह भी योजना बनाई गई है कि अलग-अलग विषयों की समस्त शब्दावली पृथक्-पृथक् रूप से प्रकाशित की जाए । साथ ही पॉकेट बुक के आकार में व्यावहारिक शब्द-संग्रह सभी विषयों में निकाले जाएंगे । उन्होंने सभी सहभागियों से अनुरोध किया कि वे उच्चस्तरीय विषयों पर हिंदी में आलेख तथा मोनोग्राफ तैयार करें जो छात्रों की आवश्यकताओं के अनुरूप हों ।

उद्घाटन-सत्र के अंत में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक एवं प्रख्यात साहित्यकार डॉ॰ गंगा प्रसाद विमल ने मातृभाषा और शिक्षणसंबंधी मनोवैज्ञानिक संबंधों का रोचक एवं गहन विश्लेषण करते हुए बताया कि मौलिक सर्जन और मौलिक चिंतन मातृभाषा के माध्यम से ही संभव हो सकता है । जो देश विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी हैं उनके विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने मातृभाषा में ही चिंतन करके मौलिक विचारों, संकल्पनाओं और खोजों की सृष्टि की हैं । सभी उपस्थित विद्वानों को धन्यवाद देते हुए उन्होंने सभी से अनुरोध किया कि माध्यम परिवर्तन के लिए अपने-अपने स्तर पर यथाशक्ति योगदान करें ।

शैक्षिक सत्र

उद्घाटन समारोह के बाद दिनांक 30.11.1995 तक आठ शैक्षिक सत्रों का आयोजन किया गया । इनमें अनेक आलेख प्रस्तुत किए गए । विभिन्न शैक्षिक सत्रों में प्रस्तुत आलेखों एवं व्याख्यानकर्ताओं का विवरण इस प्रकार है -

दिनांक 28 नवंबर, 1995

प्रथम शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	-	श्री चंद्रमौलि मणि
संचालक	-	श्री देवेंद्रदत्त नौटियाल

व्याख्यानदाता :

1.	डॉ॰ गोपाल शर्मा	-	शिक्षा माध्यम, राजभाषा और जनसंचार
2.	डॉ॰ हरिमोहन कृष्ण सक्सेना	-	संक्षिप्त तकनीकी शब्दावली : अनुवाद परिप्रेक्ष्य

द्वितीय शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	-	डॉ॰ नरेंद्र व्यास
संचालक	-	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

1.	प्रो॰ सूरजभान सिंह	–	तकनीकी शब्दावली – कुछ नए आयाम
2.	प्रो॰ नगेंद्र	–	अंग्रेजी – हिंदी अनुवाद की सामान्य समस्याएं

दिनांक 29 नवंबर, 1995

तृतीय शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	–	डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र
संचालक	–	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

1.	डॉ॰ प्रेम किशोर	–	पादप-प्रतिरोध द्वारा कीट-नियंत्रण
2.	श्री चंद्रमौलि मणि	–	पारिभाषिक शब्दावली : समस्याएं और निराकरण
3.	श्री हरीश्वर प्रसाद सिन्हा		वैज्ञानिक अनुवाद
4.	डॉ॰ आर॰अ॰ चान्सरकर		तकनीकी शब्दावली का प्रसार, स्वीकरण और मानकीकरण
5.	डॉ॰ रमेश चंद्र गर्ग	–	आयुर्विज्ञान की शब्दावली
6.	डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र		उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों की तलाश
7.	डॉ॰ शुकदेव प्रसाद	–	विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम में परिवर्तन और उसकी विसंगतियां

चौथा शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	–	डॉ॰ केदार नारायण
संचालक	–	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

श्री एन॰ नीलकंठन नंपूतिरि	–	अखिल भारतीय शब्दावली : संकल्पना और स्वरूप
डॉ॰ ए॰डी॰ अहलुवालिया	–	भूवैज्ञानिक शोध व शिक्षा में नैतिकता
डॉ॰ प्रेम सागर	–	हिंदी में वैज्ञानिक लेखन : समस्याएं, समाधान और सुझाव
डॉ॰ वैभव श्रीवास्तव	–	गैरसैण क्षेत्र की भौगोलिक एवं विवर्तनिक स्थितियां

पाँचवां शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	–	श्री राजमणि तिवारी
संचालक	–	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

डॉ॰ डॉ॰ योगेश चंद्र शर्मा	–	प्रकृति, विकिरण, रेडियोऐक्टिवता एवं परमाणु खनिज अन्वेषण
डॉ॰ विनोद कुमार मिश्र	–	जलवायु-परिवर्तन के कारण एवं प्रभाव – एक समालोचना
डॉ॰ शेरजंग गर्ग	–	शब्दावली की एकरूपता तथा अन्य पहलू
डॉ॰ अक्षयवर सिंह	–	जलग्रहण-क्षेत्र प्रबंधन
डॉ॰ सि॰जे॰ देशमुख	–	खनिकर्म

छठा शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	–	श्री ओम्प्रकाश वर्मा
संचालक	–	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

डॉ॰ ब्रजेश कुमार	–	खनिज निक्षेप, भंडारण एवं संसाधन
डॉ॰ डी॰सी॰ नैनवाल	–	हिमा[illegible]ा विवर्तनिक परिदृश्य
डॉ॰ पीतम चंद्र	–	[illegible] में बेमौसम खीरा-उत्पादन
डॉ॰ शेखर वाशिष्ठ	–	[illegible] रत्न-आभूषण उद्योग

दिनांक 30.11.1995

सातवाँ शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	–	डॉ॰ शेरजंग गर्ग
संचालक	–	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

डॉ॰ जे॰पी॰ पचौरी	–	विश्वविद्यालय-स्तर पर हिंदी माध्यम से सामाजिक विज्ञानों के अध्यापन की समस्याएं

डॉ॰ विजय कुमार सक्सेना	-	डाक शब्दावली तथा विभागीय शब्दावली के कुछ पहलू
डॉ॰ भगवान देव पांडेय	-	हिंदी में अनुवाद की समस्याएं
डॉ॰ एस॰सी॰ शुक्ल	-	तनाव से कैसे बचें
डॉ॰ पुरुषोत्तम कौशिक	-	सूक्ष्मजैविकी का हिंदी में अध्यापन
डॉ॰ नरेंद्र व्यास	-	लिप्यंतरण तथा लिप्यंकन
डॉ॰ सुरेश चंद्र शर्मा	-	भारतीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन
डॉ॰ दिनेश चमोला	-	राजभाषा हिंदी : प्रयोग-व्यवहार व कठिनाइयां
डॉ॰ हरिमोहन	-	हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य के अनुवाद की समस्याएं

आठवां शैक्षिक सत्र

अध्यक्ष	-	डॉ॰ प्रेम किशोर
संचालक	-	श्री प्रेमानंद चंदोला

व्याख्यानदाता :

डॉ॰ लक्ष्मण प्रसाद सेमवाल	-	टिहरी गढ़वाल में जनसंख्या एवं प्राकृतिक संसाधन
श्री हरीश अग्रवाल	-	समाचार-पत्रों में विज्ञान
श्री ओम प्रकाश मिश्र	-	प्रबंध-विज्ञान में प्रशासन के अंग
डॉ॰ ओम प्रकाश मिश्र	-	वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल		शब्द-निर्माण तथा अखिल भारतीय शब्दावली
डॉ॰ बी॰सी॰ जोशी	-	पर्यावरण के संदर्भ में पृथ्वी की सीमाएं
डॉ॰ नन्हई सिंह	-	रसायन विज्ञान में हिंदी का प्रयोग

समापन-सत्र

कार्यशाला का समापन-सत्र दिनांक 30 नवंबर, 1995 को अपराह्न 2.00 बजे नेशलन म्यूजियम इंस्टिट्यूट ऑफ हिस्टरी ऑफ आर्ट कंजर्वेशन ऐंड म्यूजिओलौजी, राष्ट्रीय संग्रहालय, जनपथ, नई दिल्ली के सभाकक्ष में हुआ। सभी सत्रों के संचालक श्री प्रेमानंद चंदोला ने आरंभिक वक्तव्य देते हुए कार्यशाला में प्रस्तुत विद्वानों के आलेखों के स्तर की सराहना की। उन्होंने कहा कि विभिन्न विद्वानों ने अपने आलेखों में गहन विषयों की व्याख्या करते हुए उसमें वैज्ञानिक शब्दावली को जिस प्रकार आत्मसात् किया है उससे यह आशा होती है कि माध्यम-परिवर्तन के लिए उपयुक्त साहित्य का निर्माण पूरी तरह

संभव और साध्य है । कार्यशाला के विभिन्न विषयों - जैसे शब्दावली, वैज्ञानिक अनुवाद, माध्यम की समस्या, लिप्यंतरण आदि विषयों पर विभिन्न सहभागियों के विचार-विमर्श को उपयोगी बताते हुए उन्होंने कार्यशाला में उपस्थित सभी विद्वानों का अभिनंदन एवं स्वागत किया ।

श्री देवेंद्रदत्त नौटियाल, पूर्व सचिव ने इस अत्यंत सफल कार्यक्रम के लिए उसके संयोजन एवं प्रभारी श्री वीरसिंह आर्य को सभी उपस्थित विद्वानों की ओर से बधाई दी और कहा कि उन्हीं के अथक प्रयास एवं कार्य के उत्तरदायित्व के निर्वहण के प्रति पूर्ण समर्पण से ही इस कार्यशाला का आयोजन एवं विवरणिका का प्रकाशन सराहनीय ढंग से संपन्न हो पाया है । उन्होंने इस कार्यशाला के सभी शैक्षिक सत्रों के संचालक एवं प्रसिद्ध वैज्ञानिक लेखक श्री प्रेमानंद चंदोला की विज्ञान लेखन के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों की चर्चा करते हुए जब यह बताया कि पिछले अनेक वर्षों से राष्ट्रीय स्तर के अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त करने के बाद श्री चंदोला को कार्यशाला के उद्घाटन-दिवस की पूर्व संध्या पर अर्थात् दिनांक 27.11.1995 को भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'आत्माराम पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है तो उपस्थित सभी वैज्ञानिकों ने करतल ध्वनि से उनका अभिनंदन किया ।

श्री नौटियाल ने कहा कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानकारी है कि इस कार्यशाला में उपस्थित अधिकांश विद्वानों के आलेख अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं । जब ऐसे स्तरीय विद्वद्गण अब हिंदी में उच्चस्तरीय लेखन कर रहे हैं तो हिंदी को शिक्षा-माध्यम बनने से रोकना संभव प्रतीत नहीं होता । हिंदी-भाषी प्रदेशों के सभी महाविद्यालयों में यहाँ तक कि अत्याधुनिक माने जाने वाले चंडीगढ़ में भी विज्ञान का माध्यम हिंदी में भी अनिवार्यत: करना पड़ रहा है । वस्तुत: तथ्यत: तो हिंदी माध्यम काफी कुछ चल ही रहा है ।

कार्यशाला में सहभागियों की ओर से श्री दिव्यप्रकाश सिंह, लखनऊ विश्व-विद्यालय ने कार्यशाला के कार्यक्रमों को अत्यंत सार्थक एवं उपयोगी बताते हुए यह आशा प्रकट की कि इस कार्यशाला में प्रस्तुत सभी आलेखों को प्रकाशित किया जाए । उन्होंने भविष्य में भी इस प्रकार की कार्यशालाओं को विभिन्न स्थानों पर आयोजित करने का आग्रह किया ताकि मानक शब्दावली का उपयोग करते हुए उच्चस्तरीय वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा मिले तथा उससे माध्यम-परिवर्तन को बल प्राप्त हो ।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक डॉ॰ गंगा प्रसाद विमल ने सभी सहभागियों को प्रमाण-पत्र वितरित करते हुए अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कार्यशाला की सफलता पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए देश में व्याप्त शिक्षा के वातावरण पर प्रकाश डाला और कहा कि जब भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण कार्य का प्रचलन होगा तभी यह देश सही मायने में अपनी प्राचीन गरिमा और उत्कर्ष को प्राप्त करेगा । इसमें विश्वविद्यालयों, शिक्षकों, सहभागियों तथा देश के प्रबुद्ध शिक्षाविदों और आचार्यों का योगदान अपेक्षित है ।

उन्होंने कहा कि भौगोलिक, राजनीतिक, वाणिज्यिक तथा कारयित्री प्रतिभा के क्षेत्र में भारत का आज अंतर्राष्ट्रीय महत्व है । यदि भारतीय प्रतिभाओं को अपनी मातृभाषा के माध्यम से अध्ययन, चिंतन और सृजन का अवसर मिले तो इसमें संदेह नहीं कि वे इस प्रकार का उच्चस्तरीय एवं शोधात्मक ज्ञान प्रस्तुत कर सकेंगी जो सर्वत्र अनुकरणीय होगा ।

समापन-सत्र के अंत में कार्यशाला के संयोजक एवं प्रभारी श्री वीर सिंह आर्य ने सभी सहभागियों को धन्यवाद देते हुए यह आशा प्रकट की कि इस कार्यशाला के परिणामस्वरूप श्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य का सृजन संभव होगा जो कि इस कार्यशाला का लक्ष्य है । उन्होंने सभी विद्वानों से अनुरोध किया कि आयोग की शब्दावली के संबंध में विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों को अवगत कराएं । उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि इस प्रकार की कार्यशालाएं अनेक स्थानों पर आयोग के अध्यक्ष की अनुमति से आयोजित की जाएंगी ताकि माध्यम-परिवर्तन के लिए आवश्यक उच्च स्तरीय मौलिक वैज्ञानिक लेखन को बल मिले । उन्होंने कार्यशाला के आयोजन एवं विवरणिका के प्रकाशन में बहुमूल्य सहायता के लिए सर्वश्री देवेंद्रदत्त नौटियाल और प्रेमानंद चंदोला के योगदान की सराहना की, और डॉ॰ गंगा प्रसाद विमल के प्रेरक उद्‌बोधन के लिए आभार प्रकट किया ।

कार्यशाला में प्राप्त सुझाव, प्रस्ताव एवं संस्तुतियां :

कार्यशाला में जो आलेख पढ़े गए उनका विवरण पीछे दिया जा चुका है । साथ ही अनेक आलेखों के प्रस्तुतीकरण के दौरान विभिन्न विशेषज्ञों से अनेक सुझाव और प्रस्ताव भी प्राप्त हुए । उनका सभी सहभागियों ने समर्थन किया । ये सुझाव एवं प्रस्ताव इस प्रकार हैं -

(1) लेखक नामकोश का निर्माण-प्रकाशन

वैज्ञानिक लेखन के दौरान कई बार अनेक आविष्कारकों एवं लेखकों के नामों को देवनागरी में लिखना पड़ता है । ये विदेशी विद्वान ब्रिटेन, अमरीका, फ्रांस, जर्मनी आदि अनेक देशों के होते हैं । इनके अंग्रेजी वर्तनी में लिखे गए नामों को देवनागरी में लिखते समय अलग-अलग लेखक उन्हें अलग ढंग से लिखते हैं । उदाहरणार्थ - Roentgen नाम को कोई रांजन या रूंजन लिखते हैं, कोई 'रुइंजन', कोई 'रोंजन', 'रोंटजन' 'रुइंटगेन' आदि । अतः यह अनिवार्य प्रतीत होता है कि इन नामों को मूलभूत उच्चारण के अनुसार (अर्थात् मूल लेखक नाम का वह उच्चारण जो उसकी अपनी मूल भाषा में है) लिखा जाए । अतः सभी विदेशी वैज्ञानिकों के नामों का हिंदी लिप्यंतरण-कोश आयोग तैयार करे ।

(2) आयोग के कार्यों की जानकारी का प्रचार-प्रसार

शब्दावली आयोग ने अनेक विषयों की शब्दावलियां बनाई हैं। आयोग कार्यशालाओं का आयोजन भी करता है और 'विज्ञान गरिमा सिंधु' नामक पत्रिका का प्रकाशन करता है। आयोग अनेक ग्रंथ अकादमियों एवं अन्य भारतीय भाषा पुस्तक बोर्डों के माध्यम से वैज्ञानिक ग्रंथों का प्रकाशन भी कर रहा है तथा वैज्ञानिक विषयों पर डाइजेस्ट, मोनोग्राफ आदि भी प्रकाशित करता है। ये कार्य उच्चस्तरीय वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के लिए अत्यंत उपयोगी एवं सार्थक हैं। लेकिन खेद की बात है कि आयोग के इन कार्यों की जानकारी केवल एक-दो प्रतिशत विश्व-विद्यालयों/महाविद्यालयों एवं कुछ तकनीकी संस्थाओं को ही है। इसलिए आयोग को चाहिए कि वह अपने कार्यों की संक्षिप्त विवरणिका प्रकाशित करा कर उसे व्यापक रूप से वितरित करवाए। साथ ही वह पत्र-पत्रिकाओं में वर्ष में अनेक बार विज्ञापन देकर अपने कार्यों की जानकारी संबद्ध वर्ग तक पहुँचाए ताकि विद्वान लोग उससे लाभ उठा सकें।

(3) सभी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में हिंदी में सार-संक्षेप अनिवार्य

देश में अनेक उच्चस्तरीय वैज्ञानिक संस्थान, विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थाएं, अंग्रेजी में वैज्ञानिक पत्रिकाएं प्रकाशित करती हैं। कुछ समय पूर्व भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने भी यह प्रस्ताव किया था कि इन पत्रिकाओं में छपे लेखों का सार-संक्षेप हिंदी में भी प्रकाशित किया जाए। इस प्रकार सार- संक्षेप प्रकाशित होने जाने से हिंदी में विज्ञान-लेखन में प्रवृत्त लेखकों को इन मूल लेखों की जानकारी हो जाएगी और वे संभवतः उस विषय पर हिंदी में विस्तृत प्रबंध लिखने का प्रयास करेंगे। क्योंकि वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का लक्ष्य माध्यम-परिवर्तन के लिए विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथों का निर्माण है, अतः शब्दावली आयोग इस कार्य को करने के लिए अधिकार-प्राप्त तथा कर्तव्यबद्ध है। अतः शब्दावली आयोग को चाहिए कि :-

(i) विभिन्न संस्थाओं/विश्वविद्यालयों से निकलने वाली वैज्ञानिक पत्रिकाओं की सूची तैयार करे।

(ii) इन सभी पत्रिकाओं के संपादकों तथा प्रकाशकों (विभागाध्यक्षों) से अनुरोध किया जाए कि वे प्रत्येक लेख से पूर्व उसका सार-संक्षेप हिंदी में प्रकाशित करें।

(iii) यदि स्टाफ, शब्दावली अथवा अन्य सुविधाओं के अभाव के कारण अपनी पत्रिका में इन लेखों का हिंदी में सार-संक्षेप देना उपर्युक्त किसी

संस्था के लिए संभव न हो तो शब्दावली आयोग स्वयं एक ऐसी मासिक पत्रिका निकाले जिसमें हर माह प्रकाशित सभी अंग्रेजी पत्रिकाओं के लेखों का सार-संक्षेप मात्र हिंदी में प्रकाशित किया जाए। पहले भी आयोग अपनी आयुर्विज्ञान पत्रिका, चिकित्सा-सेवा पत्रिका, पराचिकित्सा पत्रिका और इंजीनियरी पत्रिका में इस प्रकार के सार-संक्षेपों को प्रकाशित किया करता था। यदि इस विषय में सामग्री की मात्रा बहुत अधिक हो तो मानविकी के लिए एक अलग पत्रिका, मूलभूत विज्ञानों के लिए एक अलग पत्रिका और अनुप्रयुक्त विज्ञानों के लिए एक अन्य पत्रिका का प्रकाशन करना उपयुक्त होगा।

(4) सभी विभागों को अपनी-अपनी शब्दावली छापने का अधिकार

कार्यशाला में अनेक विभागों ने यह विचार प्रकट किया कि अनेक विभाग अपनी विभागीय शब्दावलियों का प्रकाशन स्वयं करने की इच्छा जाहिर करते हैं। कई विभागों की विभागीय शब्दावली को आयोग ने अंतिम रूप तो दे दिया है किंतु आयोग द्वारा उनके प्रकाशन में बहुत अधिक समय लग रहा है। अतः वे वर्षों तक प्रकाश में नहीं आ पातीं। इसका कारण संभवतः सरकारी प्रेसों की मुद्रण व्यवस्था है। अतः यह उचित होगा कि विभिन्न विभाग अपनी शब्दावली को आयोग से अनुमोदित कराने के बाद, उसे स्वयं छाप सकें। साथ ही यदि कोई विभाग आयोग द्वारा प्रकाशित समेकित शब्द-संग्रह में से अपने विषय की शब्दावली को लेकर अलग से छापना चाहे तो आयोग उसे इसका अधिकार दे। आयोग की शब्दावली के प्रचार-प्रसार तथा उसके अनुप्रयोग एवं हिंदी में विज्ञान लेखन की दृष्टि से यह बहुत उपयोगी कदम होगा। ये सभी विभाग इन शब्दावलियों का प्रकाशन केवल अपने विभागीय उपयोग के लिए करेंगे और उसका निःशुल्क वितरण करेंगे। इन विभागों में सरकारी विभाग, तकनीकी संस्थाएं, विश्वविद्यालय एवं विभिन्न विषयों के अध्यापन विभाग भी शामिल हैं।

(5) आयोग में विज्ञान लेखन बोर्ड की स्थापना

हिंदी में विज्ञान-लेखन में मौलिक लेखकों तथा अनुवादकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे मानक शब्दावली, संदर्भ-कोशों की जानकारी, विभिन्न विभागों द्वारा प्रकाशित हिंदी एवं अंग्रेजी की वैज्ञानिक पत्रिकाओं और उनके विषयों की जानकारी, मानक वर्तनी, लिप्यंतरण का ज्ञान इत्यादि। अतः यह उपयुक्त होगा कि हिंदी में विज्ञान-लेखन की समस्याओं के समाधान के लिए आयोग में एक संपादन-मंडल बनाया जाए जिसमें उच्चस्तरीय विज्ञान-लेखकों को बारी-बारी से सहयोजित किया जाए। इस मंडल की बैठक हर तिमाही में एक

बार अवश्य हो ।

(6) कार्यशालाओं में शब्दावली आयोग का प्रतिनिधित्व

वैज्ञानिक विषयों पर विश्वविद्यालयों, विभिन्न शैक्षिक संस्थानों तथा विभिन्न तकनीकी संस्थानों (जिनमें सरकारी उपक्रम भी शामिल हैं) तथा विभिन्न कार्यालयों, मंत्रालयों और हिंदी विभागों द्वारा समय-समय पर शब्दावली कार्यशालाओं, तकनीकी लेखन कार्यशालाओं, प्रशासनिक प्रारूपण तथा टिप्पण- लेखन कार्यशालाओं एवं अन्य हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है । किंतु आज तक भी सभी प्राध्यापकों/विद्वानों/राजभाषा अधिकारियों आदि को इस बात की जानकारी नहीं है कि शब्दावली आयोग ने शब्दावली, अखिल भारतीय शब्दावली, विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रंथ-निर्माण, विज्ञान-लेखन, वैज्ञानिक पत्रिका प्रकाशन आदि के क्षेत्रों में क्या काम किया है । विभिन्न विषयों की शब्दावलियों में यदि कोई परिवर्तन या संशोधन होता है तो उसकी जानकारी भी इन कार्यशालाओं में प्रतिवर्ष भाग लेने वाले सहभागियों को नहीं मिल पाती । अतः यह उचित होगा कि शब्दावली आयोग, राजभाषा विभाग और विभिन्न मंत्रालयों के हिंदी प्रभागों, सरकारी उपक्रमों के हिंदी प्रभागों एवं विभिन्न शैक्षिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों से इस आशय का अनुरोध करे कि जब भी वे संस्थाएं अपने यहाँ शब्दावली/मौलिक लेखन, अनुवाद/राजभाषा आदि के विषयों में कोई भी कार्यशाला करे तो उसमें आयोग का प्रतिनिधित्व अनिवार्य हो । प्रस्तुत कार्यशाला के सभी सहभागियों को विश्वास है कि इससे मानक शब्दावली तथा मौलिक विज्ञान-लेखन को बल मिलेगा ।

(7) शब्दावली के बहुविध संस्करण

कार्यशाला में आयोग के वर्तमान अध्यक्ष की इस बात के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की गई कि उन्होंने आयोग को प्रत्येक विषय की शब्दावली अलग-अलग छापने का आदेश दिया है जिस पर बहुत तेजी से काम हो रहा है । सभी सहभागियों ने इसको अत्यंत उपयोगी और व्यावहारिक बताया । कार्यशाला में यह भी संस्तुति की गई कि जिस प्रकार गीता प्रेस रामायण के कई संस्करण (गुटका से लेकर महाग्रंथ तक) छापता है उसी प्रकार प्रत्येक विषय की शब्दावली हाई स्कूल, इंटर, बी.एससी. तथा स्नातकोत्तर स्तर तक के लिए अलग-अलग छापी जाए ताकि आवश्यकतानुसार इनका उपयोग कम मूल्य पर हो सके और छात्र भी इन्हें

खरीद कर इनका उपयोग कर सकें ।

(8) सस्ती पुस्तकों के लेखकों को शब्दावली की उपलब्धता

प्राय: देखा गया है कि वैज्ञानिक विषयों को हिंदी में पढ़ने वाले अधिकांश छात्र हिंदी में उच्चस्तरीय पाठ्य-ग्रंथ पढ़ने की अपेक्षा कम मूल्य वाले नोट्स के रूप में प्रकाशित हिंदी पुस्तकें पढ़ते हैं । कोई कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, ऐसी सस्ती पुस्तकों को पढ़ने से छात्रों को रोकना पूर्णत: असंभव है । जहाँ तक शब्दावली कार्यशाला का संबंध है यह बात शोचनीय है कि ऐसी पुस्तकों के लेखकों को आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावली की जानकारी नहीं होती । इसका दुष्परिणाम यह होता है कि छात्र इन सस्ती पुस्तकों में एक प्रकार की तकनीकी हिंदी शब्दावली पाते हैं, उच्चस्तरीय ग्रंथों में दूसरे प्रकार की शब्दावली और आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों में तीसरे प्रकार की शब्दावली । यह न केवल छात्रों के अध्ययन, परीक्षा एवं वैज्ञानिक चिंतन के लिए हानिकारक है बल्कि एकाधिक शब्दावलियों के कारण उनका मस्तिष्क भी विभ्रांत हो जाता है । अत: कार्यशाला में यह संस्तुति की जाती है कि आयोग विज्ञान की इस प्रकार की सस्ती पुस्तकों के लेखकों से संपर्क करे और उन्हें उनके विषयों से संबंधित शब्दावलियाँ (नि:शुल्क) उपलब्ध कराए ।

(9) शब्दावली की फ्लॉपी

कार्यशाला में आयोग के अध्यक्ष प्रो॰ सकलानी की इस घोषणा की सराहना कां गई कि आयोग ने कंप्यूटर-आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना कर दी है जिसके डाटाबेस में आयोग द्वारा निर्मित पाँच लाख शब्दों में से ढाई लाख से भी अधिक शब्द भरे जा चुके हैं । सहभागियों का यह मत था कि कंप्यूटर बैंक की सुविधा का अधिक लाभ तभी हो पाएगा जब विभिन्न विषयों एवं विषय-वर्गों की शब्दावली की फ्लॉपियां बनाई जाएं और उन्हें उचित मूल्य पर संबंधित विभागों, विद्वानों, लेखकों आदि को बिक्री के लिए उपलब्ध कराया जाए ।

(10) विनिबंधों (मोनोग्राफ) का प्रकाशन

हिंदी में मौलिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए मौलिक विनिबंधों का लेखन और प्रकाशन अत्यधिक उपयोगी है । ज्ञान-विज्ञान की तथा शोध की अद्यतन जानकारी छात्रों व अध्यापकों तथा वैज्ञानिकों को भी देने के साथ-साथ इन विनिबंधों के प्रकाशन से अन्य विद्वानों को भी अपने-अपने विशिष्ट विषयों में मौलिक लेखन के लिए प्रोत्साहन प्राप्त होगा । सहभागियों का यह सुझाव था कि शब्दावली आयोग इनके प्रकाशन में विज्ञान-लेखकों की यथोचित सहायता

करे । संभवतः यह कार्य अन्यत्र प्रस्तावित विज्ञान लेखन बोर्ड को सौंपा जा सकता है ।

(11) अन्य विभागों द्वारा शब्दावली का निर्माण

कार्यशाला में कुछ सहभागियों ने बताया कि अनेक विभागों ने अपनी विभागीय शब्दावली, आयोग के पुनरीक्षण और अनुमोदन के बगैर ही बनाकर प्रकाशित कर दी है जिससे प्रयोगकर्ताओं को एक ही शब्द के लिए आयोग द्वारा निर्मित पर्याय तथा संबंधित विभाग द्वारा सुझाए गए दूसरे भिन्न पर्यायों के प्रयोग की मानकता के बारे में भ्रम हो जाता है । कुछ विभागों के अध्यक्षों ने तो बाकायदा आदेश जारी करके आयोग की शब्दावली की बजाए अन्य शब्दों को संबंधित विभाग में लागू करवा दिया है । सहभागियों का यह प्रस्ताव था कि क्योंकि शब्दावली निर्माण का एकमात्र प्राधिकार राष्ट्रपति के आदेश द्वारा शब्दावली आयोग को ही दिया गया है (जो पूरे देश में शब्दावली की एकरूपता और मानकता की आवश्यकता के आधार पर है) अतः आयोग को चाहिए कि वह स्वयं भी इस आशय का आदेश जारी करे और राजभाषा विभाग से भी आदेश जारी कराए कि आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के संबंध में कोई भी विभाग किसी प्रकार का आदेश जारी करने के लिए सक्षम नहीं है एवं आयोग द्वारा निर्मित पर्यायों का प्रयोग करना सभी विभागों के लिए अनिवार्य है ।

(12) आयोग के प्रकाशनों का मूल्य अधिक होना

सभी सहभागियों ने इस बात पर चिंता प्रकट की कि आयोग के प्रकाशनों के मूल्य बहुत अधिक रखे गए हैं । इसमें संदेह नहीं कि मूल्यों का अधिक निर्धारण सरकार के किसी अन्य विभाग के अधीन हुआ होगा, तथापि आयोग को अपने मंत्रालय के सहयोग से सभी संभव प्रयास करके पुस्तकों के मूल्य को कम करने का प्रयत्न करना चाहिए । प्रस्तुत राष्ट्रीय कार्यशाला में विज्ञान-लेखकों के इस प्रस्ताव को भी मंत्रालय के ध्यान में लाया जा सकता है, अन्यथा ग्रंथों में अमानक शब्दावली का प्रयोग होने लगेगा जिससे छात्रों, अध्यापकों, प्रयोगकर्त्ताओं आदि को तो असुविधा होगी ही, साथ ही विज्ञान-लेखन में मानकता और एकरूपता भी नहीं हो पाएगी ।

०००००

कुछ विचार-टिप्पणियां :

1. डाक शब्दावली में एकरूपता का अभाव

- डॉ॰ विजय कुमार सक्सेना

अनेक स्थानों पर डाक कार्यालयों में अंग्रेजी शब्दों के जो हिंदी रूपांतर प्रयोग में आ रहे हैं उनमें एकरूपता नहीं है। अलग-अलग स्थानों पर एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए अलग-अलग हिंदी शब्द प्रयोग में लाए जा रहे हैं, और कहीं-कहीं तो वे अर्थ की पूर्ति भी करते प्रतीत नहीं होते हैं। एक ही अर्थ के लिए कई-कई अनेकार्थी शब्द प्रयोग में आ रहे हैं जिनसे कभी-कभी तो अर्थ का अनर्थ ध्वनित होने लगता है, जैसे - 'पोस्टमास्टर जनरल' के लिए 'पोस्टमास्टर जनरल' या 'महा-डाकपाल'। कहीं-कहीं तो 'महा डाक प्रबंधक' या 'महाप्रबंधक(डाक)' भी लिख दिया जाता है। 'महापोस्टमास्टर' भी लिखा देखा गया है। 'पोस्टमास्टर जनरल' को 'महाप्रबंधक डाक' कहने से -महाप्रबंधक (दूरसंचार)' का अर्थ ध्वनित होने लगता है और पोस्टमैन से चिट्ठी बांटते समय भूल होने की संभावना रहती है। 'डिवीजन' शब्द के हिंदी में 'मंडल' और 'प्रखंड' दोनों शब्द प्रयोग में आ रहे हैं जो अनुचित हैं। 'पोस्ट आफिस' के लिए 'पोस्ट आफिस' और 'डाकघर' दोनों शब्द चल रहे हैं। 'सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट' के लिए 'वरिष्ठ अधीक्षक' और 'प्रवर अधीक्षक' दोनों शब्द चल रहे हैं। 'रिटर्न्ड लेटर आफिस' के लिए 'पुनः प्रेषण केंद्र' शब्द व्यवहार में चला आ रहा है। इसमें 'पत्र' या 'डाक' का कोई संकेत है ही नहीं, अर्थात् यह पता ही नहीं चलता है कि यह डाक-विभाग से संबंधित कार्यालय है। 'रेलवे मेल सर्विस' के लिए 'रेल डाक सेवा' और 'रेल डाक व्यवस्था' दोनों शब्द प्रयोग में आ रहे हैं, जबकि यहाँ 'सेवा' ही अधिक उपयुक्त है। 'पोस्टल सर्विसेज' के लिए अभी तक 'डाकसेवा' शब्द प्रयुक्त होता था पर इधर कुछ वर्षों से 'डाक सेवाएं' भी बहुतायत से प्रयोग में आ रहा है।

उ.प्र. डाक परिमंडल के अतिरिक्त राजस्थान डाक परिमंडल में भी इसी प्रकार की उलझन-पूर्ण प्रयुक्तियां हो रही है। बहुत-से ऐसे अंग्रेजी शब्द हैं जिनका हिंदी रूपांतर उ.प्र. में कुछ और है और राजस्थान में कुछ और। तात्पर्य यह है कि अलग-अलग राज्यों

या प्रांतों में स्थित डाक-कार्यालयों में एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए अलग-अलग हिंदी शब्द प्रयोग में आ रहे हैं । इससे लोग हिंदी शब्दों के प्रयोग के स्थान पर अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग को ही वरीयता देना उचित समझते हैं ।

जिन दो राज्यों, उ.प्र. और राजस्थान, का उल्लेख ऊपर किया गया है उन डाक परिमंडलों से कुछ शब्दावलियाँ भी प्रकाशित हुई हैं और इनमें भी विविधता स्पष्ट है । संभव है, ऐसे प्रयास इन डाक परिमंडलों के अतिरिक्त अन्य डाक परिमंडलों में भी किए गए हों । निःसंदेह उनमें भी विविधता होगी ही ।

इस बात की महती आवश्यकता प्रतीत होती है कि शब्दावली आयोग इस दिशा में प्रयास करे । हिंदी शब्दों के प्रयोग में एकरूपता होना अत्यावश्यक है । आयोग ने बहुत पहले सन् 1973 में एक 'डाक-तार शब्दावली' प्रकाशित की थी । तब डाक व दूरसंचार विभाग एक ही थे । अब ये दोनों अलग-अलग विभाग हैं । डाक विभाग का तब से अब तक कई गुना विस्तार हुआ है और इस प्रकार हजारों नए शब्दों का समावेश भी हुआ है । 'स्पीड पोस्ट', 'हाइब्रिड' 'कॉर्पोरेट' आदि सेवाओं के प्रारंभ होने से और डाकघरों का मशीनीकरण होने से सैकड़ों नए शब्द आ गए हैं । हजारों लाखों नए व पुराने शब्दों को समाप्त करते हुए एक नई व परिवर्धित डाक शब्दावली के निर्माण की आवश्यकता समय की मांग है ।

आयोग के अध्यक्ष प्रोफसर सकलानी ने दिनांक 10.11.1995 को लखनऊ विश्वविद्यालय में आयोजित शब्दावली कार्यशाला के समापन समारोह को संबोधित करते हुए इस ओर संकेत किया था कि विभिन्न सरकारी विभागों की शब्दावलियों को एकरूपता प्रदान करते हुए प्रकाशित किया जाना चाहिए । यह प्रसन्नता और संतोष का विषय है कि आयोग इस दिशा में सजग है ।

°°°°°

2. हिंदी का प्रयोग, व्यवहार व कठिनाइयां

- डॉ॰ दिनेश चमोला

भाषा किसी भी देश व जाति का प्राण होती है । इसके माध्यम से उस देश के ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति व साहित्य की उपलब्धता का आकलन सहजता से प्राप्त हो जाता है । यह विडंबना है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 48 वर्ष बीत जाने के बाद भी हम आत्मविश्वास के साथ राजभाषा हिंदी का प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं । हिंदी आदिकाल से ही भारतीय जन-जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है । हिंदी विभिन्न प्रदेशों के साधु-संतों, तीर्थ-यात्रियों, साहित्यकारों आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है । हिंदी का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी अपना विशिष्ट योगदान रहा है । लेकिन इन सब के बावजूद भी हिंदी अभी उपेक्षित ही पड़ी है । आज विश्व के जितने भी विकसित एवं महत्वपूर्ण राष्ट्र हैं वे अपनी भाषा के माध्यम से उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच जाने में समर्थ हुए हैं ।

राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में विशेषकर सरकारी कार्यालयों, विभागों, मंत्रालयों, संस्थानों आदि में कई प्रकार की समस्याएं हैं, जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं :-

अनुवाद के माध्यम से विकसित हिंदी :

चाहे विज्ञान तथा तकनीकी का क्षेत्र हो, साहित्य या संगीत के क्षेत्र हों अथवा सिनेमा, पत्रकारिता का क्षेत्र हो, अनुवाद के माध्यम से पनपने वाली हिंदी अधिकांश स्थानों में अपना मौलिक प्रवाह नहीं बना पाती है । इसके कई व्यावहारिक कारण हैं । अनुवाद एक ऐसी सद्यःनाशी वस्तु है जिसकी मूल से चली निर्धारित मात्रा अपने गंतव्य तक पहुँचने में सीमा से अधिक नष्ट हो जाती है । इसमें न अनुवादक का दोष है और न ही मूल अंग्रेजी में लिखने वाले का । मूल लेखक ने अपनी बात अंग्रेजी में किसी और उद्देश्य से कही है जबकि अनुवादक संबंधित विषय के पर्याप्त ज्ञान के अभाव के कारण उस अंग्रेजी शब्द का शाब्दिक अर्थ निकाल कर अनुवाद कुछ-का-कुछ कर देता है । कई-कई बार इस प्रकार के अनुवाद से न केवल अनुवादक पाठक एवं मूल लेखक को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है बल्कि इससे हिंदी की सुस्पष्ट परंपरा दुष्प्रभावित होती है ।

मानक शब्दावली का अभाव :

राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की प्रारंभिक समस्याओं में मानक शब्दावली की समस्या भी एक प्रमुख समस्या है । कई बार एक ही शब्द अनेक अर्थों के लिए प्रयुक्त होता है । भौतिकी में वह शब्द किसी और अर्थ के लिए प्रयुक्त होता है, मानविकी में किसी और अर्थ के लिए, वनस्पतिविज्ञान में किसी और अर्थ के लिए तथा आयुर्विज्ञान में किसी और अर्थ के लिए । यद्यपि शब्दावली के क्षेत्र में भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का प्रयास अत्यंत सराहनीय एवं सहायक है, किंतु कहीं-कहीं इस शब्दावली से भी शब्द के अर्थ की बात स्पष्ट नहीं होती अथवा उचित शब्द नहीं मिलता । तो ऐसी स्थिति में फिर किस शब्दावली को मानक माना जाए ? विभिन्न कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक, तकनीकी तथा ज्ञान-विज्ञान की शब्दावली में समरूपता लाने के लिए यह बात आवश्यक है कि ऐसी अंतिम मानक शब्दावली का निर्धारण कर लिया जाए कि कोई भी सरकारी कार्यालय उस शब्दावली से बांहर किसी शब्द की सहायता न ले । इस प्रकार इस रूप में विकसित शब्दावली में समरूपता भी आएगी और हिंदी का विकास भी होगा । अन्यथा इंजीनियर के लिए कहीं 'अभियंता', कहीं 'अभियांत्रिक' एवं कहीं 'इंजीनियर' चलता ही रहेगा । इसी प्रकार 'हॉर्टीकल्चर' तथा 'फार्म' के लिए क्रमशः 'उद्यान कृषि, 'बागवानी', 'उद्यानिकी' तथा 'प्रक्षेत्र', 'वानिकी' आदि शब्द प्रयुक्त होते रहेंगे । फिर ऐसी शब्दावलियों में बराबर संशोधन एवं परिवर्धन की भी आवश्यकता है ।

हमारे पास कई शब्द - जैसे de-aromatisation, tribology, yeast आदि हैं जिनका अभी तक कोई हिंदी पर्याय उपलब्ध नहीं है ।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन :

राजभाषा हिंदी के सतत प्रचार एवं प्रयोग के लिए यद्यपि भारत के विभिन्न कोनों से हिंदी की पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं, फिर भी उनमें नियमित एवं उचित मार्गदर्शन का अभाव है । इस क्षेत्र में इस प्रकार के नियमित प्रयोग अत्यंत आवश्यक हैं ताकि संचार माध्यम से मार्ग में आ रही बाधाओं के निराकरण तथा सूचनाओं के आपसी आदान-प्रदान से इसका भविष्य और सुदृढ़ हो सके । हिंदी के देश में राजभाषा हिंदी के लिए प्रत्येक वर्ष हिंदी-दिवस मनाने की भी क्या औपचारिकता? वस्तुतः हिंदी में मौलिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए विविध प्रकार के प्रकाशन निकाले जाने चाहिए । किसी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र-विशेष की महज एक बार शब्दावली प्रकाशित कर देना ही तत्संबंधी शब्दावली- कार्य की इतिश्री नहीं अपितु उसमें बराबर ही संशोधन एवं संवर्धन भी आवश्यक है । इससे विभिन्न संस्थानों की पत्र-पत्रिकाएं अपने अनुभवों के आधार पर हिंदी को अपने विशिष्ट स्थान तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध हो सकेंगी । जैसे पैट्रोलियम शब्दावली जब प्रकाशित हुई तो उसमें प्रयोग व व्यवहार के शब्दों का नितांत अभाव देखा

गया है । भारत सरकार के शब्दावली आयोग को चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र में विपुल शब्द-भंडार उपस्थित करके अन्य प्रकार की शब्दावलियों/शब्द-कोशों के प्रयोग पर रोक लगा ले । इसके साथ ही प्रत्येक राज्य में केंद्र सरकार के कार्यालयों द्वारा राजभाषा में प्रयुक्त किए जा रहे हिंदी शब्दों की भी समीक्षा एवं निरीक्षण किया जाए ताकि इसके व्यवहार व प्रयोग में समरूपता बनी रहे । शब्दावली का प्रकाशन मात्र ही एकमात्र हल नहीं है ।

विविध

1. राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों में लिए गए नीति-निर्णयों का परिचालन सभी सरकारी कार्यालयों में किया जाना चाहिए ताकि शब्दावली प्रयोग का जन-जागरण मंच स्वयं की कठिनाइयों से अवगत हो सके ।

2. संपूर्ण भारतवर्ष में कार्यरत राजभाषा अधिकारियों एवं शब्दकोशों का प्रयोग करने वाले अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि सभी प्रदेशों में प्रयुक्त शब्दावली का पुनरीक्षण संभव हो ।

°°°°°

३. कृषि-अर्थशास्त्र के कुछ शब्दों पर पुनर्विचार

- डॉ॰ राधा मोहन श्रीवास्तव

अर्थशास्त्र में प्रयुक्त हिंदी के शब्दों में अनेक तात्विक और भावगत विषमताएं मुझे काफी खटकती रहती हैं । अनुवाद या शब्दों के सृजन में ऐसे दोष यद्यपि नहीं होने चाहिए जो स्पष्ट भाव, स्पष्ट कर्म या स्पष्ट अवधारणा को हृदयंगम करने में विफल हों । ऐसे लेखन से तो अनेक भ्रम और संशय उत्पन्न होकर गहराने लगते हैं । उदाहरणार्थ, 'लैंड रिफॉर्म' का पर्याय 'भूमि सुधार' करना उपयुक्त नहीं है । इसके स्थान पर 'भूधृति सुधार' या 'भूधारण सुधार' या कोई समुचित अन्य पर्याय अधिक सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण होगा, क्योंकि अनुपयोगी खराब तथा ऊसर-बंजर भूमियों को कृषि योग्य बनाने को भी 'भूमि-सुधार' की संज्ञा आजकल दी जाती है । 'भूमि सुधार' द्विअर्थक है ।

इसी प्रकार 'प्रोसेसिंग' के लिए भिन्न-भिन्न लेखक 'विधायन', 'संसाधन', और 'प्रक्रिया' तीन अलग-अलग शब्दों का प्रयोग करते हैं । नतीजतन ऐसे शब्द की नितांत आवश्यकता है जो सही सटीक व सार्थक अभिव्यक्ति दे सके । {शब्दावली आयोग ने इसके लिए अलग-अलग अर्थों में (1) संसाधन तथा (2) प्रक्रमण पर्याय बनाए हैं - संपादक}

ऐसे ही 'मार्केटिंग सरप्लस' के लिए 'विपणन अतिरेक', 'विपणन अधिशेष' और 'विक्रय अधिशेष' को समानार्थी मानने की भूल की जाती है । वास्तव में यह उत्पादन का वह अंश है जो बिक्री के लिए बचता है । {इसके लिए शब्दावली आयोग ने 'विक्रेय अधिशेष' पर्याय बनाया है - संपादक}

दूसरी ओर 'मार्जिनल रेवेन्यू', 'मार्जिनल रिटर्न' और 'मार्जिनल इनकम' तीनों के लिए 'सीमांत आय' धड़ल्ले से लिखा जा रहा है । क्या 'रेवेन्यू' और 'रिटर्न' और 'इनकम' एक दूसरे के पूर्णतः पर्याय हैं । {शब्दावली आयोग ने इनके लिए इस अर्थ में क्रमशः 'संप्राप्ति', 'प्रतिफल' और 'आय' पर्याय बनाए हैं - संपादक}

'इनवेस्टमेंट' के लिए हिंदी में 'निवेश' और 'विनियोग' दो शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है । इन दोनों पर्यायों के अर्थक्षेत्र को शब्दकोश में स्पष्टतः अलग-अलग लिखा जाना चाहिए ।

°°°°°

परिशिष्ट

मानक देवनागरी वर्णमाला तथा वर्तनी

हिंदी में लेख या कोई भी रचना लिपिबद्ध करते समय कुछ उलझनें सामने आती हैं, जैसे -

(1) अ, झ, ण, ल, क्ष लिखें या अ, झ, ण , ल , क्ष ?

(2) कुछ अक्षरों को पढ़ने में भ्रम होता है, जैसे म-भ, ध -घ, ख -रव आदि । इन्हें स्पष्ट अलग-अलग कैसे लिखें ?

(3) कुछ संयुक्त अक्षर अलग-अलग ढंग से लिखे जाते हैं जैसे - शक्त, शक्त-शक्र, शुक्र-शुक्र, चिह्न-चिह्न, वित्त-वित्त, आदि । इनमें कौन सा रूप लिखें ?

(4) कंठ लिखें या कण्ठ, गंगा या गङ्गा या गङ्गा, पेटेंट-पेटेन्ट या पेटेण्ट ? अन्न या अंन ?

(5) हंसना लिखें या हँसना, मुँह या मुंह ?

(6) रामश्याम लिखें या राम-श्याम ? द्वंयक या द्वि-अंक ?

(7) नई-नए लिखें या नयी-नये ? विधायी या विधाई ?

(8) बिल्कुल या बिलकुल ? सर्दी या सरदी ? बरफ या बर्फ ?

ऊपर विभिन्न कोटियों के शब्द-रूपों में भ्रममूलक स्थिति की ओर संकेत किया गया है । स्पष्ट है कि देवनागरी वर्णमाला और वर्तनी में कुछ सुधार की गुंजाइश थी ताकि उपर्युक्त किस्म के सभी भ्रमों के संबंध में एकसमान निर्णायक निर्देशों का सर्वत्र पालन हो ।

लेखकों को भ्रमित करने के साथ ही उपर्युक्त भिन्न-भिन्न शब्दरूपों या अक्षररूपों का प्रभाव टाइपराइटर, टेलीप्रिंटर तथा कंप्यूटर आदि पर स्पष्ट दृष्टिगोचर है । टाइपराइटरों आदि की स्थिति इस संबंध में विचारणीय - शोचनीय है । हम जानते हैं कि अंग्रेजी के टाइपराइटर केवल 26 कुंजी पटलों (21 व्यंजन और 5 स्वर) तक सीमित हैं । अंग्रेजी के अक्षरों में a e i o u जोड़ने हों तो ये स्वर अक्षर के आगे-पीछे टाइप कर लिए जाते हैं ।

लेकिन हिंदी के अक्षरों में ये स्वर आगे-पीछे, नीचे-ऊपर कहीं भी लगाए जाते हैं । फिर हिंदी में स्वर, व्यंजन, मात्राएं, अनुस्वार, विसर्ग, अर्धचंद्र, हल्-चि न आदि की संख्या कुल मिलाकर लगभग 60 हो जाती है । इसमें संयुक्त व्यंजन द्य, त्र, ज्ञ, श्र भी जोड़े जाएंगे और कुछ व्यंजनों के अर्ध-रूप (क, ८, ट, न आदि) भी जोड़े जाएंगे । इस तरह हिंदी टाइपराइटर में कुंजियों की संख्या स्वयमेव बहुत अधिक हो जाती है । इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हिंदी की वर्तनी में सुधार करके इन कुंजियों की संख्या को कम से कम करने का प्रयास किया जाए । उदाहरणार्थ, क्त, त्त, क्र आदि अपनाकर क्त, त्त, क्र कुंजियों को कम किया जा सकता है । इसी तरह द्य(द्य), ह्म(ह्म), द्व(द्व), द्ध(द्ध), ह्व(ह्व), ह्ल (ह्ल), ह्य(ह्य) आदि में कोष्ठक में दिए गए संयुक्ताक्षर को अपनाकर कुंजियों की बचत हो सकती है । जैसा ऊपर बताया गया है हिंदी वर्णों में मात्राएं ऊपर-नीचे भी लगती हैं जब कि अंग्रेजी के वर्णों में केवल अक्षर के बाद में । ऐसी स्थिति में अगर हम एक अक्षर के ऊपर दूसरा अक्षर लिखकर फिर उसके ऊपर या नीचे मात्रा भी लगाएं तो टाइपराइटर असमर्थता व्यक्त कर देगा । उदाहरणार्थ 'टट्टू' में ऊ की मात्रा । अतः यह भी उचित है कि अक्षर-संयोग करते समय अर्थात् संयुक्ताक्षरों को लिखते समय उन्हें ऊपर-नीचे न लिखा जाए । इस प्रकार पक्का-पक्का, दफ़्तर - दफ्तर, लट्ठा - लट्ठा आदि में परवर्ती रूप का प्रयोग किया जा सकता है ।

देवानागरी वर्णमाला के मानकीकरण की आवश्यकता की दृष्टि से अनेक विद्वानों, भाषाविदों की समितियों ने केंद्रीय हिंदी निदेशालय के तत्वावधान में 'मानक हिंदी वर्णमाला' प्रस्तुत की है । इसके संबंध में आवश्यक संस्तुतियां नीचे दी जा रही हैं ।

1 मानक हिंदी वर्णमाला

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

मात्राएँ

ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ

अनुस्वार

ं (अं)

विसर्ग

ः (अः)

अनुनासिकता चिह्न

ँ

व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ		
च	छ	ज	झ	ञ		
ट	ठ	ड	ढ	ण	ड़	ढ़
त	थ	द	ध	न		
प	फ	ब	भ	म		
य	र	ल	व		ळ	
श	ष	स	ह			

संयुक्त व्यंजन

क्ष त्र ज्ञ श्र

हल्-चिह्न

् (ड्)

गृहीत स्वन

ऑ (ॉ), ख़, ज़, फ़

देवनागरी अंक

१	२	३	४	५
६	७	८	९	0

भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप

1	2	3	4	5
6	7	8	9	0

2 मानक हिंदी वर्तनी

(1) संयुक्त वर्ण

(क) खड़ी पाई वाले व्यंजन

ख्याति, लग्न, विघ्न	व्यास
कच्चा, छज्जा	श्लोक
नगण्य	राष्ट्रीय
कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास	स्वीकृति
प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य	यक्ष्मा
शय्या	त्र्यंबक
उल्लेख	

(ख) अन्य व्यंजन

(अ) 'क' और 'फ' के संयुक्ताक्षर :

संयुक्त, पक्का, दफ्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि संयुक्त, पक्का, दफ़र की तरह ।

(आ) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, और ह के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ, यथा:

वाङ्मय, लट्टू , बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि

(वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा नहीं) ।

(इ) संयुक्त 'र' के प्रचिलत तीनों रूप यथावत् रहेंगे, यथा :

प्रकार, धर्म, राष्ट्र ।

(ई) 'श्र' का प्रचलित रूप ही मान्य होगा । इसे 'श्र' के रूप में नहीं लिखा जाएगा । त + र के संयुक्त रूप के लिए त्र और ब्र दोनों रूपों में से किसी एक के प्रयोग की छूट होगी ।

किंतु 'क्र' को 'क्र' के रूप में नहीं लिखा जाएगा ।

(उ) हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ 'इ' की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व, यथा : कुट्टिम, द्वितीय , बुद्धिमान, चिह्नित आदि (कुट्टिम, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित नहीं) ।

(ऊ) संस्कृत में संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे, उदाहरणार्थ - संयुक्त, चिह्न, विद्या, चञ्चल, विद्वान, वृद्ध, अङ्क, द्वितीय, बुद्धि आदि ।

(2) हाइफन (योजक)

हाइफन या योजक का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है ।

(क) द्वंद्व समास में दो पदों के बीच हाइफन रखा जाए, जैसे -

राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती-संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हंसी-मज़ाक, लेन-देन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, खेलना-कूदना आदि ।

(ख) तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए, जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं, जैसे - भू-तत्व/भूतत्व । सामान्यतः तत्पुरुष समासों में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि ।

(ग) कठिन संधियों से बचने के लिए हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे : द्वि-अक्षर, द्वि-अर्थक आदि ।

(3) अव्यय

समस्त पदों में *प्रति, मात्र, यथा* आदि अव्यय पृथक् नहीं लिखे जाएँगे, जैसे - *प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित* आदि । यह सर्वविदित नियम है कि समास होने पर समस्त पद एक माना जाता है । अतः उसे व्यस्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है ।

(4) नई/नयी, हुवा/हुआ आदि

(क) जहां श्रुतिमूलक य, व, का प्रयोग विकल्प से होता है, वहां न किया जाए, अर्थात् *किए-किये, नई-नयी, हुआ-हुवा* आदि में से पहले स्वरात्मक रूप का ही प्रयोग किया जाए । यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए, जैसे - *दिखाए गए,, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली* आदि ।

(ख) जहां 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, जैसे - स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि । इन्हें स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा ।

(5) अनुस्वार तथा चंद्रबिंदु

अनुस्वार (ं) और चंद्रबिंदु (ँ) दोनों प्रचलित रहेंगे ।

(क) संयुक्त व्यंजन के रूप में जहां पंचमाक्षर के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए जैसे - *गंगा, चंचल, ठंडा, संध्या, संपादक* आदि । इन शब्दों में पंचमाक्षर के बाद उसी वर्ग का वर्ण आगे आया है, अतः पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होगा (गङ्गा, चञ्चल, ठण्डा, सन्ध्या, सम्पादक नहीं) । यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए अथवा वही पंचमाक्षर दुबारा आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा, जैसे - *वाङ्मय, अन्य, अन्न, सम्मेलन, सम्मति, चिन्मय, उन्मुख* आदि । अतः *वांमय, अंय, अंन, संमेलन, संमति, चिंमय, उंमुख*, आदि रूप ग्राह्य नहीं है ।

(ख) चंद्रबिंदु के बिना कभी-कभी अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है, जैसे - *हंस:हँस, अंगना:अँगना* आदि में । अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए । किंतु जहां (विशेषकर शिरारेरखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु (अनुस्वार चिह्न) का प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट दी जा सकती है, जैसे - *नहीं, में, मैं* । कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का

यथास्थान अवश्य प्रयोग किया जाए । इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहां चंद्रबिंदु का उच्चारण सिखाना अभीष्ट हो, वहाँ उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए, जैसे - *कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, मैं, मैं, नहीं*, आदि ।

(6) विदेशी ध्वनियाँ

(क) अरबी-फारसी या अंग्रेजी मूलक वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतर हो चुका है, हिंदी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते है, जैसे - *कलम, किला, दाग* आदि (*क़लम, क़िला, दाग़* नहीं) । पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो वहां उनके हिंदी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएं, जैसे - *खाना : ख़ाना, राज : राज़, फन : फ़ाइफ़न* । सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी की मुख्यत: पांच ध्वनियां (*क़, ग़, ख़, ज़ और फ़*) हिंदी में आई है जिनमें से दो (*क़* और *ग*) तो हिंदी उच्चारण (क, ग) में परिवर्तित हो गई है, एक (*ख़*) लगभग हिंदी '*ख*' में खपने की प्रक्रिया में है और शेष दो (*ज़, फ़*) धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोने/बनाए रखने के लिए संघर्षरत है ।

(ख) अंग्रेज़ी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा (ा) के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ, ॅ) । अंग्रेज़ी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि उसके लिए वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत-चिह्न लगाने पड़ें । अंग्रेज़ी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेज़ी उच्चारण के अधिक-से-अधिक निकट होना चाहिए । उसमें भारतीय शिक्षित समाज में प्रचलित उच्चारण-संबंधी थोड़े-बहुत परिवर्तन किए जा सकते हैं । अन्य भाषाओं के शब्दों के संबंध में भी यही नियम लागू होना चाहिए ।

हिंदी के कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं । विद्वत्समाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है । फिलहाल इनकी एकरूपता आवश्यक नहीं समझी गई है। कुछ उदाहरण हैं - *गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, सरदी/सर्दी, कुरसी/कुर्सी, भरती/भर्ती, फ़ुरसत/फ़ुर्सत, बरदाश्त/बर्दाश्त, वापिस/वापस, आखीर/आखिर, बरतन/बर्तन, दोबारा/दुबारा, दूकान/दुकान, बीमारी/बिमारी* आदि ।

(7) हल् चिह्न

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी में सामान्यतः संस्कृत रूप ही रखा जाए, परंतु जिन शब्दों के प्रयोग में हिंदी में हल् चिह्न लुप्त हो चुका है, उनमें उसको फिर से लगाने का यत्न न किया जाए, जैसे - 'महान्', 'विद्वान्' आदि के 'न्' में ।

(8) स्वन-परिवर्तन

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए । अतः *'ब्रह्मा' को 'ब्रम्हा', 'चिह्न' को 'चिन्ह', 'उऋण' को 'उरिण'* में बदलना उचित नहीं होगा । इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं है । इनके स्थान पर क्रमशः *गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार* ही लिखना चाहिए । जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है, जैसे - *अर्द्ध/अर्ध, उज्ज्वल/उज्वल, तत्त्व/तत्व* आदि ।

(9) विसर्ग

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है वे यदि तत्सम रूप में प्रयक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए, जैसे - दुःखानुभूति । यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा, जैसे - *'दुख-सुख के साथी'* ।

3. एक से सौ तक संख्यावाचक शब्दों का मानक रूप

एक	दो	तीन	चार	पाँच	छह	सात	आठ	नौ	दस
ग्यारह	बारह	तेरह	चौदह	पंद्रह	सोलह	सत्रह	अठारह	उन्नीस	बीस
इक्कीस	बाईस	तेईस	चौबीस	पच्चीस	छब्बीस	सत्ताईस	अट्ठाईस	उनतीस	तीस
इकतीस	बत्तीस	तैंतीस	चौंतीस	पैंतीस	छत्तीस	सैंतीस	अड़तीस	उनतालीस	चालीस
इकतालीस	बयालीस	तैंतालीस	चवालीस	पैंतालीस	छियालीस	सैंतालीस	अड़तालीस	उनचास	पचास
इक्यावन	बावन	तिरपन	चौवन	पचपन	छप्पन	सतावन	अठावन	उनसठ	साठ
इकसठ	बासठ	तिरसठ	चौंसठ	पैंसठ	छियासठ	सड़सठ	अड़सठ	उनहत्तर	सत्तर
इकहत्तर	बहत्तर	तिहत्तर	चौहत्तर	पचहत्तर	छिहत्तर	सतहत्तर	अठहत्तर	उनासी	अस्सी
इक्यासी	बयासी	तिरासी	चौरासी	पचासी	छियासी	सतासी	अठासी	नवासी	नब्बे
इक्यानवे	बानवे	तिरानवे	चौरानवे	पचानवे	छियानवे	सतानवे	अठानवे	निन्यानवे	सौ

°°°°°

राष्ट्रीय शब्दावली कार्यशाला में उपस्थित सहभागी :

डॉ॰ पी॰ गोपाल शर्मा,
सी-8-सी, एम.आई.जी. फ्लैट्स
मायापुरी, नई दिल्ली ।

डॉ॰ एच॰एम॰के॰ सक्सेना,
417/1, निवाज गंज,
लखनऊ ।

श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल,
ए-2, ब्रदरहुड अपार्टमेंट,
विकासपुरी, नई दिल्ली ।

श्री प्रेमानंद चंदोला,
ई-1, एम.आई.जी. फ्लैट, साकेत,
नई दिल्ली ।

डॉ॰ प्रेम किशोर,
प्रधान अन्वेषक,
कीटविज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

श्री हरीश्वर प्रसाद सिन्हा,
सी-210, राजाजीपुरम, लखनऊ ।

श्री अक्षयवर सिंह,
प्रधान वैज्ञानिक
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
पूसा, नई दिल्ली ।

डॉ॰ रमेश चन्द्र गर्ग,
सी-2/8/1, लॉरैंस रोड,दिल्ली ।

प्रो॰ सूरज भान सिंह,
आई-127, नारायणा विहार,
नई दिल्ली ।

डॉ॰ नगेन्द्र
143, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली ।

डॉ॰ गंगा प्रसाद विमल,
निदेशक,
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली

डॉ॰ शुकदेव प्रसाद,
निदेशक, विज्ञान वैचारिकी अकादमी,
34, एलनगंज, इलहाबाद ।

डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र,
25 अशोक नगर, इलाहाबाद ।

श्री एन॰ नीलकंठन नंपूतिरि,
नींडूर इल्लम, वैकम, केरल ।

श्री वैभव श्रीवास्तव,
भूविज्ञान विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी ।

श्री राजमणि तिवारी,
सी-26, सैक्टर-19, नोएडा ।

श्री भगवान देव पांडेय,
हिंदी विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार ।

डॉ॰ पुरुषोत्तम कौशिक,
विभागाध्यक्ष,
वनस्पति-विज्ञान विभाग,
सूक्ष्म जैविकी इकाई,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार ।

डॉ॰ जे॰पी॰ पचौरी,
उपाचार्य, समाजशास्त्र,
हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल ।

डॉ॰ सुभाष चंद्र शुक्ल,
रीडर एवं विभागाध्यक्ष
प्राणिविज्ञान विभाग,
बी.एस.एन.वी. महाविद्यालय,
लखनऊ ।

श्री योगेश चन्द्र शर्मा,
403/2, चांद नगर, नई दिल्ली ।

डॉ॰ शेखर वाशिष्ठ,
औद्योगिक परामर्शदाता,
उत्तर प्रदेश उद्योग निदेशालय,
117/588, पांडुनगर, कानपुर ।

श्री बृजेश कुमार,
भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण
अलीगंज, लखनऊ ।

डॉ॰ ओमप्रकाश मिश्र,
81, प्रेम नगर, दिल्ली ।

डॉ॰ हरिमोहन,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल ।

डॉ॰ सुरेश चंद्र शर्मा,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
म्यू.पो.ग्रे. कालेज, मसूरी ।

डॉ॰ चन्द्रमौलि मणि
ए-765, इंदिरा नगर, लखनऊ ।

डॉ॰ हरीश कुमार
सचिव, वै.त.श. आयोग,
नई दिल्ली ।

डॉ॰ डी॰सी॰ नैनवाल,
रा. महाविद्यालय, जयहरिखाल,
लैन्सडाउन, गढ़वाल ।

श्री ओमप्रकाश मिश्र,
सहायक सुरक्षा अधिकारी,
परमाणु ऊर्जा विभाग,
हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश ।

डॉ॰ भुवनचंद्र जोशी,
केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

डॉ॰ लक्ष्मण प्रसाद सेमवाल,
30-ए, मुनीरका गांव, नई दिल्ली ।

डॉ॰ विनोद कुमार सिंह,
सी-3/127, यमुना विहार, दिल्ली

डॉ॰ पीतम चंद्र,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
पूसा, नई दिल्ली ।

डॉ॰ नरेंद्र व्यास,
8-बी. प्रताप नगर,
चितौड़गढ़, राजस्थान ।

डॉ॰ दिनेश चमोला,
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून ।

श्री एन॰एस॰ चौहान,
डी-1/3, जनकपुरी, नई दिल्ली ।

डॉ॰ किशोर कुमार,
वैज्ञानिक, केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

डॉ॰ नन्हई सिंह,
अशोक पुरम् कॉलोनी,
प्लॉट नं.सी-28, वाराणसी ।

डॉ॰ प्रेम सागर,
ए-2/5, कॉरपोरेशन फ्लैट,
निराला नगर, लखनऊ ।

डॉ॰ शेरजंग गर्ग,
जी-261 ए, सैक्टर 22,
नौएडा, गाजियाबाद ।

डॉ॰ ए॰डी॰ अहलुवालिया,
भूविज्ञान विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ ।

श्री भगवती प्रसाद चमोला,
वनस्पतिविज्ञान विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

डॉ॰ नंदगोपाल गोयल,
21 सम्राट एन्क्लेव,
रानी बाग रोड, दिल्ली ।

श्री प्रेमचन्द्र धस्माना,
अनुवाद अधिकारी,
गुणता आश्वासन महानिदेशालय,
रक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली ।

डॉ॰ रा॰अ॰ चान्सरकर,
निदेशक,
डी.टी.आर.एम., मेटकाफ भवन, दिल्ली ।

श्री केदार नारायण
सी-33, सेक्टर ए, महानगर, लखनऊ ।

डॉ॰ विजयकुमार सक्सेना,
हिंदी अधिकारी,
कार्यालय, मुख्य महा डाकपाल
एवं सचिव, न.रा.का.स.,
लखनऊ ।

डॉ॰ डी॰जे॰ देशमुख,
3/1, वी.एच.बी. कालोनी,
रामदास पेठ, नागपुर ।

श्री हरिशंकर शर्मा,
ए-10/20, बी.
कालकाजी एक्सटेंशन,
कालकाजी, नई दिल्ली ।

प्रो॰ राजेश कुमार गोयल,
अध्यक्ष, भूविज्ञान,
राजकीय महाविद्यालय,
नारनौल, हरियाणा ।

डॉ॰ प्रशांत कुमार घोष,
अर्थशास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

सुश्री वरदा वसुंधरा,
द्वारा - डॉ॰ योगेश चंद्र शर्मा,
403/2, चांद नगर, नई दिल्ली ।

श्री ज्ञानस्वरूप भटनागर,
146, मुनीरका एन्क्लेव, नई दिल्ली ।

सुश्री उषा,
हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल ।

श्री हरीश अग्रवाल,
डी-40, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली ।

डॉ॰ हर्ष भट्ट,
रीडर व विभागाध्यक्ष,
भूगोल विभाग,
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल ।

डॉ॰ कमलेश्वर पैन्यूली,
बी-19, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली ।

डॉ॰ ओ॰बी॰ ठाकरे,
272, लक्ष्मीनगर, नागपुर ।

श्री ब्रह्मदत्त शर्मा,
10-ए/16, शक्तिनगर, दिल्ली ।

श्री मानसिंह,
वैज्ञानिक,
जल प्रौद्योगिकी केंद्र,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

श्री जी॰के॰ बहुगुणा,
ए-2/26, पश्चिमी विहार, नई दिल्ली ।

श्री बाल कृष्ण गुप्ता,
244, सुंदर विहार, दिल्ली ।

डॉ॰ दिव्य प्रकाश सिंह,
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान विभाग,
नेशनल डिग्री कालेज, लखनऊ ।

श्री के॰एन॰ कंडवाल,
भूविज्ञान विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

श्री ध्रुवदेव शर्मा,
सहायक शिक्षा अधिकारी,
वै.त.श. आयोग, नई दिल्ली

श्रीमती पुष्पलता तनेजा,
सहायक निदेशक,
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

डॉ॰ वीरेन्द्र सक्सेना,
सहायक निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्रीमती अर्चना चतुर्वेदी,
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्रीमती मेधा पटवर्धन,
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्री रामस्वरूप राकेश
सहायक शिक्षा अधिकारी,
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्रीमती हेमलता,
सहायक शिक्षा अधिकारी,
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्री एन.आर. गुप्ता,
सहायक शिक्षा अधिकारी
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्री बलि राम,
सहायक शिक्षा अधिकारी
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ।

श्री सतीश चंद्र सक्सेना,
उपनिदेशक,
वै.त.श. आयोग
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली ।

श्रीमती डॉ॰ कामिनी बाली,
संपादक, 'पुलिस विज्ञान',
केंद्रीय पुलिस अन्वेषण ब्यूरो,
सी.जी.ओ. कंप्लेक्स,
नई दिल्ली ।

°°°°°

लेखक – सूची

आर्य, वीर सिंह
सहायक निदेशक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली ।

उपाध्याय, डॉ॰ विजय कुमार
प्राध्यापक, भूविज्ञान,
इंजीनियरी कालेज, भागलपुर ।

कंडवाल, के॰एन॰,
भूविज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

कौशिक, डॉ॰ पुरुषोत्तम
अध्यक्ष,
वनस्पति विज्ञान विभाग,
सूक्ष्मजैविकी एकक,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

गर्ग, डॉ॰ रमेश चंद्र
पूर्व सहायक निदेशक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
सी 2/81-ए, रामपुरा मार्ग, केशवपुरम,
नई दिल्ली ।

गैरोला, विजय कुमार
भूविज्ञान विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

घोष, डॉ॰ प्रशांत कुमार
वरिष्ठ प्रवक्ता,
अर्थशास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

चंदोला, प्रेमानंद
पूर्व संपादक, 'विज्ञान गरिमा सिंधु',
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
'कोशिका', ई.1, एम.आई.जी. फ्लैट,
साकेत, नई दिल्ली - 110017 ।

चंद्र, डॉ॰ पीतम
प्रधान वैज्ञानिक एवं परियोजना,
समन्वयक,
प्लास्टिकल्चर विकास केंद्र,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

चमोला, डॉ॰ दिनेश
हिंदी अधिकारी,
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून ।

चमोला, भगवती प्रसाद,
वनस्पति विज्ञान विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

नंपूतिरि, नीलकंठन,
पूर्व उपनिदेशक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
नींडूर इल्लम, वैकम, केरल ।

नगेंद्र, डॉ॰
143, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली ।

जोशी, डॉ॰ भुवन चंद्र
वैज्ञानिक,
केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान,
मथुरा मार्ग, नई दिल्ली ।

नारायण, डॉ॰ केदार

सी-33, महानगर, लखनऊ ।

नैनवाल, डॉ॰ डी॰सी॰
प्राध्यापक, भूविज्ञान,
राजकीय महाविद्यालय,
लैन्सडाउन (जयहरीखाल),
गढ़वाल (उ.प्र.) ।

पंत, दयानंद
पूर्व उपनिदेशक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
124, सोलानीपुरम, रुड़की ।

पचौरी, डॉ॰ जे॰पी॰
रीडर, समाजशास्त्र विभाग,
हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल ।

पांडेय, डॉ॰ भगवानदेव
हिंदी विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

पालीवाल, प्रो॰ जी॰एस॰
वनस्पतिविज्ञान विभाग,
हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल ।

प्रसाद, डॉ॰ शुकदेव
निदेशक,
विज्ञान वैचारिकी अकादमी,
34, एलनगंज, इलाहाबाद ।

प्रेम किशोर, डॉ॰
प्रधान अन्वेषक,
कीटविज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

प्रेम सागर
पूर्व उपनिदेशक एवं अध्यक्ष,
जीवरसायन विभाग,
केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान,
ए-2/5, कॉर्पोरेशन फ्लैट,
निराला नगर, लखनऊ ।

बंदूनी, सुरेश कुमार
प्राध्यापक, भूगोल विभाग,
शहीद भगत सिंह सांध्य महाविद्यालय,
नई दिल्ली ।

मणि, श्री चंद्रमौलि
पूर्व अपर महाप्रबंधक,
भारतीय रेलवे,
ए-765, इंदिरा नगर, लखनऊ ।

मिश्र, दुर्गा प्रसाद
सहायक शिक्षा अधिकारी,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली ।

मिश्र, डॉ॰ शिवगोपाल
25, अशोक नगर, इलाहाबाद ।

मुकर्जी, प्रो॰ के॰जी॰
वनस्पति विज्ञान विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

मोरे, टी॰ए॰
प्लास्टिकल्चर विकास केंद्र,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

वत्स, दीपक
वनस्पतिविज्ञान विभाग,
सूक्ष्मजैविकी एकक,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार ।

वाशिष्ठ, डॉ॰ शेखर
औद्योगिक परामर्शदाता,
उत्तर प्रदेश शासन, उद्योग निदेशालय,
पांडुनगर, कानपुर ।

शर्मा, डॉ॰ गोपाल
पूर्व अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
सी 8/सी, एम.आई.जी. फ्लैट,
मायापुरी, नई दिल्ली ।

शर्मा, डॉ॰ यू॰डी॰
रीडर, प्राणिविज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ ।

शर्मा, डॉ॰ योगेश चंद्र
परमाणु खनिज प्रभाग,
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली ।

शुक्ल, डॉ॰ एस॰सी॰
प्राणिविज्ञान विभाग,
बप्पा श्रीनारायण वोकेशनल महाविद्यालय,
लखनऊ ।

शुक्ल, डॉ॰ संजीव
प्राणिविज्ञान विभाग,
बप्पा श्रीनारायण वोकेशनल महाविद्यालय,
लखनऊ ।

शुक्ला, डॉ॰ ऋचा,
प्राणिविज्ञान विभाग,
नवयुग कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
लखनऊ ।

श्रीवास्तव, अजय
रिसर्च ऐसोशिएट,भूविज्ञान विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

श्रीवास्तव, अभयकुमार
अनुसंधान सहकर्मी,
प्लास्टिकल्चर विकास केंद्र,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली ।

श्रीवास्तव, डॉ॰ सधामोहन
अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग,
राष्ट्रीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बड़हलगंज, गोरखपुर ।

श्रीवास्तव, वैभव
भूविज्ञान विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

सकलानी, प्रो॰ प्रेमस्वरूप
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली ।

सक्सेना, डॉ॰ विजय कुमार
हिंदी अधिकारी,
कार्यालय मुख्य महाडाकपाल, लखनऊ ।

सक्सेना, डॉ॰ हरिमोहन कृष्ण
पूर्व उपनिदेशक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
417/3, निवाज गंज, लखनऊ ।

सिंह, बृजेंद्र
प्राणिविज्ञान विभाग,
बप्पा श्रीनारायण वोकेशनल महाविद्यालय,
लखनऊ ।

सिंह, राम अवतार
भूविज्ञान विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी ।

सिंह, रीना
प्राणिविज्ञान विभाग,
नवयुग कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
लखनऊ ।

सिंह, डॉ॰ सच्चिदानंद
रिसर्च ऐसोशिएट, भूविज्ञान विभाग,
काशी हिंदी विश्वविद्यालय,
वाराणसी ।

सिन्हा, हरीश्वर प्रसाद
पूर्व सहायक शिक्षा अधिकारी (गणित),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
सी-210, राजाजीपुरम, लखनऊ ।

सेमवाल, डॉ॰ लक्ष्मण प्रसाद
हिमालय सेवा संघ,
राजघाट, नई दिल्ली ।

हटवाल, दीपक
भूतत्व एवं खनिकर्म निदेशालय,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश ।

डॉ॰ हरिमोहन
अध्यक्ष,
हिंदी तथा आधुनिक भाषाविज्ञान,
हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय
श्रीनगर, गढ़वाल ।

॰॰॰॰॰

क्र.सं.	विषयवार शब्दावलियाँ	मूल्य
1.	मानविकी शब्दावली – (नृविज्ञान) (1977, पृ.179)	10.00
2.	कंप्यूटरविज्ञान शब्दावली (1988, पृ.337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (1988, पृ.378)	55.00
4.	वाणिज्य शब्दावली (1992 पृ.172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली (1993)	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली (1994)	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (1993, पृ.249)	113.00
8.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	नि:शुल्क
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	नि:शुल्क
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली, (1994 पृ.174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (5,000 शब्द) (1995, पृ.98)	52.00

प्रकाशनाधीन शब्द-संग्रह

1. कोशिका-जैविकी शब्दसंग्रह (7000 शब्द)
2. गणित शब्दसंग्रह (20,000 शब्द)
3. भौतिकी शब्दसंग्रह (27,000 शब्द)
4. गृहविज्ञान शब्दसंग्रह (10,000 शब्द)
5. रासायनिक इंजीनियरी शब्दसंग्रह (13,000 शब्द)
6. भूगोल शब्दसंग्रह (26,000 शब्द)
7. खनन एवं भूविज्ञान शब्दसंग्रह (10, 000 शब्द)
8. भूविज्ञान शब्दसंग्रह (27,000 शब्द)
9. संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (2000 शब्द)

पी० ई० डी० 730
1100 — 1996 (DSK-II)

Price : Rs. 34.00

प्रबन्धक, भारत सरकार फोटोलिथो मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।